# स्वच्छन्दतावादी काव्य : वाद-विवाद-संवाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की
डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध

**2002**

**निर्देशक**
**डॉ० मीरा दीक्षित**
**प्रवक्ता, हिन्दी विभाग**
**इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद**

**अनुसन्धित्सु**
**राकेश सिंह**

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रकाश पुंज !

जो

प्रकाश देने

दिशा-निर्देश करने

आशा का संचार करने

कर्म क्षेत्र में त्याग और बलिदान

का

पथ प्रशस्त करने के लिए

ही

अवतरित हुये

हैं

ऐसे

राजर्षि कुँवर श्रीपाल सिंह

को

सादर समर्पित

# आभार ज्ञाप्ति

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने पर उन महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में सहायता प्रदान की।

इस क्रम में सर्वप्रथम श्रद्धेय प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे यह विषय सुझाया तथा जिनका चिन्तनशील व्यक्तित्व मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने डॉ० मीरा दीक्षित (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के निर्देशन में पूरा किया। उन्होंने बड़ी सहृदयता और तन्मयता से मेरा पथ-प्रदर्शन किया। प्रबन्ध पूर्ण होने पर इसका एक-एक शब्द उन्होंने पढ़ा। उनके द्वारा किये गये उपकार के प्रति आभार प्रदर्शन का अभिनय मैं नहीं कर सकता। गुरु ऋण तो जीवन-पर्यन्त साथ रहता है। इन शब्दों से मैं उनके प्रति अपने हृदय में निहित श्रद्धा का संकेत मात्र कर रहा हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की पूर्व अध्यक्ष प्रो० मालती तिवारी का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने शोध कार्य के दौरान उस समय अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखी जब लगभग एक वर्ष तक मैं श्वास रोग से ग्रस्त था और सक्रिय शोधकार्य में असमर्थ था।

प्रो० राजेन्द्र कुमार (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), जिन्होंने परास्नातक शिक्षा काल में अपने विद्वतापूर्ण व्याख्यान से मेरा ज्ञानवर्धन किया; के मंगलाशीष की मैं कामना करता हूँ।

मैं कृतज्ञ हूँ श्रद्धेय डॉ० राम सेवक सिंह (प्राचार्य, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर) का, जिन्होंने प्रत्येक कठिन अवसर पर अपनी कृपा दृष्टि से मेरा पथ प्रशस्त किया। जब भी कभी उलझनों और कठिनाइयों के कारण मैं निराश हुआ, तो उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढंग से मेरा साहस बढ़ाया और कर्तव्य पथ पर अग्रसर किया।

डॉ० राम प्रताप सिंह (पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर), जिनके पुनीत और सारगर्भित परामर्श से इस शोध-प्रबन्ध में

प्राण-रस का संचार हो सका है, उन्हें आभार प्रदर्शन के औपचारिक सूत्र में न बाँधकर मै उनके समक्ष नतमस्तक हूँ।

डॉ० जय सिंह 'व्यथित' (कुलपति, गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद), कैप्टन टी एन सिंह (प्रधानाचार्य, राजा हरपाल सिंह इण्टर कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर), मेजर अमर बहादुर सिंह (वरिष्ठ सदस्य, प्रबन्ध समिति, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर) तथा डॉ० भारत सिंह (रीडर, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर ) के अगाध स्नेह ने मुझे नयी दिशा और प्रेरणा प्रदान की। इन महानुभावों के प्रति मैं आत्मिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय के समस्त शिक्षकों का मै आभारी हूँ, जिनका सानिध्य मुझे सतत् सम्बल प्रदान करता रहा है।

इस अवसर पर दो पत्रकार महानुभावों डॉ० महन्थ दुबे तथा श्री राजेन्द्र बहादुर सिंह के प्रति अपनी अकृत्रिम कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जो मेरी हर-क्षण, हर-संभव मदद के लिये तत्पर रहते है।

श्रद्धेय श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह (अवकाश प्राप्त शिक्षक) तथा श्री सुधाकर सिंह (अधिवक्ता) के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इस कार्य हेतु मुझे बार-बार प्रेरित किया तथा मेरी कई पारिवारिक जिम्मेदारियो का निर्वहन स्वयं किया जिससे मुझे इस कार्य हेतु पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो सका।

यदि मित्रों का अयाचित स्नेह न मिलता तो यह शोध-प्रबन्ध इस रूप में पूरा हो पाता, इसमें सन्देह है।

श्री अजय प्रताप सिंह (शोध छात्र- हिन्दी), डॉ० सुनील कुमार सिंह (प्रवक्ता-हिन्दी) तथा डॉ० जाह्नवी प्रसाद उपाध्याय (प्रवक्ता-समाजशास्त्र) द्वारा प्राप्त स्नेह तथा सुविधायें अविस्मरणीय हैं।

मेरे मित्र और अनुज सम श्री सतीश कुमार सिंह ने सामग्री संचयन से लेकर शोध-प्रबन्ध के मुद्रण तक जो सहयोग दिया, वह अमूल्य है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उनके द्वारा किये गये उपकार को कम करके आँकना होगा।

डॉ० सरिता सिंह (प्रवक्ता-समाज शास्त्र) ने शोध-प्रबन्ध पूरा करने के लिये मुझे बार-बार प्रेरित किया। उनके स्नेह भरे तकाजों से ही यह शोध कार्य समय पर सम्पन्न हो सका। उनके प्रति कृतज्ञता और स्नेह की अभिव्यक्ति करना अपना निजी धर्म समझता हूँ।

डॉ० सुषमा सिंह (एम० ए०-राजनीति शास्त्र, पी-एच० डी०) तथा सुश्री पूनम तिवारी (एम० ए० पूर्वार्द्ध, हिन्दी) का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनके प्रोत्साहन एव सहयोग से शोध कार्य में गतिशीलता आयी।

श्री पूरन सिंह (इलाहाबाद), श्री दिनेश कुमार सिंह (फैजाबाद), डॉ० सजय कुमार श्रीवास्तव (प्रवक्ता-हिन्दी), डॉ० उमेश सिंह (प्रवक्ता-अर्थशास्त्र), श्री राम ध्यान जी (मऊ), श्री अतुल कृष्ण सिंह 'बंटी' (कर अधीक्षक), श्री मनोज कुमार सिंह (शोध छात्र-हिन्दी) , श्री संजय पाण्डेय (बलिया), श्री रितेश उपाध्याय (इलाहाबाद), श्री नीरज सिंह (बलिया), श्री उमेश पाठक (सुल्तानपुर), श्री अतुल सिंह 'राजू' (सुल्तानपुर), श्री प्रेमेन्द्र कुमार त्रिपाठी 'राजू' (प्रवक्ता-हिन्दी), श्री अखिलेन्द्र कुमार दुबे 'बल्लू' (झाँसी) आदि आत्मीय जनों का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने अध्ययन काल में मुझे प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान किया।

श्री राजेन्द्र बहादुर सिंह (कार्यालय अधीक्षक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का सहयोग मुझे बराबर मिलता रहा है। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर परिवारजनों का स्मरण करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस क्रम में सर्वप्रथम पूज्य माता-पिता के प्रति मेरा समस्त सम्मान, जिन्होंने अपने भौतिक सुखों की परवाह न करते हुये मेरे शैक्षिक उन्नयन से ही हर्षित होने का व्रत लिया है। अग्रज श्री राम आसरे सिंह ने मुझे निरन्तर सहयोग एवं प्रोत्साहन दिया। जीवन संगिनी श्रीमती पूनम सिंह ने मुझे नित्य प्रति की जिम्मेदारियों से मुक्त रखा तथा मेरी दैनिक आवश्यकताओं का बराबर ध्यान रखा। उषा, रीता तथा सन्तोष, ऋषभ के स्नेह ने मुझे निरन्तर प्रेरित किया। इन सबके प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं विशेष स्नेह की अभिव्यक्ति करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ, जिसकी फेलोशिप (शोधवृत्ति) पर मैंने यह शोध कार्य किया। उन विद्वज्जनों के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ, जिनकी कृतियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सहयोग मिला है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुस्तकालय के प्रति मैं

आभारी हूँ। यहाँ मुझे उन कृतियों का अध्ययन करने का अवसर मिला, जिनके नये संस्करण उपलब्ध नहीं हैं।

इस अवसर पर शिवम साइबर स्पॉट, प्रयाग के संचालक श्री प्रमोद शर्मा तथा टाइपिस्ट श्री मिश्री लाल का मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने तत्परता से शोध-प्रबन्ध का मुद्रण कार्य सम्पन्न किया।

राकेश सिंह

# अनुक्रम


**भूमिका** i-xxvii

अध्याय–1

**अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय** 1-47

**रोमांटिसिज्म–शब्द : उद्भव और विकास** 1

रोमांटिसिज्म की विभिन्न परिभाषाएँ

**रोमांटिसिज्म : युग परिस्थितियाँ एवं प्रेरणा स्रोत** 7

अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम

फ्रांसीसी क्रांति

औद्योगिक क्रांति

**रोमांटिक आन्दोलन की विकास यात्रा** 13

जर्मनी में रोमांटिक आन्दोलन

फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन

इंग्लैण्ड में रोमांटिक आन्दोलन

रूस में रोमांटिक आन्दोलन

रोमांटिक आन्दोलन का ह्रास

**रोमांटिसिज्म की प्रमुख प्रवृत्तियाँ** 29

स्वच्छन्दतावाद और अन्य वाद

स्वच्छन्दतावाद और शास्त्रीयतावाद

स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद

स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद

स्वच्छन्दतावाद और प्रतीकवाद

स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद

**स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) की विशेषताएँ** 36

रूढिवादिता के प्रति विद्रोह

सौन्दर्यवादी दृष्टि

व्यक्तिपरकता

प्रकृति – प्रेम

काल्पनिक व्यामोह

मध्ययुगीन आकर्षण एवं अद्भुत तत्व

भाषा–शैली तथा छन्द की स्वतन्त्रता

**अध्याय –2**

**हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण** 48-76

**हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : शब्द और आशय** 48

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा

**हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी काव्य–संरचना की परम्परा** 50

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद

**हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का काल–विभाजन** 62

प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावाद

छायावाद

उत्तर स्वच्छन्दतावाद

**हिन्दी स्वच्छन्दतावाद–युग परिस्थितियाँ, प्रेरणा और प्रभाव** 63

पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन

सामाजिक परिस्थितियाँ (आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थितियाँ)

धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण

काव्य रूढियों से मुक्ति

**निष्कर्ष** 72

अध्याय–3

**स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन** 77-110

**स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन का प्रारंभ** 77

रामचन्द्र शुक्ल

मुकुटधर पाण्डेय

नन्ददुलारे वाजपेयी

हजारीप्रसाद द्विवेदी

नगेन्द्र

**छायावादी कवियों का काव्य–विवेचन** 91

जयशंकर प्रसाद

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सुमित्रानन्दन पंत

महादेवी वर्मा

**मार्क्सवादी विवेचन–प्रगतिवादी विवेचन** 102

**स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी विवेचना** 106

अध्याय –4

**प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी काव्य** 111-143

**श्रीधर पाठक** 112

स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक कवि

अनूदित साहित्य : स्वच्छन्दतावाद का द्वार

मौलिक साहित्य : छायावाद का पूर्व रूप

**अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** 116

खड़ीबोली काव्य–निर्माता कवि

प्रिय प्रवास : खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य

**रामनरेश त्रिपाठी** 122

राष्ट्रीय भावनाओं के गायक कवि

मिलन – पथिक – स्वप्न : देशोद्धार का आह्वान

नवीन प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह

**मैथिलीशरण गुप्त** 135

राष्ट्रकवि

भारत भारती : राष्ट्रीय चेतना का उद्बोध

साकेत : नारी चरित्र की महान व्याख्या

**अध्याय–5**

**छायावादी काव्य** 144-226

**जयशंकर प्रसाद** 144

विकासमान व्यक्तित्व के कवि

काव्य यात्रा के प्रारम्भिक सोपान

झरना : छायावाद का उद्घोष

आँसू : व्यक्तित्व का प्रकाशन

लहर : प्रेम–यौवन–सौन्दर्य का स्वर

कामायनी : प्रौढतम कृति

**सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'** 170

विद्रोही चेतना के कवि

परिमल – गीतिका : वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व का आभास

अनामिका : स्वच्छन्दतावाद का प्रतिनिधित्व

सरोज स्मृति : स्वच्छन्दतावाद की नयी यथार्थ भूमि

राम की शक्ति पूजा : महाकाव्य का लघु विधान

तुलसीदास : रचनाकार का सांस्कृतिक दायित्व

**सुमित्रानन्दन पंत** 191

प्रकृति के कवि

लम्बी काव्य यात्रा

वीणा – ग्रन्थि : रोमांटिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन

पल्लव : स्वच्छन्दतावाद का घोषणा पत्र

युगवाणी – युगान्त : स्वच्छन्दतावाद की नयी दिशा

**महादेवी वर्मा** 207

रहस्यवाद की कवयित्री

नीहार : भावुकता का प्राधान्य

रश्मि : चिन्तन की नयी दिशा

नीरजा : सामंजस्यपूर्ण भाव चेतना

सान्ध्य गीत : वैराग्य भावना

दीपशिखा : ज्योति का लघु प्रहरी

# अध्याय –6


## उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य 227-285

**माखनलाल चतुर्वेदी** 227

एक भारतीय आत्मा

क्रान्तिचक्र का आह्वान

राष्ट्रीय चेतना : रोमानी तेवर

काव्य और जीवन में समन्वय

**हरिवंशराय 'बच्चन'** 236

अतृप्ति का बोध और मनोमय परितुष्टि

अन्तर्मुखता का भावोन्मेष

मधुकाव्य एवं प्रणय प्रगीत

जनमानस की व्यापक भावभूमि

**रामधारी सिंह 'दिनकर'** 255

राष्ट्रीय चेतना और रोमांस की सम्मिलित प्रवृत्ति

हुंकार : राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों का स्थिरीकरण

रसवन्ती : श्रृंगार चेतना की अभिव्यक्ति

कुरुक्षेत्र : युद्ध और शान्ति का प्रश्न

उर्वशी : कामाध्यात्म की समस्या

**बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'** 267

प्रकाशन के प्रति उदासीन

संक्रान्ति काल के कवि

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य : काव्य प्रतिष्ठा का मूलाधार

प्रेम काव्य : काव्य प्रासाद का आधार

**समापन** 286

**सहायक ग्रन्थ सूची** 288-294

# भूमिका

# भूमिका

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में स्वच्छन्दतावादी काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक इस काव्यधारा की प्रवृत्तियों–विशेषताओं और इस धारा के कवियों से सम्बन्धित अनेक शोध–प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं, किन्तु उनमें पर्याप्त दृष्टि–भेद है। प्रायः छायावादी काव्य को हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य मान लिया गया है और शोधकर्ताओं ने छायावाद के चार प्रमुख कवियों–जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा को ही स्वच्छन्दतावादी कवियों की परिधि में शामिल किया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य के सम्बन्ध में इन्हीं चारो कवियों का अलग–अलग या समग्र रूप से विवेचन किया गया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य–कृतियों तथा इस विषय पर अब तक प्रकाश में आये शोधकार्यों को देखते हुये ऐसा प्रतीत हुआ कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य पर नये दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इसी आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है– 'अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय'। हिन्दी में 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द अंग्रेजी के 'रोमाण्टिसिज्म' (Romanticism) शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः हिन्दी के 'स्वच्छन्दतावाद' को समझने के लिये अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' शब्द के उद्भव और विकास को समझना आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में रोमाण्टिसिज्म शब्द की व्युत्पत्ति का विवेचन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी कविता के उदय में भारतीय नवजागरण एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों की भूमिका प्रमुख रही है तथा भारतीय नवजागरण एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों ने पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया था। पश्चिम के धर्मसुधार आन्दोलनों, पुनर्जागरण, अमेरिका, फ्रांस और रूस की क्रान्तियों तथा औद्योगिक क्रान्ति ने भारत में नवजागरण की गति को तेज करने में भूमिका निभायी थी। अतः इस निष्कर्ष पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि भारतीय साहित्य में नवीन भाव धाराओं एवं चिंतन धाराओं का प्रवाह पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा के संपर्क से और भी वेग से प्रवाहमान हो चला। इसी दृष्टिकोण

से हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन पश्चिमी रोमांटिसिज्म के समक्ष रखकर किया गया है, जिससे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पर पड़े बाह्य प्रभाव और प्रेरणा की प्रकृति को समझा जा सके।

यूरोप में रोमाण्टिसिज्म पुनर्जागरण के साथ आया। पुनर्जागरण ने सारे यूरोप के जीवन को परिवर्तित कर दिया था। इसने जीवन के सारे पक्षों को प्रभावित किया। एक सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में पुनर्जागरण ने साहित्य कला और दर्शन सभी को प्रभावित किया। वैज्ञानिक अनुसंधानों से धार्मिक कट्टरता तथा पुरानी मान्यताओं को धक्का लगा। पुनर्जागरण के झोंके से सामन्तवाद समाप्त हो गया। पुनर्जागरण यूरोप में मानवतावाद की स्थापना करने में समर्थ हुआ। यही मानवतावाद रोमाण्टिसिज्म लाने का कारण बना। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में हुई तीन महत्वपूर्ण क्रान्तियों ने यूरोप की प्राचीन संस्कृति को पूर्णतः बदल डाला। इसने जीवन मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये, जीवन दृष्टि में युगान्तर स्थापित किया। इन सबका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में साहित्य और कला के क्षेत्र में यूरोप व्यापी रोमांटिक आन्दोलन प्रारंभ हुआ। इस आन्दोलन ने पश्चिमी यूरोप के देशों को विशेष रूप से प्रभावित किया। किन्तु सारे यूरोप में रोमांटिसिज्म आन्दोलन एक जैसा नहीं था। जर्मन रोमांटिक धारा का मुख्य उद्देश्य तर्क, बुद्धिवाद एवं विज्ञानवाद के अतिरेक को नियंत्रित कर धर्म एवं आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतिष्ठापना रहा है। उसकी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने बौद्धिकता और तार्किकता का विरोध कर अनुभूति और अन्तर्दृष्टि पर बल दिया। उसने यूरोप के रोमांटिक काव्य को समुचित दार्शनिक पीठिका प्रदान की। फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन ने काव्य, नाटक, उपन्यास, समीक्षा आदि साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त इतिहास, धर्म, राजनीति, दर्शन आदि के सम्बन्ध में विचार रखने वाले विचारकों और लेखकों को भी प्रभावित किया। देश के राजनीतिक विप्लव के कारण फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन इंग्लैण्ड की तुलना में कुछ देर से सक्रिय हुआ। पर यह ध्यान देने योग्य है कि फ्रांस में ही रोमांटिसिज्म के विचार का उद्भव हुआ। फ्रांस चिन्तन के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। फ्रांस के रोमांटिक आदोलन में प्रेरणा, प्रातिभज्ञान, कल्पना, सौन्दर्यानुभूति आदि की प्रधानता है। इन्हें

रोमांटिसिज्म का मूल तत्व माना जाता है। फ्रांसीसी रोमांटिक आन्दोलन ने यूरोपीय रोमांटिक आन्दोलन को विस्तार दिया।

रोमांटिक आन्दोलन का पूर्ण विकास इंग्लैण्ड में हुआ। विलियम वर्ड्सवर्थ को अंग्रेजी रोमांटिक धारा का प्रवर्तक माना जाता है। वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज ने 'लिरिकल बैलेड्स' का सम्पादन किया। यह घटना अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में एक युग प्रवर्तक साहित्यिक घटना है। 'लिरिकल बैलेड्स' के द्वितीय संस्करण में वर्ड्सवर्थ द्वारा लिखी गयी भूमिका 'रोमांटिक कविता का मेनीफेस्टो' कहा जाता है। अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन को वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, सर वाल्टर स्काट, बायरन, शेली, कीट्स आदि ने उत्कर्ष प्रदान किया।

अंग्रेजी और जर्मनी की रोमांटिक धारा का प्रभाव रूस पर भी पड़ा। रूस के प्रथम रोमांटिक कवि पुश्किन ने काव्य और कलाओं को रुढ़िवादिता की सीमा से बाहर निकाल कर उसे स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में रोमांटिक आन्दोलन का ह्रास हो जाता है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अतः वह निश्चित ही युगीन वातावरण के अनुकूल अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। अठारहवीं शताब्दी में जिस वातावरण ने रोमांटिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया था, उन्नीसवीं शताब्दी मे वह शीघ्रता से परिवर्तित होने लगा था। रोमांटिक प्रवृत्तियों के विपरीत तर्क, उपयोगितावाद, भौतिकवाद इत्यादि के नवीन प्रभाव सबल और सक्रिय हो उठे थे। यथार्थवादी साहित्य के अनुकूल भूमि तैयार हो चुकी थी। अतः कल्पना और भावना प्रधान रोमांटिक प्रवृत्तियॉ टिकी न रह सकीं। रोमांटिक युग की कल्पना और भावना के अतिरेक ने अव्यवस्था को जन्म दिया और रोमांटिक साहित्य जीवन निरपेक्ष हो गया। निष्कर्षतः प्रतिकूल युगीन परिस्थितियों के कारण वह टिका न रह सका।

रोमांटिसिज्म की प्रवृत्तियों को सही रूप में समझने के लिए अन्य वादों से उसकी भिन्नता और समानता पर भी विचार किया गया है। स्वच्छन्दतावाद शस्त्रीयतावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया। इसी प्रकार यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध में उन

साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाता है जो वास्तविक जीवन की अनुकृति से निर्मित होती हैं। स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद दोनों में कल्पना का प्राधान्य होता है। दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि आदर्शवाद उपयोगितावादी है, जबकि स्वच्छदतावाद 'कला कला के लिये' सिद्धांत का पक्षधर होने के कारण शुद्ध आनन्दवादी है। जहाँ तक प्रतीकवाद और स्वच्छन्दतावाद के बीच अन्तर का प्रश्न है– प्रतीक योजना स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक प्रवृत्ति विशेष है। इसी प्रकार रहस्यवादी काव्य में रहस्यानुभूति की व्यंजना प्रमुख रूप से होती है, जबकि स्वच्छन्दतावादी रचनाओं की यह प्रवृत्ति विशेष है।

प्रथम अध्याय के अंत में रोमांटिक साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन किया गया है। रोमांटिक साहित्य का सृजन शास्त्रीय रुढ़ियों के विरोध में हुआ। सैन्दर्य–प्रेम और सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा रोमांटिक साहित्य के दो प्रमुख तत्व है। व्यक्तिपरकता रोमांटिक साहित्य की प्रवृत्ति विशेष के रूप में दिखायी देती है। रोमांटिक कवि प्रकृति से विशेष अनुराग रखता है। रोमांटिक कवियों के प्रकृति चित्रण में आत्मीयता होती है। कल्पना को स्वच्छन्दतावाद में बहुत महत्व मिला है। कल्पना ने रोमांटिक कवियों की रचनाओं में भाषा और भाव के सौन्दर्य का आधान किया।, किन्तु कहीं–कहीं यह जीव और जगत के दुखों से हारे मन के पलायन का माध्यम भी बनी। रोमांटिक कवियों में मध्ययुगीन गीतों, गाथाओं एवं रोमानी कथाओं के प्रति जबर्दस्त आकर्षण मिलता है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति को महत्व दिया। सभी रोमांटिक कवि सायास शिल्प और अलंकरण के विरोधी थे। वे मानव के नैसर्गिक मूल भावों का चित्रण सहज तथा आडम्बरहीन भाषा–शैली में करने के पक्षधर थे। भाषा की सहजता के पक्षधर होने के बावजूद सभी रोमांटिक कवियों ने सूक्ष्म अर्थच्छायाओं को उद्घाटित करने के लिए भाषा और ध्वनि के संगीत का सुन्दर उपयोग किया है। छंद के संदर्भ में भी इस युग के कवि का स्वातन्त्र्य भाव स्पष्ट होता है। अपनी रुचि के अनुसार रोमांटिक कवियों ने विविध छंदों का प्रयोग किया है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक है– 'हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण'। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम हिन्दी स्वच्छन्दतावाद शब्द और उसके आशय का विवेचन किया गया है। विभिन्न विद्वानों

द्वारा दी गयी परिभाषाओं से स्वच्छन्दतावाद शब्द को समझने में मदद मिली है। इसके बाद हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी काव्य संरचना की परम्परा का विवेचन किया गया है। स्वच्छन्दता किसी युग विशेष का गुण न होकर मनुष्य की आन्तरिकता से जुडा तत्व है। इसलिये स्वच्छन्दतावाद के तत्व आदिकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल के साहित्य तक मिल सकते हैं। किन्तु आज हम जिस अर्थ में स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग करते हैं, वह आधुनिक युग की उत्पत्ति है। उसमें देश की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का योग है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से ही स्वच्छन्दवादिता का आभास मिलने लगता है। हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों ने काव्यधारा को नये–नये विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई, किन्तु भाषा ब्रज ही रहने दी। उनकी अभिव्यंजना पद्धति तथा प्रकृति चित्रण में स्वच्छन्दवादिता नहीं आ पायी। वस्तुतः हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दवादिता का अवतरण श्रीधर पाठक द्वारा सामने आया। उन्होंने अंग्रेजी रोमांटिक कवियों के काव्यों का भावानुवाद करके भाषा, भाव तथा छन्द का नूतन विधान प्रस्तुत किया। श्रीधर पाठक की परम्परा को रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' रुपनारायण पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि ने आगे बढ़ाया।

स्वच्छन्दतावाद का व्यापक प्रसार छायावादी कविता के माध्यम से हुआ। हिन्दी के छायावादी काव्य की अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य से अत्यधिक तदनुरूपता उस पर रोमांटिक प्रभाव को सिद्ध करती है। फिर भी छायावाद का विकास भारतीय परिस्थितियों में हुआ। इसने भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से प्रेरणा ग्रहण की।

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को लेकर अनेक विवाद हैं। कुछ विद्वान दोनों को एक मानते हैं, कुछ दोनों में अन्तर करते हैं। 'छायावाद' का नामकरण मुकुटधर पाण्डेय द्वारा 1920 ई0 तक हो चुका था। 'श्री शारदा' पत्रिका में छपे मुकुटधर पाण्डेय के चार लेख छायावाद के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय देते हैं। उन्होंने भाव प्रकाशन के एक नये मार्ग के रूप में छायावाद की आवश्यकता पर बल दिया। हिन्दी में छायावाद का प्रचलन आकस्मिक है। आरम्भ में जब छायावाद शब्द का प्रयोग किया गया तो इसका आशय अस्पष्टता और अमांसलता आदि से था। इस नाम से एक धूमिल, अस्त–व्यस्त,

वायवी चिंतन और सृजन के प्रतीक का बोध होता है। यह शब्द उस काव्य की संपूर्ण ध्वनि को व्यंजित नहीं करता। वस्तुतः यह हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा है और स्वच्छन्दतावाद का नामकरण ही इसके प्रति पूरी तरह से न्याय कर सकता है। जिसे हम छायावाद के नाम से जानते हैं, वह वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद ही है। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवियों के काव्य को एक साथ स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत ही समाहित किया जा सकता है।

स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति उस समय के समस्त साहित्य में किसी न किसी रूप में रही है, जबकि छायावाद नामकरण जिन विशेष रचनाओं के लिये दिया गया उनके अतिरिक्त इसमें और रचनाओं को समाहित करना अनुपयुक्त होगा। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद भारतीय नवजागरण की साहित्यिक निष्पत्ति है। छायावाद नामकरण इतना प्रचलित हो गया है और उस युग के काव्य विशेष के लिए रूढ़ हो गया है कि अपनी अर्थगत अस्पष्टता के बावजूद वह हिन्दी काव्य के एक विशेष काल खण्ड की कविता का बोध कराता है। छायावाद नाम को साहित्येतिहास से खारिज करना संभव नहीं है। फिर भी छायावाद के पहले के साहित्य और छायावाद के बाद के साहित्य तथा छायावादी साहित्य – इन तीनों समयों के समस्त साहित्य को एक साथ समझने के लिये स्वच्छन्दतावाद नामकरण की पहल की जानी चाहिये।

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– 1. प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी काव्य (पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य), 2. स्वच्छन्दतावादी काव्य (छायावादी काव्य), 3. उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य (नवस्वच्छन्दतावादी काव्य)। यह विभाजन सिर्फ अध्ययन की सुविधा के लिए है। साहित्य में किसी प्रवृत्ति को लेकर समय की कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। साहित्य की कई प्रवृत्तियाँ एक साथ चलती रहती हैं। प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य का समय वर्ष 1900 ई0 से 1920 ई0 तक माना जा सकता है तथा इसके अन्तर्गत श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि प्रमुख रूप से आते हैं। छायावाद जो स्वच्छन्दतावाद की सर्वोत्तम निष्पत्ति है, के अन्तर्गत प्रमुख कवियों में जयशंकर प्रसाद,

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा का अध्ययन किया जा सकता है। इसका समय 1920 ई0 से 1938 ई0 तक निर्धारित किया जा सकता है। उत्तर स्वच्छन्दतावाद का समय 1938 ई0 से 1960 ई0 तक माना जा सकता है। इस समय तक स्वच्छन्दतावाद का समापन हो जाता है। प्रमुख उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आते हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में स्वच्छन्दतावाद के तीनों कालों के चार–चार प्रमुख कवियों के काव्य का विवेचन किया गया है। इन कवियों के काव्य में स्वच्छन्दतावाद का संपूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है।

द्वितीय अध्याय के अन्त में हिन्दी स्वच्छन्दतावाद युग की परिस्थितियों तथा इस धारा को प्रेरित करने वाले कारकों और उनके प्रभाव का विवेचन किया गया है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से पश्चिमी चिंतन ने हमारे देश के ज्ञान की प्रत्येक धारा में प्रवेश पा लिया था। इस चिन्तन में साहित्यिक संरचना का क्रम भी अनुप्रेरित हुआ और नवीन साहित्यिक कृतियों में आदर्शवाद, परम्परानुमोदन, भावुकता और काव्यशास्त्रीय प्रतिबद्धता के स्थान पर यथार्थवादी समकालीन, तर्क प्रवण, स्वच्छन्दतावादी रचना–दृष्टि का विकास हुआ। साहित्यिक संरचना में इस परिवर्तन क्रम को लक्षित करके हम पाश्चात्य प्रभाव को अनदेखा नहीं कर सकते और न ही पश्चिमी चिंतन का आदान किसी हीन भाव का द्योतक होना चाहिये। वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य चिंतन के प्रभाव ने हमारी रचना–धर्मिता को नवीन आयाम प्रदान किये हैं और सृजन की सार्थकता प्रमाणित की है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के प्रादुर्भाव में भारत की समकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों ने कम या अधिक मात्रा में अपना सहयोग दिया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के आरंभ का काल देश में राजनैतिक संघर्षों और राष्ट्रीय आन्दोलन एवं विद्रोह का काल रहा है। भारत का स्वाधीनता संग्राम सिर्फ एक राजनीतिक आन्दोलन नहीं था, यह सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन भी था। राजनीतिक घटनाओं ने साहित्यिक आन्दोलनों को भी प्रभावित किया। स्वतन्त्रता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक बहुत बड़ा मूल्य है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारभिक दशकों में भारत की सामाजिक परिस्थितियों ने स्वच्छन्दतावादी

कवियो को प्रभावित किया। उन पर पाश्चात्य विचारधारा का भी प्रभाव पडा। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ पाश्चात्य विचारधारा भारत में प्रविष्ट हो गयी। समानता, विश्व बन्धुत्व की भावना तथा पाश्चात्य विचारों ने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के विकास में योगदान दिया। स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्‌भव और विकास को समकालीन आर्थिक परिस्थितियों ने भी प्रभावित किया। स्वच्छन्दतावादी काव्य में अभिव्यक्त निराशा तथा वेदना की प्रवृत्ति कुछ हद तक युग की आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित जान पडती है। इसी प्रकार भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण से उपजी नवीन परिस्थितियों के कारण भारतीय जनता में जो नवीन चेतना का संचार हुआ, नवीन उत्साह की तरंगे उठीं वे ही भारत के सांस्कृतिक जागरण की प्रेरणा थीं, जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के प्रवर्तन में कार्य कर रहा था।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है –'स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन'। इसके अन्तर्गत स्वच्छन्दतावादी काव्य विवेचन के प्रारंभ से लेकर उसकी मार्क्सवादी–प्रगतिवादी विवेचना और नयी विवेचना का अध्ययन किया गया है। स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया। स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप पर प्रामाणिक रूप से विचार करने वाले आचार्य शुक्ल प्रथम समीक्षक हैं। अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उन्होंने 'काव्य खण्ड – नई धारा : द्वितीय उत्थान' के अन्तर्गत स्वच्छन्दतावादी काव्य को परखा है तथा श्रीधर पाठक से उसकी शुरुआत मानी है। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की जीवनी शक्ति और अभिव्यक्ति का आधार लोकभूमि को माना है। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य सृजन की मूल प्रेरणा परिवर्तन की भावना को माना है। आचार्य शुक्ल के विवेचन से हम स्वच्छन्दतावाद की आधारभूमि से परिचित होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वच्छन्दतावाद के साथ 'सच्ची नैसर्गिक' विश्लेषण जोड़ते हैं। वे हिन्दी स्वच्छन्दतावाद को अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियों से समानता स्थापित करते हुए उसे अन्य विशिष्टताओं से भी मुक्त मानते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद पर भी विचार किया है। वे उसे स्वच्छन्दतावाद से अलग करके देखते हैं। उन्होंने अपने इतिहास ग्रंथ में छायावाद को 'आधुनिक काल–काव्य खण्ड–नई धारा :

तृतीय उत्थान' के अन्तर्गत रखा है और इसे स्वच्छन्दतावाद के विरुद्ध आयी कविता बताया है। वह छायावाद को सच्चे स्वच्छन्दतावाद यानी श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की काव्यधारा से काटकर अलग कर देते हैं। वे इसे ईसाई संतों के छायाभास (फैंटासमाटा) से जोड़कर देखते हैं। उन्होंने छायावाद को रहस्यवाद और प्रतीकवाद से जोड़कर देखा। चित्र–भाषावाद, अन्योक्ति पद्धति तथा प्रेमगान को ही मुख्य विषय के रूप में वे छायावाद की विशेषतायें मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के छायावाद सम्बन्धी विवेचन का प्रतिवाद हुआ है। उनकी समीक्षा दृष्टि छायावाद के अनुकूल नहीं थी। फिर भी छायावाद के प्रारभिक विवेचक होने के कारण उनके विवेचन का महत्व है।

स्वच्छन्दतावाद को समझने के लिए मुकुटधर पाण्डेय के विवेचन का विशेष महत्व है। वे छायावाद के आदि व्याख्याता हैं। मुकुटधर पाण्डेय द्वारा 'श्री शारदा' पत्रिका में छायावाद पर छपी लेखमाला का ऐतिहासिक महत्व है। इसी लेखमाला में छायावाद पर सबसे पहले विधिवत और प्रामाणिक रूप से विवेचन प्रस्तुत किया गया था। वह कवि–व्यक्तित्व की मौलिकता को अनिवार्य मानते हैं। अनुभूति की नवीनता तथा व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को वे कवि के लिये आवश्यक मानते हैं। उन्होंने छायावाद को भाव राज्य की वस्तु कहा है। उसमें केवल संकेत से काम लिया जाता है। भाषा उसमें भाव प्रकाशन का एक गौण साधन मात्र है। छायावाद के प्रारंभिक दिनों में छायावाद की सूक्ष्म अभिव्यंजना पद्धति जिसका आधार लाक्षणिकता और व्यंजकता थी, नये काव्य के विरोधियों के लिए उसका सबसे दुर्बल पक्ष बन कर आयी थी। मुकुटधर पाण्डेय ने इस विरोध का सामना करने के लिए सन्तुलन और ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दिया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के समर्थ व्याख्याता हैं। उन्होंने रोमांटिक प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की। स्वतन्त्रता की लालसा तथा बन्धनों का त्याग रोमान्टिक धारा का मूल है। रोमांटिक विषय–वस्तु के सम्बन्ध में वाजपेयी जी की मान्यता है कि रोमांटिक कवि सर्वसाधारण लोगों से लेकर छोटी सी छोटी वस्तुओं को अपने काव्य की विषय–वस्तु बना सकता है। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी कव्य की विशेषताओं, विशेषकर छायावादी काव्य को कई स्तरों पर पहचानने की चेष्टा की। उन्होंने इस बात का जोरदार खण्डन किया कि स्वच्छन्दतावादी काव्य यूरोपीय रोमांटिक

काव्य –प्रभाव की उपज है। वाजपेयी जी ने छायावाद के सांस्कृतिक परिवेश को विश्लेषित किया। वाजपेयी जी का मानना था कि प्रत्येक साहित्यिक आन्दोलन अपने समय और समाज को नजरअंदाज नहीं कर सकता। इसी संदर्भ में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय जीवन की पृष्ठभूमि पर छायावाद की परीक्षा की। छायावादी काव्य मूलतः अपने देश की उपज है – इस मान्यता को उन्होंने बार–बार प्रतिपादित किया। छायावाद को राष्ट्रीय जागरण का प्रतिनिधि कहकर उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के साथ राष्ट्रीय चेतना का सामंजस्य स्थापित किया।

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने रोमांटिक काव्यधारा के कवि के वैयक्तिक पक्ष  तथा उसकी भाव प्रवण दृष्टि की विवेचना की। रोमांटिक साहित्य की रचना के लिए कल्पनाशीलता पर अत्यधिक बल देते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि कल्पना की सहायता से ही रोमांटिक अनुभूतियॉ अभिव्यक्ति पाती हैं। अन्य आलोचकों के विपरीत आचार्य द्विवेदी रोमांटिक काव्य के मूल में विद्रोह की भावना नहीं मानते। उनका मत है कि रोमांटिक काव्य में विद्रोह की जो भावना परिलक्षित होती है वह आन्तरिक न होकर बाह्य परिस्थितिजन्य होती है। आचार्य द्विवेदी ने रोमांटिक काव्य की वर्ण्य वस्तु, रोमांटिक कवि की प्रवृत्ति तथा रोमांटिक काव्य की अभिव्यक्ति शैली पर विशदता से विचार किया है। उन्होंने छायावाद पर भी विचार किया है। वे छायावाद को एक मानवीय भूमि का काव्य घोषित करते हैं। उनकी मान्यता है कि उसमें जो जीवन व्याप्त है, उसे देखते हुये यह शब्द संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ–न्याय नहीं कर पाता। छायावाद शब्द से जो वायवीयता की व्यंग्य भरी ध्वनि आती है, वह एक प्रकार से इस काव्य के साथ अन्याय है। आचार्य द्विवेदी छायावाद को विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम मानते हैं। छायावादी काव्य को भारतीय चिन्ता धारा के स्वाभाविक विकास के रूप में ग्रहण कर द्विवेदी जी उसे गौरव प्रदान करते हैं और कई प्रचलित भ्रांतियों से मुक्ति दिलाने में हमारी सहायता करते हैं। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद अथवा रोमानी काव्य और छायावादी काव्य में अभेदत्व स्थापित किया।

डॉ0 नगेन्द्र ने स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। उन्होंने छायावाद को 'स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति आग्रह' कहकर सम्बोधित किया। छायावाद की

विवेचना करते हुए उन्होंने सर्वप्रथम उसकी सामाजिक पीठिका की ओर संकेत किया हैं। उनका विचार है कि छायावाद की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का कारण यह है कि राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अभिव्यक्ति का अवसर कम था। डॉ0 नगेन्द्र ने छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने छायावाद की अन्तर्मुखी दृष्टि और यथार्थ को वायवी अथवा अतीन्द्रिय रूप देने की प्रवृत्ति को उसकी मुख्य बनावट के रूप में प्रतिपादित किया। इसलिए व्यक्तिवाद को उन्होंने छायावादी काव्य–प्रवृत्तियों के शीर्ष पर रखा और अन्य सभी प्रवृत्तियों को भी अन्तर्मुखी दृष्टि के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। छायावादी काव्य की व्यक्तिवादिता, श्रृंगारिकता के लिए डॉ0 नगेन्द्र ने मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए उसे कवि की व्यक्तिगत कुंठाओं से जोड़ दिया है। उन्होंने छायावाद की कविता को श्रृंगारिक माना है काम को मूल प्रवृत्ति मानकर छायावादी काव्य की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। डॉ0 नगेन्द्र ने छायावादी काव्य को प्रथम श्रेणी का विश्व काव्य नहीं माना है।

छायावादी काव्य के विषय में छायावादी कवियों द्वारा किये गये काव्य विवेचन का भी अध्ययन इस अध्याय में किया गया है। जयशंकर प्रसाद के अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। संकल्पात्मक अनुभूति से कवि का अभिप्राय उस अनुभूति विशेष से है जो कल्याणमय और लालित्यपूर्ण है, जिसे उन्होंने श्रेय और प्रेय से अभिहित किया है। प्रसाद का मानना है कि आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में मूल संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है, काव्य के सम्बन्ध में अपनी मान्यताओं के बाद प्रसाद ने छायावाद पर विचार किया है। उन्होंने छायावादी काव्य को स्वानुभूति का प्रकाशन मानकर यह प्रमाणित किया है कि छायावाद ने प्रारंभ में भारतीय साहित्यिकता का अनुसरण किया। प्रसाद की काव्य विषयक मान्यतायें सर्वथा नवीन हैं।

छायावाद पर विचार करने वाले कवियों में निराला महत्वपूर्ण हैं। जहाँ प्रसाद ने छायावाद को भारतीय चिन्ताधारा का स्वाभाविक विकास कहकर विवेचित किया था, वहाँ निराला ने उसके सांस्कृतिक संदर्भों की तलाश की और उसे भारतीय नवजागरण से जोड़ा । उन्होंने इस काव्य की ऐतिहासिक

अनिवार्यता की ओर संकेत करते हुए इसे एक जागरण माना है। उन्होंने यह स्थापना की कि काव्य का एक महान सांस्कृतिक आशय होता है। वे काव्य को जीवन संदर्भों से जोडते हैं। वे कविता की छन्द मुक्तता को कविता के स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। निराला काव्य की स्वच्छन्दतावादी चेतना को वैदिक साहित्य से जोड़कर भी देखते हैं। उन्होंने छायावाद को सौन्दर्यवाद के रूप में प्रतिष्ठित करते हुये उसे भारतीय मनीषा का एक सनातन संस्कार घोषित किया।

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य सम्बन्धी विचार उनके काव्य–संग्रहों की लम्बी भूमिकाओं में मिलते हैं। उनके काव्य सम्बन्धी विचारों में बराबर परिवर्तन आता रहा है। पंत ने कविता को परिपूर्ण क्षणों की वाणी कहा है। वे कहते हैं कि कविता में भावों की अभिव्यक्ति अन्य कलाओं एवं माध्यमों से भिन्न है। भावों का आन्तरिक स्पंदन जितनी सूक्ष्मता और स्पष्टता से संपूर्ण सौन्दर्य को ध्वनित करता हुआ कविता में व्यक्त होता है उतना किसी अन्य कला में नहीं। उन्होंने भाषा को संसार का नादमय चित्र कहकर खड़ीबोली को काव्य के नये संवेदनों के लिए ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त घोषित किया। पन्त 'चिदम्बरा' की भूमिका में छायावाद पर नये सिरे से विचार करते हैं। छायावाद के भावात्मक दृष्टिकोण पर जोर देते हुए वे कहते हैं कि छायावाद की सार्थकता उस युग के विशिष्ट भावात्मक दृष्टिकोण तक ही सीमित है, जो भारतीय जागरण की चेतना का सर्वात्मवाद मूलक कैशोर का शुभारम्भ भर था। पन्त ने छायावाद में कल्पना तत्व की महत्वपूर्ण स्थिति स्वीकार की। पन्त प्रकृति की भूमि से होकर स्वच्छन्दतावादी जगत् में आये थे। इसलिए उनके चिंतन और काव्य दोनों में मानव–प्रवृत्ति की आपसी निकटता का आग्रह है। पन्त अन्य कवियों की तरह छायावाद की समग्र व्याख्या नहीं कर सके क्योंकि उनकी मान्यताओं में बराबर परिवर्तन आता रहा है। किन्तु उनकी शिल्प सम्बन्धी अवधारणाओं में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। 'पल्लव' की भूमिका में उन्होंने काव्य शिल्प पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने छायावादी कविता के लिए खड़ीबोली को सर्वाधिक उपयुक्त बताया। उन्होंने भाव–भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य की आवश्यकता पर जोर दिया। उनके अनुसार कविता में शब्द और अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं। इसी प्रकार 'पल्लव' की भूमिका

में पन्त ने छन्द पर विस्तार से चर्चा की है। उनके अनुसार प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण संगीत के अनुसार होने चाहिए। वे शिल्प जगत में आजादी की मॉग करते हैं।

महादेवी वर्मा छायावाद की सर्वाधिक निष्ठावान साधक एवं समर्थ विचारक रही हैं। उन्हें छायावाद को जीवन देने का श्रेय प्रदान किया जाता है। महादेवी ने छायावृत्ति को ही वास्तविक काव्य प्रवृत्ति स्वीकार किया है। उन्होंने छायावृत्ति का उद्‌गम कल्पना, वेदना और सहानुभूति से माना है। उन्होंने छायावाद शब्द को उपयुक्त माना है। उन्होंने छायावाद पर लगे इस आरोप का खण्डन किया कि वह केवल मध्यवर्ग का काव्य है और इसमें संघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन का भाव है। उन्होंने छायावाद को दार्शनिक आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया तथा अपनी रहस्योन्मुख चेतना और करुण भावना से उसकी संगति बैठायी। छायावाद के शिल्प पक्ष की चर्चा करते हुये महादेवी वर्मा ने सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के लिए नये शिल्प विधान की आवश्यकता पर जोर दिया। उनकी काव्य मान्यतायें छायावादी काव्य को समझने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।

स्वच्छन्दतावाद के मार्क्सवादी विवेचन में स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील पक्ष का समर्थन मिलता है। मार्क्सवादी चिंतकों का मानना है कि स्वच्छन्दतावाद के कुछ तत्वों के बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक स्वरूप है। छायावादी काव्य के निर्माण की ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका को मार्क्सवाद ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। इस स्वीकृति के आलोक में हिन्दी की प्रगतिवादी समीक्षा ने छायावाद का समर्थन किया तथा उसके मानवतावादी पक्ष की सराहना की, किन्तु उसकी कल्पनाशीलता तथा रोमानी प्रवृत्ति का विरोध किया।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है– 'प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य'। इसके अन्तर्गत स्वच्छन्दतावाद के प्रारंभिक दौर के चार कवियों के काव्य का विवेचन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की शुरुआत श्रीधर पाठक से होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें सच्चे स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक माना है। अंग्रेजी की रोमांटिक काव्य परम्परा से हिन्दी जगत को परिचित कराने के लिए उन्होंने अंग्रेजी कवियों की कृतियों का भावानुवाद प्रस्तुत किया। उनके अनुवाद साहित्य का हिन्दी काव्य

साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा। इसी अनुवाद से हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी तत्वों का प्रवेश हुआ। अंग्रेजी काव्य का वस्तु चयन, शब्दों की कमी के साथ मातृभूमि का प्रेम, पदार्थों, मनुष्यों आदि का यथार्थ वर्णन और मानवीयता के लक्षण – इन अनुवादों के माध्यम से हिन्दी साहित्य को मिले। अंग्रेजी की रचनाओं विशेषकर देशभक्ति पूर्ण रचनाओं का हिन्दी साहित्य पर बड़ा प्रभाव पडा। श्रीधर पाठक रीतिकालीन परम्परा को तोडकर स्वच्छन्द परंम्परा को अपनाने वाले एक तरह से क्रान्तिकारी कवि थे। इस रूप में वह नयी चेतना के प्रतीक थे। उनके अनुवादों ने स्वच्छन्दतावाद का द्वार खोल दिया।

श्रीधर पाठक ने अपनी मौलिक रचनाओं में प्रकृति निरीक्षण की एक नूतन दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होंने प्रकृति को आलम्बन रूप में ग्रहण करके परम्परागत रूढ़ प्रकार के वर्णनों से आगे बढ़कर प्राकृतिक छटा का उन्मुक्त चित्रण किया है और प्रकृतिजन्य आनंद की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

श्रीधर पाठक प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वदेश प्रेम तथा समाज सुधार की भावनाओं के कवि थे। छायावादी काव्य का पूर्व रूप उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रकृति वर्णन में उन्होंने अपनी स्वच्छन्द परम्परा का परिचय दिया, जिसे रोमांटिक परम्परा के अंतर्गत रखा जा सकता है।

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का स्थान महत्वपूर्ण है। खडीबोली को काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में हरिऔध का नाम आदर से लिया जाता है। कवि के रूप में उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि 'प्रिय प्रवास' के कारण मिली। यह खड़ीबोली मे रचित प्रथम महाकाव्य है। इसमें कवि ने कृष्ण सम्बन्धी चित्रण में युगानुरूप परिवर्तन करते हुये उनके अलौकिक चरित्र को लौकिक रूप में चित्रित किया है। हरिऔध ने कृष्ण के रूप में शक्ति और शील से सम्पन्न, मानवतादर्श का प्रतीक और लोक–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत व्यक्तित्व रचा है। राधा का चित्रण लोक सेविका, कृष्ण की अनन्य उपासिका तथा ब्रज की आराध्य देवी के रूप में किया है। हरिऔध ने राधा को मध्ययुगीन चहारदीवारी से निकालकर आधुनिक युग की सजग और लोकहित से समन्वित नारी के रूप में गढ़ा है।

प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का नाम महत्वपूर्ण है। श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद को जन्म दिया था, रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं द्वारा उस परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की अनुभूतियॉ उनकी रचनाओं का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मंच पर वह राष्ट्रीय भावनाओं के गायक के रूप में बहुत लोकप्रिय हुए।

रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य में परम्पराओं के निर्वाह की अपेक्षा नवीन प्रवृत्तियों को अपनाने के प्रति अधिक आग्रह दिखाया है। अपने समकालीनों से पृथक्, इतिहास से दूर अपनी कल्पना के बल पर कथावस्तु का निर्माण कर उन्होंने अपने समय की गतिविधियों को समेटने का प्रयत्न किया। कल्पना–प्रसूत कथा के कारण कवि को अपनी स्वच्छन्द भावना के प्रकाशन में मदद मिली। उन्होंने अपने काव्यों का प्रारम्भ मंगलाचरण से न करके प्रकृति के मंगलमय, उल्लासमय वातावरण से किया है। यह वातावरण उनके काव्य में औत्सुक्य और जिज्ञासा का सृजन करता है। उनके काव्यों में प्रेम की पीठिका पर राष्ट्रीय चेतना का मार्मिक उद्‌घाटन किया गया है, जो मानवीय आदर्शों को समेट कर मर्म का स्पर्श करने वाला बन गया है।

रामनरेश त्रिपाठी के बाद मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का विवेचन किया गया है। गुप्त जी में राष्ट्रीय स्वर प्रधान था। उन्होंने अपने समसामयिक, नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आकांक्षाओं को वाणी देकर खड़ीबोली को युगीन चेतना से जोड़ा। वे जिस राष्ट्रीय चेतना को लेकर काव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए उसमें पुराने मूल्यों में अटूट आस्था होने के बावजूद वर्तमान की समस्याओं के प्रति पूर्ण जागरूकता थी।

गुप्त जी की प्रमुख कृतियों का विवेचन भी किया गया है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'साकेत' महाकाव्य है। 'साकेत' का प्रणयन मूलतः उर्मिला के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए किया गया था। इसकी कथावस्तु का कोमल ताना–बाना प्रधान पात्र उर्मिला को सम्बद्ध करते हुए और सभी घटनाओं को साकेत में केन्द्रित करते हुए बुना गया है। 'राम का चरित' इस प्रबंध काव्य का आधार फलक है। इसकी नव्यता है कि यह राम और सीता के स्थान पर परम्परा से हटकर उर्मिला और

लक्ष्मण की प्रेम कथा है। नारी के चरित्र की महान व्याख्या करना 'साकेत' का लक्ष्य रहा है। इस काव्य में मैथिलीशरण गुप्त की खडीबोली काव्योपयुक्तता एवं लोकप्रियता के सोपान पर चढ़ती हुई दिखाई देती है। 'साकेत' खड़ीबोली का एक समर्थ और मौलिक महाकाव्य है। खडीबोली को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के पीछे गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना थी। उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक है। उन्होंने प्राचीन भारत का गौरवगान अत्यन्त ओजस्वी वाणी में किया और उसे आधुनिक संदर्भों से जोड़ा। उनके काव्य में मानवता की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

पंचम अध्याय का शीर्षक है – 'छायावादी काव्य'। यह काव्य धारा हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। छायावाद मुख्यतः जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा के काव्यों का मुख्य स्वर रहा है।

छायावाद के प्रमुख कवियों में पहला नाम जयशंकर प्रसाद का आता है। प्रस्तुत अध्याय में उनकी काव्य रचनाओं पर दृष्टि डालते हुए उनकी काव्यगत विशिष्टताओं का विवेचन किया गया है। प्रसाद ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में कविता लिखकर की। प्रसाद को अपने जीवन के आरंभ में एक वैभवशाली सामन्ती परिवेश मिला था। इन्हीं संस्कारों के कारण उनकी भाषा में संस्कृत बहुलता आयी। प्रसाद का पारिवारिक परिवेश ऐसा था जिसमें उन्हें विद्वानों एवं कलाकारों के संपर्क में आने का अवसर मिला। प्रसाद को विद्यालय में विधिवत शिक्षा ग्रहण करने का कम अवसर मिल पाया था। इस अभाव की पूर्ति उन्होंने विद्वानों एवं कलाकारों के सानिध्य में रहकर की। काव्य के संदर्भ में प्रसाद ने अपनी आरंभिक कृतियों में पुराणों तथा अति प्राचीन कथाओं से सामग्री प्राप्त की। उन्होंने क्रमशः अपने अध्ययन क्रम का विकास किया और पुराणों के मिथकीय संसार से आगे बढ़कर इतिहास की जटिलताओं में प्रवेश किया। उस समय देश में राष्ट्रीय भावना तीव्रतर होती जा रही थी। बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास को एक प्रकार का पुनर्जीवन प्रदान कर रहा था। भारतीय मनीषा के सक्रिय योगदान के फलस्वरूप उन्नीसवीं शती में नवजागरण आया। प्राचीन परम्पराओं को नये सिरे से देखने की चेष्टा की गयी। प्रसाद का नाट्य साहित्य इसका उदाहरण है।

प्रसाद की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक थी। वह भारत को आर्यो का आदि देश तथा जन्म भूमि घोषित करते हैं।

ब्रजभाषा में काव्य–रचना की शुरुआत करने वाले प्रसाद ने शीघ्र ही खड़ीबोली को अपना लिया। उन्होंने ब्रजभाषा में अभिव्यक्ति की नयी संभावनाओं को तलाशकर उसका खडीबोली को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में उपयोग किया। प्रसाद अपने कवि व्यक्तित्व को बराबर विकसित करते चलते हैं। यह विकास उनकी रचनाओं के क्रम में देखा जा सकता है। 'कानन कुसुम' की कविताओं में रोमानी वातावरण के निर्माण में प्रसाद प्रकृति का उपयोग करके अपनी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति का संकेत करते हैं। फिर भी इन रचनाओं में उनकी स्वच्छन्दवादिता पूरी तरह खुलकर नहीं आ पाती। 'कानन कुसुम' तक आकर वे खड़ीबोली का आधार ग्रहण कर लेते हैं। खड़ीबोली का आधार ग्रहण कर लेने के कारण ये कवितायें सहज ही परम्परामुक्त हैं। 'झरना' संग्रह तक आते–आते कवि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का स्पष्ट उद्घोष कर देता है। यहॉ सौन्दर्य और प्रेम की सम्मिलित अनुभूतियों से निर्मित भाव जगत में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ गीति के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। 'झरना' छायावादी काव्य के आगमन की सूचना देता है।

प्रसाद का अगली रचना 'आँसू' स्वच्छन्दतावादी काव्य के इतिहास में एक नये मोड़ की सूचना देती है। यहॉ आकर प्रसाद अपने कवि व्यक्तित्व का विस्तार करते हैं। यह उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन है। 'आँसू' में कवि अपनी नितान्त निजी और वैयक्तिक प्रेमानुभूति को साहस के साथ अभिव्यक्त करता है। 'आँसू' यह संकेत करता है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य वैयक्तिक अनुभूतियों का सक्षम प्रयोग करता हुआ जीवन की अन्य दिशाओं का समावेश भी स्वयं में कर सकता है। यहॉ प्रसाद स्वयं को पहचानते हैं। 'आँसू' में मानवीय भावनाओं की समर्थ अभिव्यक्ति है।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का चरम विकास कर प्रसाद अपनी प्रौढ़तम कृति 'कामायनी' का सृजन करते हैं, जिसमें उनकी सारी साधना और चिन्तन का निचोड़ है। वर्णन प्रधान महाकाव्यों की परम्परा से अलग पथ निर्मित करते हुए प्रसाद मानव मनोवेगों के विश्लेषण को आधार बनाते हैं। 'कामायनी' के बहुत से सर्गों के नाम मानव मनोभावों पर आधारित हैं। अन्तर्जगत के चित्रण में इस महाकाव्य ने

काव्य–जगत को नई दिशा दी है। पात्रों की उदात्तता की दृष्टि से कामायनी उच्चकोटि की है। सृष्टि के आदि युग के चित्रण के बावजूद कामायनी के समाधान सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं। महाकाव्यों में उद्देश्य की महानता सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से कामायनी विश्व साहित्य में अप्रतिम है। वैसे तो महान उद्देश्य सभी महाकाव्यों में होते हैं किन्तु वे प्रायः विशिष्ट धर्म, विशिष्ट वर्ग या विशिष्ट संस्कृति के लोगों के लिए होते हैं, किन्तु प्रसाद ने सारी सीमाओं को लांघकर मानव मात्र के लिए संदेश दिया है और वह संदेश भी अन्धविश्वास पूर्ण, धर्म, पुराण या इस तरह की किसी अन्य भित्ति पर आधारित न होकर विज्ञान और मनोविज्ञान से अनुमोदित है। आज मनुष्य बौद्धिक और भौतिक अतिरेक से पीड़ित और स्वार्थ की कारा में बन्द होने के कारण बडी असहायावस्था में तथा अशान्त है। प्रसाद इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामंजस्य एवं बुद्धि एवं हृदय के समन्वय द्वारा प्रेम के 'स्व' की परिधि विस्तृत करके 'स्व' और 'पर' के भेद मिटाकर हर प्रकार की समरसता स्थापित करने का संदेश देते हैं। इसी पथ पर चलकर शाश्वत मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकेगी और टूटा तथा अस्वस्थ मानव–जीवन स्वस्थ, पूर्ण और शान्त हो सकेगा।

छायावाद के दूसरे कवि हैं– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। अपने विद्रोही स्वर और असमझौतावादी रुख के कारण निराला का छायावादी कवियों में एक विशिष्ट स्थान है। अपने कृतित्व के आरंभ में उन्हें प्रकाशकों, सम्पादकों एवं आलोचकों के विरोध का सामना करना पडा। निराला को आलोचकों से अधिक उनके पाठकों ने स्वीकारा।

निराला के जीवन और उनकी रचना में अन्तर्विरोध कम है। उन्होंने जैसा जीवन जिया, वैसा ही लिखा भी। फिर भी अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को उन्होंने अपनी रचना में एक सीमा से अधिक प्रक्षेपित नहीं होने दिया। जीवन के उतार चढ़ावों में वे वृहत्तर समाज से जुड़ने की सामर्थ्य बढ़ा लेते थे, जिस कारण अन्तर्मुखी होने से बच जाते थे। उनका जीवन संघर्ष भरा था, जिसे उन्होंने मौन भाव से स्वीकारा था। वे अपने जीवन के अंतिम दिनों तक सृजनरत रहे। इस बीच भारतीय इतिहास ने कई आरोह–अवरोह देखे और आजादी भी आयी। बहुत से लेखकों ने सुविधा की नयी स्थितियों से समझौता कर लिया, पर निराला की संघर्ष गाथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी समाप्त नहीं हुई। उनके जीवन में

कुछ ऐसी घटनायें घटीं, जिन्होंने उन्हें कई बार तोड़कर रख दिया, फिर भी बार–बार वे उनसे उबर जाते थे। भीतर का संकल्प, एक अदम्य जिजीविषा, जीवन से निरन्तर साक्षात्कार, वेदान्ती दृष्टि – इन सबने मिलकर उनकी लम्बी सृजन यात्रा के पाथेय दिया। उनकी आन्तरिक पीड़ाएँ कई बार कविताओं में झॉकती हैं, पर उनके काव्य में ऐसे क्षण बहुत कम मिलेंगे जब कोई विषम परिस्थिति उन्हें पूरी तरह दबोच दे। उन्होंने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को अपने रचनाकार पर कभी हावी नहीं होने दिया। हिन्दी साहित्य के स्वच्छन्दतावादी कवियों में अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठने की शक्ति सबसे अधिक निराला में है।

निराला आधुनिक हिन्दी काव्य में वसन्त के अग्रदूत हैं। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद को अर्थदीप्ति देता है, उसमें नये आयाम विकसित करता है और वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं से लेकर प्रगति–प्रयोग तक जाता है। वे मूलतः स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व के रचनाकार हैं, पर इस रोमानी आन्दोलन के जितने पक्ष उनकी रचनाओं में उजागर हुये हैं उतने किसी में नहीं प्राप्त होते। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य को विस्तृत आयाम दिये। इसलिए हिन्दी प्रगतिवाद उनमें अपना प्रस्थान बिन्दु स्वीकार करता है और नया हिन्दी काव्य उनमें अपना पूर्वाभास देखता है। निराला की कृतियों में भारतीय नवजागरण पूरी सर्जनात्मकता में प्रतिफलित है। कई भूमियों को स्पर्श करती हुई उनकी रचनायें वैविध्यपूर्ण हैं।

इस अध्याय में निराला के काव्य संकलनों का भी विवेचन किया गया है। उनके प्रथम काव्य संकलन 'परिमल' से लेकर उनके काव्य 'तुलसीदास' तक के बीच की स्वच्छन्दतावादी भावभूमि वाली कविताओं को विवेचन का आधार बनाया गया है। 'परिमल' जहॉ निराला के कवि व्यक्तित्व की संभावनाओं के द्वार खोलती है वहीं 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी कविताएँ उन्हें महाकवि की कोटि में रखती हैं। निराला ने एक लम्बी और सार्थक काव्य यात्रा तय की। उनके काव्य के तेवर भी बदलते रहे हैं। उनके काव्य में हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की अनेक संभावनाओं के प्रमाण मिलते हैं।

छायावाद के अगले कवि के रूप में सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का विवेचन किया गया है। अपनी समूची रचना सामर्थ्य के साथ वह एक तरफ छायावादी काव्यान्दोलन के प्रवर्तन में अपना सहयोग देते हैं, दूसरी तरफ अपनी रचना धर्मिता के वैशिष्ट्य के साथ कलात्मक तथा भावात्मक दोनों दृष्टियों से छायावाद की प्रतिष्ठा में अपना योगदान सुनिश्चित करते हैं। एक लम्बी काव्य यात्रा तय करने वाले पन्त को अनेक काव्यान्दोलनों को देखने का अवसर मिला है। अपनी प्रारंभिक कविताओं के आधार पर वे प्रकृति के कवि कहलाये। प्रकृति का काव्यात्मक संश्लेष उनके काव्य में रचनात्मक उत्कर्ष प्राप्त करता है। शुरू–शुरू में पन्त प्रकृति के प्रति विस्मय विमुग्ध थे, पर धीरे–धीरे कवि के वैयक्तिक संवेदन उसमें सम्मिलित होते गये और एक रोमानी जगत निर्मित हुआ। पन्त की स्वच्छन्दतावादी चेतना की बनावट में प्रकृति के प्रति उनकी बदलती प्रतिक्रियाओं का भी प्रभाव रहा है। जो प्रकृति आरम्भ में पन्त के सम्मुख अपने स्वतन्त्र रूप में उपस्थित थी, उसे उन्होंने आगे चलकर प्रिया, सखी, संगिनि आदि के रूप में देखा और यह उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्रकाशन कहा जायेगा। प्रकृति और मानवीय भावनाओं के संवाद की प्रक्रिया हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति मानी जाती है और इस दिशा में पन्त का प्रदेय महत्वपूर्ण है।

प्रथम प्रकाशित कृति 'उच्छ्वास' से लेकर 'लोकायतन' तक की लम्बी काव्य यात्रा में पन्त की रचनाओं में कई बदलाव आये हैं। इसका कारण उनकी बदलती हुई विचारधारा है। अपने काव्य संकलनों की लम्बी भूमिकाओं में वे क्रमशः अपने बदलाव के औचित्य को प्रमाणित करते चलते हैं। इस तरह पन्त के काव्य के कई चरण आते हैं। 'वीणा' में स्वच्छन्दतावादी कविता अपनी मुख्य प्रवृत्तियों के साथ सम्बोध–गीतों के रूप में व्यक्त होती है। यहाँ कवि प्रकृति और मानव जीवन के सम्बन्ध का प्रश्न भी उठाता है। 'ग्रंथि' पन्त की रोमांटिक वृत्तियों को एक प्रेम कथा के माध्यम से प्रकाश में ले आती है। 'पल्लव' पन्त के काव्य का प्रौढ़ चरण है। इस संग्रह की भूमिका हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का घोषणा पत्र कही जाती है। स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी भूमि का परिचय पंत 'पल्लव' की भूमिका में देते हैं तथा अपनी रचनाओं में इसे प्रमाणित भी करते हैं। किन्तु इसी संग्रह की 'परिवर्तन' जैसी कवितायें पन्त के प्रकृति और रोमांस जगत से बाहर निकलकर वृहत्तर संदर्भों से जुड़ने की सूचना भी

देती हैं। 'गुंजन' तक आते–आते पन्त की निजी अनुभूतियॉ और निजी जीवन प्रसंग उनकी कविताओं में अधिक स्पष्ट होने लगते हैं। पन्त की रोमानी दुनिया का अधिकांश कल्पना द्वारा निर्मित होता है। उनकी समृद्ध कल्पना और प्रकृति को पास से देखी गयी अनुभूति ने उनके जीवन प्रसंगों का मनोनुकूल प्रयोग करने में सहायता दी। 'युगान्त' की कविताएं नये मोड़ की सूचक हैं। यहॉ पन्त कल्पना लोक से बाहर निकलकर यथार्थ की कठोर भूमि पर आते हैं। 'युगान्त' की तरह ही 'युगवाणी' में वे युग की सच्चाइयों से मुलाकात करते हैं। यहॉ से स्वच्छन्दतावादी कविता एक नयी दिशा की ओर मुडने का संकेत करती है।

छायावाद के कवि चतुष्टय की अंतिम कड़ी के रूप में महादेवी वर्मा के काव्य का विवेचन किया गया है। छायावाद के अन्य कवियों से भिन्न उनकी एक विशिष्टता है– वह अंग्रेजी और बंगला के रोमांटिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होती हैं। वह छायावाद के अन्तर्गत रहस्यवाद की कवयित्री मानी जाती हैं। वह रहस्यवाद को छायावाद का ही दूसरा चरण मानती हैं। इसका प्रथम चरण प्रकृति का वैविध्य और उसके सौन्दर्य का मानवीकरण है। जब स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति–सौन्दर्य के प्रति समर्पित हुआ, तब रहस्यवाद की शुरुआत हुई। महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य से रहस्यवाद को जोड़कर उसे आधुनिक रूप दिया और मध्य युगीन रहस्यवादी प्रवृत्तियों से उसके पृथक् व्यक्तित्व की घोषणा की। उन्होंने आधुनिक रहस्यवाद को धर्म निरपेक्ष प्रमाणित किया और आत्म समर्पण को उसका प्रस्थान बिन्दु घोषित किया, अलौकिक तत्वों के होते हुए उनमें अनुभूति की तीव्रता को एक आवश्यक उपादान के रूप में स्वीकार किया।

महादेवी वर्मा का समस्त काव्य वेदनामय है। यह वेदना लौकिक जगत से भिन्न आध्यात्मिक जगत की वेदना है, जो उसी के लिए सहज संवेद्य हो सकती है जिसने उस अनुभूति क्षेत्र में प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दुख की संज्ञा देती हैं जो सारे संसार को एक सूत्र में बॉधे रखने की क्षमता रखता है। इसी आध्यात्मिक वेदना की दिशा में प्रथम काव्य कृति 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक महादेवी वर्मा के काव्य की सूक्ष्म एवं विवृत भवानुभूतियों का विकास और प्रसार दिखाई देता है।

षष्टम अध्याय का शीर्षक है – 'उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य'। इसके अन्तर्गत प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में अन्तः सलिला की भाँति प्रवाहित स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन किया गया है। इस समय के रोमांटिक साहित्य में कथ्य और शिल्प के दृष्टिकोण में अन्तर आ जाता है। माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्यों को आधार बनाकर उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन किया गया है।

सर्वप्रथम माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का विवेचन किया गया है। उनकी पूरी काव्य–चेतना हमारे राष्ट्रीय इतिहास के उस दौर में सक्रिय हुई थी, जब अपने देश की पराधीनता की प्रतीति के कारण क्रान्तिशील राष्ट्रीयता प्रबुद्ध, ईमानदार और संवेदनशील भारतीय का सबसे मूल्यवान और सार्थक गुण था। सत्ता से असहमति अब विरोध और विद्रोह का रूप ले चुकी थी। तत्कालीन साहित्य की महत्वपूर्ण प्रेरणा विद्रोही राष्ट्रीयता हो गयी थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लिये 'एक भारतीय आत्मा' उपनाम चुना। वे अपने समय के सच्चे भारतीय नागरिक एवं सच्चे साहित्यकार दोनों की सच्ची भूमिका में उतरते हैं। उन्होंने कविता या कारा के स्थान पर कविता और कारा दोनों को स्वीकार किया। कविता लिखकर वे कैदी बने और कैदी बनकर कवितायें लिखीं।

स्वच्छन्दतावाद के कई कोण माखनलाल जी की रचनाओं में उभरते हैं। उनकी कवितायें राष्ट्र के प्रति एक आतुरता भरी भावुकता से ओत–प्रोत हैं, जिसकी बनावट में एक भारतीय आत्मा की रोमानी प्रवृत्ति अपनी भूमिका अदा करती है। उनकी कवितायें केवल देश प्रेम के भावोच्छ्वासों से सन्तुष्ट नहीं होती, वहाँ राष्ट्रीय चेतना का एक संपूर्ण बिम्ब मौजूद है। कवि राष्ट्र को उसकी समग्रता मे देखता है और उसके चित्र बनाता है। वह अपने व्यक्तित्व के साथ वहॉ उपस्थित है, वक्तव्यों के साथ नहीं।

माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावाद के लगभग समानान्तर यात्रा की, इसलिए उनकी चेतना में रोमानी तत्व सहज भाव से आ गये, थोड़ा वे राष्ट्रीय चेतना की ओर, थोडा आध्यात्मिकता की ओर, पर उनमें रोमानी प्रवृत्तियॉ बनी रहीं। संयोग से वे इतिहास के उस मोड़ पर अपनी रचना लेकर उपस्थित हुये जब स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने सर्वोत्तम से गुजर रहा था, इसलिए उसकी ताजगी से उनका परिचय हुआ। उन्होंने गीतों का माध्यम चुना पर कोशिश यह थी कि वे एक नया मुहावरा अपनायें।

उन्होंने प्रतीकों की एक नयी दुनिया तलाशने में मेहनत की और भाषा की सहजता को पकड़ा। भाषा का नया मुहावरा तलाश कर माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य के कुछ तत्व अकाल कवलित होने से बचा लिया। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद से अपनी यात्रा आरंभ करके उसके भीतर नयी संभावनायें जगाता है।

अगले कवि के रूप में हरिवंशराय 'बच्चन' के काव्य का विवेचन किया गया है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की नयी भंगिमा और नये रुपायन की अभिव्यक्ति जिन कवियों के काव्य में हुई है उनमें बच्चन का स्थान शीर्ष पर है। बच्चन का काव्य जहाँ प्रगीतों की एक समृद्ध परम्परा का सूत्रपात करता है, वहाँ दूसरी ओर वह कवि की काव्यानुभूतियों के तारतम्यमूलक विकास का निरुपण भी करता है। बच्चन के काव्य का आरंभ आध्यात्मिकता की प्रतिक्रिया के रूप में लौकिकता के गायक के रूप में होता है। उन्होंने अपने युग में हतप्राय और जागतिक संघर्ष के चक्र में पिसती हुई युवा भावनाओं के स्वरों को सहेजा, युवा मन की इन्द्रजालिक मायानगरी को पहचाना और उसके अवचेतन में दबी हुई अतृप्त कामनाओं का स्पर्श करते हुये उन्हें मानसिक परितोष प्रदान करने का उपक्रम किया। उनका काव्य अतृप्ति के बोध और उसकी मनोमयी परितुष्टि का काव्य है। उनका काव्य युवाओं में बहुत लोकप्रिय हुआ। उनके काव्य की लोकप्रियता का रहस्य यह है कि उन्होंने अपने ही मन की अनुभूतियों को व्यापक जन–मानस की अनुभूतियों के रूप में रूपान्तरित करने का प्रयास किया। इसको भावना का उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है। उदात्तीकरण की प्रक्रिया सरल नहीं होती, अपितु कवि को उसके कुशल सम्पादन के लिए अनेकानेक अग्नि परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। सबसे पहले उसे व्यक्ति–मन की संकीर्णता का परिहार करते हुये इतनी व्यापकता देनी होती है, जिसके अन्तराल में युगमानस की भावनायें खुलकर खेलने का विशाल प्रांगण प्राप्त कर सकें। दूसरे स्थान पर उसके सामने अनुभूति के रूपायन की समस्या का सामना करना पड़ता है। तीसरे स्तर पर कवि का दायित्व अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाता है। यह अभिव्यक्ति का स्तर है। व्यक्ति–मन की अनुभूतियाँ प्रकृत रूप में अनिवार्यतः जटिल होती हैं और उसकी यथावत अभिव्यक्ति का आग्रह जटिल कवियों के एक दल के निर्माण में प्रतिफलित हो सकता है, जो अभिव्यक्ति में अनुभूति की जटिलता को अक्षत बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु बच्चन

जटिल नहीं ऋजु अभिव्यक्ति के आकांक्षी थे। वे व्यक्ति की अनुभूति को सामूहिकता की पीठिका पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपनी भाव भंगिमा को ऋजु और सरल बनाया, जिससे वह लोक मानस का स्पर्श कर सके।

बच्चन के काव्य जीवन में अनेक मोड़ आये और बडी सहजता से वे अपनी अनुभूति को काव्य रूप देते हैं। उनकी काव्य प्रतिभा के क्रमिक विकास के परिप्रेक्ष्य में उनकी काव्य कृतियों की क्रमिक विवेचना भी प्रस्तुत अध्याय में की गयी है।

अगले कवि के रूप में रामधारी सिंह 'दिनकर' का अध्ययन किया गया है। उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर' का विशिष्ट स्थान है। छायावाद की उपलब्धियॉ उन्हें विरासत में मिलीं, पर उनके काव्योत्कर्ष का उषःकाल छायावाद की रंगभरी संध्या का समय था। दिनकर में रोमांस और राष्ट्रीय चेतना की सम्मिलित प्रवृत्तियॉ मिलती हैं, और सच्चाई तो यह है कि एक को स्वस्थ भूमि देकर और दूसरे को सांस्कृतिक दिशा देकर दोनों के सम्मिलन से उन्होंने अपनी काव्य यात्रा पूरी की। एक ओर जहाँ 'उर्वशी' में उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति आदर्शीकृत होती है, वहीं 'कुरुक्षेत्र' में सांस्कृतिक चेतना मौजूद है। उनकी आरंभिक कविताओं में श्रृंगार और हुंकार की सम्मिलित भूमि देखी जा सकती है। वह कभी 'रेशमी नगर' जैसी कवितायें लिखते हैं जिसमें दिल्ली के नये भोग–विलास का जिक्र है और कभी आक्रोशी मुद्रा में आने पर 'परशुराम की प्रतीक्षा'।

दिनकर की प्रारंभिक रचनायें अधिकतर भावावेश प्रेरित हैं। यदि रोमांटिक काव्य के विषय में यह मान्यता स्वीकार कर ली जाय कि वह सम्भावनाओं को देखकर नहीं चलता, उसमें वांछनीय–अवांछनीय, सम्भावना–असम्भावना का प्रश्न नहीं उठता तो यही कहा जा सकता है कि दिनकर की प्रारंभिक दृष्टि रोमांटिक कवि की ही रही है। दिनकर की राष्ट्रीय चेतना प्रारंभ में अतीत के प्रति मोह और वेदना के रूप में अभिव्यक्त हुई है। अतीत की ओर आसक्ति से देखने की प्रवृत्ति को दिनकर ने छायावादी संस्कार माना है। आगे चलकर उनकी राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों का स्थिरीकरण होता है। वे अतीत को छोड़कर वर्तमान से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के विकट संघात से उद्वेलित होकर दिनकर की काव्य–चेतना अग्नि की चिनगारियों से

स्वप्न सजाने को आगे बढ़ी, वह स्वप्न जिसमें सिन्धु का गर्जन और प्रलय की हुंकार थी, जहॉ मौन हाहाकार विश्व को हिला देने को व्यग्र हो रहा था।

दिनकर की काव्य–प्रेरणा में वैयक्तिक और समष्टिगत अनेक विरोधी और अविरोधी तत्व साथ–साथ विद्यमान रहे हैं। क्रान्तिकारी और राष्ट्रीय कवि के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद भी वे वैयक्तिक भावनाओं को सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष रखते हैं। राग–विराग, कर्मवाद, पलायनवाद एवं आस्था–अनास्था का द्वन्द्व भी उनकी रचनाओं में चित्रित है, जिसमें वे अपने जीवन पर किये गये प्रयोगों और उसके फलस्वरूप प्राप्त अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं।

दिनकर के बाद बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य का अध्ययन किया गया है। नवीन की कृतियों का प्रकाशन देर से होने के कारण उनका उचित मूल्यांकन नहीं हो सका। नवीन जी ने सन् 1917 ई0 से जब लिखना प्रारंभ किया था, वह समय छायावाद का उन्मेष काल था और जब सन् 1936 ई0 में उनका प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ, छायावादी कविता का अवसान हो रहा था। इतिहास के क्रम में उनकी रचनायें पीछे छूट गयीं।

नवीन जी में एक राजनीतिक और एक साहित्यिक दोनों का व्यक्तित्व समाहित है। उनका जीवन संघर्षमय था। नयी मान्यताओं की प्रायः प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने सर्वत्र संघर्ष किया। उनके साहित्य में उनका युग और जीवन गुंजायमान है। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। अपने काव्य–संग्रहों के आरंभ में उन्होंने प्रायः लम्बी भूमिकायें लिखी है। काव्य और कला पर नवीन जी की विचारधारा से अवगत होने के लिए ये भूमिकाएं अत्यन्त उपादेय तथा महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीयता, श्रृंगार एवं प्रेम, अध्यात्म, सामाजिक सुधार आदि उनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं। उनका राष्ट्रीय काव्य इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं को न सिर्फ प्रत्यक्ष देखा है बल्कि उसमें सक्रिय भूमिका निभाई है। उनकी राष्ट्रीयता में सांस्कृतिक पक्ष प्रबल है। प्राचीन गौरव तथा संस्कृति के प्रति उनके मन में आदर भाव था। उसे वे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से जोड़कर देखते थे। अतीत गौरव के साथ ही उन्होंने देश की वर्तमान दशा को भी अपने काव्य का विषय बनाया। अतीत जहॉ मार्ग दर्शन तथा ज्योति लहर प्रदान करता है वहाँ वर्तमान चिन्ता, आक्रोश तथा निदान की ओर

उन्मुख करता है। उनकी वर्तमान दशा सम्बन्धी रचनाओं में वेग और तेजस्विता के दर्शन होते हैं। उनका ध्यान हमारी राजनीतिक स्थिति के साथ–साथ सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की ओर भी गया। वैभव तथा दर्पपूर्ण विगत भारत की वर्तमान दुर्गति ने कवि के मानस को उद्वेलित कर दिया था। इन कविताओं ने छायावाद के युग में नूतन भावधारा का प्रणयन किया। स्वाधीन भारत में आकर नवीन जी की राष्ट्रीय भावना सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपना प्रसार करती है। उनकी प्रसिद्धि का मूल आधार उनका राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य है।

नवीन जी की दार्शनिक और प्रेम कविताओं का भी विवेचन किया गया है। उनका समग्र प्रेम काव्य अपने आलम्बन के सम्बोधन, स्मरण एवं विरह से आपूर्ण है। कवि ने पग–पग पर प्रेम के आलम्बन के प्रति अपनी सरल, निष्कपट, मार्मिक और कारुणिक प्रणयाभिव्यक्ति की है। नवीन जी के काव्य की परिणति उनकी आध्यात्मिक रचनाओं में हुई है। उनका दार्शनिक काव्य उनके जीवन तथा अध्ययन की उपज है। उनका दार्शनिक व्यक्तित्व आत्मा के अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने के लिये प्रयत्नशील है।

इस प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, बच्चन तथा नवीन जैसे कवि स्वच्छन्दतावाद को प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर में भी जीवित रखते हैं। किन्तु अपने उत्कर्ष तक पहॅुचकर स्वच्छन्दतावाद में उतार आना स्वाभाविक था। देश की परिस्थितियॉ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं रह गयी थीं। फिर भी स्वच्छन्दतावादी कवि अपने समय की चेतना से जुड़ने की कोशिश करते हैं और इस आन्दोलन को लम्बे समय तक जीवित रखने में सफल रहे। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अन्त में 'समापन' शीर्षक के अन्तर्गत इसका विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के माध्यम से हिन्दी कविता के इस सबसे समर्थ आन्दोलन को नये सिरे से जॉचने–परखने का प्रयास किया गया है। स्वच्छन्दतावादी कवियों की एक लम्बी श्रृंखला है तथा स्वच्छन्दतावाद का विपुल एवं समृद्ध साहित्य है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में बारह स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य का विवेचन किया गया है। इनके काव्यों में स्वच्छन्दतावाद का स्पष्ट चित्र उभरता है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में स्वच्छन्दतावादी काव्य–चिन्तकों के विचार तथा उनके मतों में आपसी सहमति और

असहमति के स्वरो के विवेचन का प्रयास किया गया है। इन सहमति और असहमति के दो छोरों के बीच कुछ नये स्थलों की तरफ भी संकेत किया गया है, जो वाद विवाद संवाद की प्रक्रिया को आगे बढाने के लिए अनिवार्य है। इससे यदि स्वच्छन्दतावादी काव्य चिंतन में कुछ नये आयाम जुड सकें तो शोधकर्ता का श्रम सार्थक होगा। इसी प्रत्याशा में यह शोध–प्रबन्ध विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत है।

राकेश सिंह

राकेश सिंह

# अध्याय–1

# अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय

## अध्याय–1

# अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का परिचय

### रोमांटिसिज्म–शब्दः उद्भव और विकास

हिन्दी में 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद को समझने के लिए अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म शब्द के उद्भव एवं विकास को समझना आवश्यक है।

रोमांटिक (Romantic) तथा रोमांटिसिज्म (Romanticism) शब्दों का उद्भव मूल शब्द रोमांस (Romance) से हुआ है। प्राचीन रोमन साम्राज्य में राज्य की सरकारी भाषा को लिंग्वा लैटिना (Lingua Latina) कहा जाता था। रोमन साम्राज्य के जनपदों में बोली जाने वाली बोली को लिंग्वा रोमानिका (Lingua Romanica) के नाम से जाना जाता था। इसी लिंग्वा रोमानिका शब्द से रोमांस (Romance) अथवा रोमांटिक (Romantic) शब्दों का उद्भव माना जाता है।

भाषा विज्ञान के विशेषज्ञ डब्ल्यू0 डी0 एलॉक (W.D. Elock) ने प्रतिपादित किया है कि ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व रोमांस (Romance) शब्द रोम में रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। यह शब्द बाद में रोमानिया (Romania) शब्द के रूप में विकसित हुआ। धीरे–धीरे यह रोमन साम्राज्य के बाहर भी फैल गया। यह रोमन साम्राज्य के बाहर प्रयुक्त होने वाली एक भाषा बारबेरी (Barberi) के विपरीत एक भाषा विशेष के रूप में प्रयुक्त होने लगा। धीरे–धीरे बारबेरी को जर्मन प्रान्त में रहने वाले कबीलाई लोगों की भाषा समझा जाने लगा। लैटिन को अपने ढंग से बोलने वालों को रेमानी (Romani) कहा गया। यही शब्द बाद में रोमानिस (Romanis) के रूप में प्रचलन में आया। धीर–धीरे यह शब्द तत्कालीन लोकप्रिय लैटिन अपभ्रंश (Popular Latin Varnacular) भाषा के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। उच्चारण करने में भिन्नता के कारण यह शब्द प्राचीन फ्रेंच भाषा में रोमांज (Romanz) के रूप में प्रचलित हुआ। यही प्राचीन फ्रेंच भाषा जब साहित्य की भाषा बनी , तो यह शब्द

भाषा के लिए प्रयोग किये जाने वाले संकुचित अर्थ को छोड़कर रोमांस भाषा में लिखी जाने वाली सभी रचनाओं के लिए प्रचलित हो गया और इसे साहित्य के प्रकार–विशेष के रूप में मान्यता मिल गयी।[1]

रोमांस शब्द के सम्बन्ध में एफ0 एल0 लुकास ने जो खोज की है, वह इस प्रकार है– 'फ्रेंच भाषा में रोमांस शब्द इस प्रकार के साहित्य का द्योतक था जो मध्यकाल के वीरों के विलक्षण, साहसपूर्ण कार्यो की कथा को गद्य या पद्य में रूपायित किया करता था। किन्तु बाद में गद्य का अत्यधिक प्रचार होने के कारण वह मात्र गद्य कथा रह गया।'[2]

वेबेस्टर्स की 'डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज' में रोमांस के अर्थ पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। वहाॅ रोमांस शब्द की व्याख्या इस प्रकार है– 'रोमांस मूलतः प्रारम्भिक फ्रेंच अथवा प्रोवेन्सल आदि रोमांटिक बोलियों में से किसी में लिखी गयी गद्य – पद्यात्मक गाथा अर्थात् आधुनिक यूरोप (तत्कालीन रोंमाटिक युग) के साहित्य का कोई लोकप्रिय वीरकाव्य तथा आश्चर्यजनक पद्य या गद्यमय कहानी × × × × × शौर्य, वीरता तथा धर्म – इन तीनों से मध्ययुगीन कथा – साहित्य प्रकट होता है, विशेषकर रोमांस नाम से समझा जाने वाला कथा साहित्य। × × × × × उपन्यास का एक प्रकार जो दैनिक जीवन से उतना सम्बन्धित नहीं होता है जितना कि असाधारण घटनाओं से और प्रायः अत्यधिक साहसिक कार्यों या साहसिक घटनाओं या काल्पनिक समाज के चित्रण से। × × × × × साहित्य में आश्चर्यजनक और रहस्यमय का मिश्रण, अद्‌भुत और रहस्यवाद के प्रति मस्तिष्क की एक प्रवृत्ति या झुकाव, रोमांटिक कृत्य या मनोवृत्ति।'[3]

इस प्रकार शुरू से ही रोमांस के नाम से समझे जाने वाले साहित्य में कथातत्व की प्रधानता रही–चाहे वह गद्य हो या पद्य। समय के साथ रोमांस कथा साहित्य विशेष के लिए ही रूढ़ हो गया और अठारहवीं शताब्दी तक रोमांस ने एक पृथक् साहित्यिक विधा का रूप धारण कर लिया। धीरे–धीरे रोमांस कथाओं में असाधारण प्रेम का योग होता गया। बहुत समय तक यूरोपीय साहित्य में रोमांस से तात्पर्य ऐसे साहित्य से माना जाता रहा, जिसमें जीवन के सहज, दुर्लभ, असम्भव, अद्‌भुत रोमांसों की

पीठिका पर मानव कार्यो एवं कृत्यों में निहित उदात्त–अनुदात्त भावों में सर्वथा आदर्श की स्थापना का भाव परिलक्षित होता है।[4]

यूरोपीय देशों की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप जर्मनी, फ्रांस, इग्लैण्ड आदि देशों के साहित्यकारों द्वारा ऐसे साहित्य का सृजन होने लगा, जिसमें रोमांस की विशेषताएं समाहित हों। रोमांस की प्रवृत्तियों को अत्यधिक उत्कर्ष और कलात्मक रूप मिलने पर ऐसे साहित्य को रोमांटिक (Romantic) कहा जाने लगा। रोमांटिक शब्द का प्रयोग सबसे पहले फ्रेडरिक श्लेगल ने अठारहंवी शताब्दी में शास्त्रीयतावादी साहित्य (क्लासिक–Classic) से भिन्न साहित्य के लिए किया। तब से लेकर बीसवीं शताब्दी तक क्लासिक के साथ रोमांटिक का प्रयोग होता रहा है। रोमांटिक का अर्थ रोमांस से सम्बन्धित या उससे मिलता–जुलता, नियंत्रणहीन, कल्पनामय, अतिशयोक्तिपूर्ण, तर्कयुक्त की अपेक्षा भावात्मक, यथार्थ की अपेक्षा आदर्श किया जाता है।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में फ्रांस के दार्शनिक रूसो की स्वच्छन्द भाव धारा के प्रभाव से समस्त यूरोप में रोमांटिक मूवमेंट (Romantic Movement) या रोमांटिक रिवाइवल (Romantic Revival) [स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन या स्वच्छन्दतावादी पुनरावर्तन] नाम से एक आन्दोलन उठ खडा हुआ। इग्लैंड के साहित्य में इस आन्दोलन का प्रारम्भ सन् 1798 ई0 में वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) तथा कोलरिज (Coleridge) के 'लिरिकल बैलेड्स' (Lirical Ballads) नामक काव्य–संग्रह से हुआ। इस आन्दोलन का अस्तित्व सन् 1932 ई0 तक माना जाता है। इसी समय जर्मनी, फ्रांस और रूस में भी रोमांटिक आन्दोलन चलाया गया। अतः 'रोमांटिक' युग विशेष का भी द्योतक बन गया।

धीरे–धीरे रोमांटिक साहित्य अपनी प्रवृत्ति– विशेष के कारण वाद के रूप में सामने आया। इस साहित्य को प्रवृत्ति – विशेष के कारण रोमांटिसिज्म (Romanticism) कहा गया। इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी का रोमांस (Romance) शब्द जो कि भाषा – विशेष के लिए प्रयुक्त किया जाता था, अठारहवीं शताब्दी तक साहित्य– विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा। यह पूरा साहित्यिक आन्दोलन रोमांटिसिज्म (Romanticism) के नाम से जाना गया।

'रोमांटिसिज्म' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्टेल द्वारा उत्तर के साहित्य को दक्षिण के साहित्य से एवं व्यक्तिगत साहित्य की विषयपरक साहित्य से भिन्नता एवं प्रतिकूलता को समझाने के लिए किया गया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी साहित्य में वाद के रूप में रोमांटिसिज्म नाम से इसका प्रयोग उदारतापूर्वक होने लगा। अपने नये रूप में यह अंग्रेजी साहित्य की अनेक काव्यगत विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ माना गया। आगे चलकर अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिसिज्म का प्रयोग अनेक प्रकार से किया गया। रोमांटिसिज्म शब्द का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि उसके वास्तविक रूप की परीक्षा करना कठिन हो गया।[5]

## रोमांटिसिज्म की विभिन्न परिभाषाएँ

रोमांटिक शब्द के विविध अर्थों के समान रोमांटिसिज्म की परिभाषाएं भी विविधतापूर्ण रही हैं। रोमांटिसिज्म की परिभाषा देने का सर्वप्रथम प्रयास जर्मनी के फ्रेडरिक श्लेगल ने किया । श्लेगल की दृष्टि में 'रोमांटिसिज्म' 'मनुष्य की पूर्णता के लिए कभी न प्राप्त होने वाली महत्वाकांक्षा' है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रोमांटिसिज्म की इतनी अधिक परिभाषांए दी गयीं कि इस शब्द का स्वरूप ही अनिश्चित हो गया। फिर भी रोमांटिसिज्म की कुछ विशिष्ट परिभाषाओं पर विचार करना आवश्यक है, जिससे इसके साहित्यिक, सांस्कृतिक स्वरूप को समझने में मदद मिले।

विक्टर ह्यूगो ने रोमांटिसिज्म को साहित्य में स्वतंत्र भावना माना है।[6] थियोडर वाट्स डंटन ने काव्य और कला में इसे स्वतंत्र भावना का पुनर्जन्म कहा है।[7] प्रो0 लैसलेस एबरक्रोम्बी के अनुसार 'रोमांटिसिज्म' मन की उस प्रवृत्ति का नाम है जिसके माध्यम से वह बाहरी दुनिया से सम्बन्ध विच्छेद कर अपने अंतस के तत्वों की ओर उन्मुख होता है।[8] वाल्टर पेटर के अनुसार सौन्दर्य के साथ विचित्रता का संयोग कला में रोमांटिक विशिष्टता का निर्माण करता है। प्रत्येक कलाकृति में सौन्दर्य की आकांक्षा एक स्थायी तत्व होती है और इस आकांक्षा के साथ कौतूहल का सम्मिलन रोमांटिक अभिरूचि का निर्माण करता है।[9] एफ0 एल0 लुकास के मतानुसार रोमांटिक साहित्य जीवन का स्वप्निल चित्र है, जो समाज तथा वास्तविक जगत द्वारा वर्जित एवं कुंठित आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ति एवं तृप्ति करता है।[10] प्रो0 कजामिया ने रोमांटिसिज्म को कल्पनात्मक दृष्टि के प्रयोग द्वारा प्रेरित और निर्दिष्ट भावनात्मक जीवन की

अतिशयता माना है जो बदले में उस प्रयोग को प्रेरित और नियंत्रित करती है, अर्थात् रोमानी चेतना भावुकता प्रधान जीवन का अतिरेक है, जो कल्पना के द्वारा प्रेरित और संचालित होती है।[11] ए० सी० रिकेट लिखते हैं– 'रोमांटिसिज्म साधारणतः प्रखर या तीव्र अनुभूतियों एवं तीव्र कल्पनात्मक भावनाओं या संवेगों की कला के रूप में अभिव्यक्ति है। × × × × × साहित्य के क्षेत्र में सामान्यतः इसका अर्थ गुणों की अपेक्षा दोषों को ही व्यक्त करता है, क्योंकि इसका प्रयोग प्रायः अतिशयता और भावुकता के पर्यायवाची अर्थ में किया जाता है।'[12]

इरविंग बैविट का कथन है कि 'क्लासिक और रोमांटिक को सही रूप में परिभाषित करने के लिए हमें केन्द्रित या नैतिक कल्पना को तथा विक्षिप्त कल्पना को एक समझने के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में प्रवाहित भावात्मक रचनाओं की मुख्य धारा इसी भ्रम से ग्रस्त है।'[13] उनकी मान्यता है कि सारा रोमांटिक आन्दोलन अज्ञान की प्रशंसा से तथा उन लोगों की प्रशंसा से भरा है जो अज्ञान में डूबे हैं, जैसे–जंगली लोग, किसान, बालक। सी० एच० हरफोर्ड ने रोमांटिसिज्म को कलात्मक अनुभूतियों का असाधारण विकास माना है।[14] डॉ० हेज ने भावप्रवणता को स्वच्छन्दतावाद का मूल तत्व माना है।[15] स्टडार्ड के अनुसार नवीन विधान, नवीन तथ्य, अनुरूपता और स्वरूप से विदा लेना ही स्वच्छन्दतावाद है।[16]

प्रो० हरबर्ट ग्रियर्सन के मतानुसार 'रोमांटिक कला का सार यह है कि इसमें भावना की महत्ता रूप से अधिक होती है, बल्कि भावना ही रूप को विचित्र, अनिश्चित सौन्दर्य तथा निश्चित वैषम्य प्रदान करती है। इसकी प्रवृत्ति प्रगीतात्मक और भावावेशपूर्ण होती है।[17] इस सम्बन्ध में प्रो० सेंट्सबरी की दृष्टि भाव– सम्प्रेषण पर केन्द्रित रही है। उनका कथन है कि शास्त्रीय रचनाओं में भाव–सम्प्रेषण प्रत्यक्षतः होता है और उसमें रूप का यथासंभव अनुमान किया जाता है। स्वच्छन्द रचनाओं में भाव–सम्प्रेषण पाठक की अनुमान शक्ति पर छोड़ दिया जाता है, जिसमें केवल संकेत और प्रतीक सहायक होते हैं।[18]

रोमांटिसिज्म की कुछ कोशगत परिभाषांए इस प्रकार हैं–

'न्यू स्टैंडर्ड डिक्सनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज' में रोमांटिसिज्म को शास्त्रीय शैली के विरूद्ध मध्यकालीन कला का पुनर्विकास कहा गया है।[19]

वेबेस्टर की 'न्यू इण्टरनेशनल डिक्सनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज' में रोमांटिसिज्म को सन् 1798 ई0 के आस–पास शास्त्रीयता के विरूद्ध मध्यकालीन आदर्श की ओर उन्मुख जर्मनी, इंग्लैंड और फ्रांस मे विकसित आन्दोलन कहा गया है।[20]

'द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्सनरी' में रोमांटिसिज्म को व्याख्यायित करते हुए लिखा गया है कि यह एक रोमांटिक फैंसी या विचार हो सकता है। यह रोमांस अथवा रोमांटिक दृष्टि की ओर उन्मुख एक प्रवृत्ति हो सकती है, और एक रोमांटिक सम्प्रदाय की कला, साहित्य तथा संगीत की विशेषताओं का द्योतक हो सकता है।[21]

विद्वानों द्वारा रोमांटिसिज्म की दी गयी परिभाषाओं तथा कोशगत परिभाषाओं में कई भिन्नताएं हैं। इन परिभाषाओं में से कोई परिभाषा रोमांटिसिज्म के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाती। इनमें से कुछ परिभाषाएं स्पष्ट रूप से रोमांटिसिज्म की विरोधी हैं और उस प्रकार के साहित्य की हीनता की तरफ संकेत करती हैं। कुछ परिभाषाएं ऐसी हैं, जिन्हें थोड़े से साहित्यकारों के साहित्य पर लागू किया जा सकता है। कुछ परिभाषाओं में रोमांटिक कवियों के भावों और विचारों पर प्रकाश डाला गया है। किसी भी परिभाषा में समग्र रोमांटिक कवियों के काव्य को परिभाषित नहीं किया जा सका। दरअसल रोमांटिक आन्दोलन अर्थात् रोमांटिसिज्म इतना विविधतापूर्ण है कि उसे किसी एक परिभाषा में बॉध पाना संभव नहीं है। एक परिभाषा उसकी पूरी प्रकृति को ठीक प्रकार से व्याख्यायित नहीं कर सकती। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में परिवर्तन को उन्मुख अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों के लिए प्रयोग किया जाने वाला यह एक व्यापक शब्द है। इस शब्द का आशय समय एवं स्थान के अनुसार बदलता रहा है।[22]

यदि हम इन परिभाषाओं पर ध्यान दें तो पता चलता है कि सामान्यतः सभी परिभाषाओं में काव्य के कथ्य और शिल्प–विधान में परम्परागत बन्धनों से मुक्ति पर बल दिया गया है। इन परिभाषाओं के

सामान्य तत्वों के आधार पर कहा जा सकता है कि रोमांटिसिज्म शास्त्रीयता के विरूद्ध विकसित पाश्चात्य चिंतन है। यह पाश्चात्य चिंतन काव्य में जिन प्रवृत्तियों को लेकर अवतरित हुआ उनमें रूढ़ि–मुक्तता, भाषा की सहजता, सौन्दर्य के प्रति पवित्र आकर्षण, प्रकृति के प्रति भावात्मक लगाव, मानवीय संवेदना और कल्पना की उन्मुक्त उड़ान तथा भावुकता प्रमुख हैं।

## रोमांटिसिज्मः युग परिस्थितियाँ एवं प्रेरणा स्रोत

यूरोप में रोमांटिसिज्म पुनर्जागरण के साथ आया। पुनर्जागरण ने समूचे यूरोप के जीवन को परिवर्तित कर दिया। पुनर्जागरण ने मानव जीवन के सारे पक्षों को प्रभावित किया। पुनर्जागरण ने एक सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में साहित्य, कला तथा दर्शन को भी प्रभावित किया। तमाम पुरानी मान्यताओं एवं परम्पराओं का खण्डन किया गया। वैज्ञानिक अनुसंधानों से धार्मिक कट्टरता को बहुत बड़ा धक्का लगा। सोलहवीं शताब्दी तक आते –आते सामन्तवाद लगभग बिखर गया। पुनर्जागरण यूरोप में मानवतावाद की स्थापना करने में समर्थ हुआ। यही मानवतावाद रोमांटिसिज्म लाने का कारण बना। अठारहवीं शताब्दी में आते–आते रोमांटिक आन्दोलन में तेजी आ गयी।

अठारहवीं– उन्नीसवीं शताब्दी यूरोप में प्रगति और परिवर्तन के लिए विख्यात है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में युरोप में तीन महत्वपूर्ण क्रान्तियाँ हुईं, जिसने सारे संसार को प्रभावित किया। ये तीन क्रान्तियाँ थीं– अमेरिका की क्रान्ति, फ्रांस की क्रांति, औद्योगिक क्रान्ति। यूरोपीय रोमांटिसिज्म को समझने के लिए इन तीनों क्रान्तियों की परिस्थितियों एवं प्रभावों को जानना आवश्यक है।

### अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम

सन् 1756 ई0 से सन् 1763 ई0 तक फ्रांस और इंग्लैण्ड के मध्य एक सप्तवर्षीय युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध में इंग्लैण्ड विजयी हुआ। युद्ध की समाप्ति पर सन् 1763 ई0 में 'पेरिस की संधि' हुई । इस संधि के अनुसार फ्रांस ने इंग्लैण्ड को अमेरिका में कनाडा तथा मिसीसिपी नदी के पूर्व का प्रदेश सौंप दिया। भारत मे फ्रांसीसी कुछ बन्दरगाहों को छोड़कर शेष प्रदेशों से हट गये और इन प्रदेशों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस सफलता से अंग्रेजी साम्राज्यवाद का विस्तार हुआ। इस युद्ध का परिणाम इतना प्रभावकारी सिद्ध हुआ कि अंग्रेजी साम्राज्य का यश पूरी दुनिया में फैल गया। किन्तु अंग्रेजों की यह

स्थिति अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। कुछ समय बाद अंग्रेजी साम्राज्य की क्षुद्र एवं स्वार्थी नीतियों के कारण उसका अमेरिका में अपनी बस्तियों के साथ ही संघर्ष प्रांरभ हो गया। अमेरिकनों की मॉगों को अंग्रेजी साम्राज्यवादियों ने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध प्रभावी संघर्ष प्रारंभ हो गया। अमेरिकनों ने फिलाडेल्फिया में 4 जुलाई, सन् 1776 ई0 को एक 'द्विमहाद्वीपीय समिति' की बैठक बुलाकर 'स्वतंत्रता के घोषणा–पत्र' का अनुमोदन किया। इस घोषणा–पत्र का मुख्य उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि जब कोई सरकार मनुष्य को उसके नैतिक अधिकारों से वंचित करे तो जनता को ऐसी सरकार को बदलने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। घोषणा–पत्र में बलपूर्वक यह घोषित किया गया– 'ईश्वर ने सब मनुष्यों को समान बनाया है। ईश्वर ने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिये हैं जिन्हें उनसे कोई छीन नहीं सकता। इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता और सुख के लिए प्रयत्न शामिल है।'[23] इस घोषणा–पत्र में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया कि सत्ता का मूल स्रोत जनता है और दृढ़ता पूर्वक कहा गया कि जनता को अपनी सरकार बनाने का पूरा अधिकार है। घोषणा–पत्र में यह भी कहा गया कि ब्रिटेन की सरकार ने अमेरिका के उपनिवेशों पर अत्याचार किये हैं। घोषणा–पत्र में कहा गया –'अतएव हम संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि समस्त उपनिवेशों के नागरिकों के नाम से विश्व के सर्वोच्च न्यायाधीश को यह निवेदन करते हैं कि अब हम स्वतन्त्र राज्य के निवासी हैं। इसके साथ ही हम इस समय ब्रिटिश सम्राट के प्रति समस्त निष्ठा से मुक्त हो चुके हैं तथा हमारे व ब्रिटेन के मध्य अब किसी प्रकार का राजनीतिक सम्बन्ध शेष नहीं है। अतः हम युद्ध, शान्ति, संधि, व्यापार एवं अन्य सभी मामलों में आधिकारिक रूप से निर्णय लेने को स्वतन्त्र हैं, जो एक स्वतंत्र राज्य के अधिकार होते हैं।'[24]

इस घोषणा–पत्र के अन्तर्गत अमेरिकनों ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में अपने प्रतिनिधित्व के समावेश पर जोर दिया और करों का विरोध करते हुए 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं' का नारा बुलन्द किया। अमेरिकनों के प्रतिनिधित्व का ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में समावेश न होने पर जार्ज वाशिंगटन के सेनापतित्व में युद्ध छेड़ दिया गया। फलस्वरूप सन् 1783 ई0 में 'पेरिस की संधि' हुई जिसमें इंग्लैण्ड ने तेरह

अमेरिकी बस्तियों को स्वतंत्रता प्रदान की। 21 जून सन् 1788 ई0 को नया संविधान लागू हुआ और मार्च 1789 ई0 में जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में नयी सरकार का गठन हुआ।

अमेरिका की क्रान्ति विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक थी। इस क्रांति ने पूरे यूरोप में उपनिवेश विरोधी क्रान्तिकारियों को नया जीवन दिया।

## फ्रांसीसी क्रांति

किसी भी देश में होने वाली क्रान्ति के बीज उस देश की जनता की स्थिति और मनोदशा में निहित रहते हैं। असंतोष को जन्म देने वाली भौतिक परिस्थितियाँ क्रान्ति हेतु आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती हैं तथा बौद्धिक चेतना बहुजन को उन परिस्थितियों से मुक्ति पाने हेतु प्रेरित करती है।

रोमांटिक आन्दोलन को तेज करने मे फ्रांसीसी क्रांति का बड़ा योगदान है। फ्रांसीसी क्रान्ति को पाश्चात्य रोमांटिसिज्म का प्रस्थान बिन्दु स्वीकार किया जाता है। सम्भव है इस क्रांति के मूल में सन् 1776 ई0 की उस अमेरिकी क्रांति की भी प्रेरणा रही हो, जब अमेरिकी जनता ने अपने ही पूर्वजों की जन्मभूमि ब्रिटेन से स्वतन्त्र होने की घोषणा की। परन्तु फ्रांसीसी क्रांति जिसका आरंभ 1789 ई0 में हुआ, वाल्टेयर तथा रूसो के विचारों को लेकर आगे बढ़ी।[25]

फ्रांसीसी साम्राज्य में दो प्रकार के लोग थे। प्रथम– सभी प्रकार की सुविधाएं तथा सम्मान प्राप्त कुलीन वर्ग और पादरी, दूसरे– सभी प्रकार की सुविधाओं से वंचित, सम्मान विहीन मजदूर और कृषक। दूसरी श्रेणी के लोगों को सेना, चर्च और राजकीय नौकरियों में कोई उच्च पद नहीं दिया जाता था। मजदूर कारखानों के पूँजीपति स्वामियों से पीड़ित थे तथा कृषक जागीरदारों से। जागीरदारों, पादरियों तथा राजा द्वारा लगाये गये करों का भुगतान करते–करते कृषकों के पास कभी–कभी खाने को भी नहीं बचता था। फ्रांस ने अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में वहाँ की जनता की सहायता की थी। इस युद्ध में भाग लेने वाले फ्रांसीसी युवक वहाँ से बहुत सी प्रेरणाएं लेकर फ्रांस लौटे। उन्होंने अपने देश में भी इसे कार्यान्वित करने का बीड़ा उठाया। देश की सोचनीय दशा को देखकर विद्वान लोगों ने भी आलोचना–प्रत्यालोचना द्वारा दशा सुधारने का प्रयास किया। वाल्टेयर और रूसो के साहित्य ने समाज की आँखें खोल दी। यद्यपि रूसो ने क्रांति का पाठ नहीं पढ़ाया, शायद उसे इस प्रकार की क्रांति की आशा भी नहीं

थी, किन्तु उसकी पुस्तकों और विचारों ने मनुष्यों के मस्तिष्कों में इस प्रकार के बीजबपन कर दिए जिनसे क्रांति अंकुरित हुई।[26]

यह प्रश्न विवादास्पद है कि बौद्धिक आन्दोलन फ्रांस की राज्य क्रांति के लिए कहाँ तक उत्तरदायी था। प्रायः बौद्धिक चेतना को क्रांति की आत्मा कहा जाता है और क्रांति का श्रेय दार्शनिकों, लेखकों तथा प्रबुद्ध वर्ग को दे दिया जाता है। स्वयं नेपोलियन का कथन था– 'यदि रूसो न हुआ होता तो फ्रांसीसी क्रांति सम्भव न होती।' रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कान्ट्रेक्ट' (सामाजिक अनुबन्ध) में सामाजिक परिवेश के प्रति घोर असन्तोष व्यक्त किया है। उसका विचार था कि अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य वर्तमान की अपेक्षा कहीं अधिक सन्तुष्ट रहा होगा, क्योंकि वह शोषण मुक्त था। उसका बहु उद्धृत वाक्य– 'मनुष्य स्वतंत्र जन्मा है, किन्तु हर जगह वह जंजीरों से जकड़ा है', जो कि उसकी पुस्तक 'सोशल कान्ट्रेक्ट' से लिया गया है, इसने फ्रांस में क्रांति का बीजारोपण किया। रूसो ने स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व का जो नारा दिया वह फ्रांसीसी क्रांति का आप्तवाक्य बन गया।[27]

जार्ज एलन ने लिखा है– 'फ्रांस की क्रांति होने का कारण वहीं के लोगों का दुख तथा उन पर होने वाले अत्याचार नहीं थे बल्कि उसका कारण बुद्धिवादी वर्ग के विचार थे। यह वर्ग समाज, राज्य तथा प्रशासन में व्याप्त असंगतियों को समाप्त करने के लिए कृत संकल्प था।'[28] फ्रांसीसी कवि एवं उपन्यासकार एफ0 आर0 शातोब्रियाँ ने लिखा है–' फ्रांसीसी क्रांति बौद्धिक आन्दोलन तथा भौतिक दुखों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुयी थी। बौद्धिक आन्दोलन ने ही भौतिक दुखों का अधिक व्यापक रूप से विरोध किया था।'[29]

क्रांति के विचारकों के योगदान के परिणाम पर विवाद हो सकता है, किन्तु क्रांति की पूर्वपीठिका तैयार करने में तथा उसकी सूचना देने तथा क्रान्ति की मानसिकता बनाने में उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। अपनी पृष्ठभूमि में वैचारिक क्रान्ति की परम्परा लिए रहने के कारण इस क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण इतिहास, जीवन, संस्कृति, साहित्य तथा कला आदि सभी क्षेत्रों पर पड़ा।

फ्रांस की क्रांति सन् 1789 ई0 में शुरू हुई। नेपोलियन को तीनों कौंसिलों की राष्ट्रीय समिति का प्रधान चुना गया। नेपोलियन के नेतृत्व में समिति ने उपयोगी विधान बनाने की योजना बनायी, किन्तु यह

योजना असफल रही। राष्ट्रीय समिति और राजा में संघर्ष चल ही रहा था कि पेरिस की भीड ने क्रांति के प्रवाह में जबर्दस्त हस्तक्षेप करके इसे एक निर्णायक मोड दिया। 14 जुलाई , 1789 ई0 को जनता ने बास्टिल के बन्दीगृह पर आक्रमण करके बन्दियों को मुक्त कर दिया। संघर्ष और क्रान्ति से उत्पन्न देश की संकटमय स्थिति देखकर कुलीन और पादरियों ने अपनी सुविधाओं को राष्ट्रीय समिति को अर्पित कर दिया। सम्राट लुई सोलहवें तथा पादरियों को विवश होकर साधारण कोटि के लोगों को भी नागरिक की कोटि में गिने जाने और स्टेट जनरल (State General) में सम्मिलित होने का आदेश देना पड़ा। 26 अगस्त, 1789 ई0 को नेशनल असेम्बली द्वारा 'मानव एवं नागरिक अधिकारों' की घोषणा की गयी। 20 सितम्बर 1791 ई0 को नेशनल असेम्बली को समाप्त कर दिया गया। इसके बाद नेशनल कन्वेंशन (1792 ई0 – 1795 ई0) का समय आता है। उसने फ्रांस को गणराज्य घोषित किया । सन् 1792 ई0 में आस्ट्रिया और फ्रांस के युद्ध में फ्रांस की पराजय हुयी। फ्रांसीसियों ने अपने राजा के शत्रु पक्ष से मिल जाने का भ्रम करके उसके महल पर आक्रमण कर दिया। सम्राट लुई सोलहवें और राज परिवार के सदस्यों को बंदी बना लिया गया। आगे चलकर फ्रांसीसियों ने आस्ट्रिया और प्रशा की सेनाओं को परास्त किया। 21 सितम्बर, 1792 ई0 को नेशनल कन्वेंशन (National Convention) की बैठक हुई, जिसमें फ्रांस में जनतंत्र की घोषणा की गई। लुई सोलहवें पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया तथा 22 जनवरी, 1793 ई0 को लुई सोलहवें को प्राण दण्ड दे दिया गया। लुई सोलहवें की रानी तथा राजपक्ष के अन्य कई लोगों को भी प्राणदण्ड दे दिया गया। परन्तु बाद में नेशनल कन्वेंशन के शासन को 'आतंक का राज्य' कहा गया क्योंकि सर्वहारा वर्ग उस समय भी पीड़ित किया जाता रहा। 1793 ई0 में 'प्रजातांत्रिक संविधान' नामक एक नया संविधान बना, जो 1795 ई0 के अन्त में लागू हुआ। 'आंतक का राज्य' समाप्त हो कर 'डाइरेक्टरी' का शासन प्रारम्भ हुआ। नेपोलियन को 'डाइरेक्टरी' के शासन में सेनापति का पद मिला। धीरे–धीरे अपनी शक्ति बढ़ाकर नेपोलियन सम्राट बन गया। क्रान्ति के बाद सभी नागरिकों को स्वतंत्रता मिली और सबको मतदान का अधिकार दिया गया। शिक्षा का प्रबन्ध सम्राट ने अपने हाथ मे ले लिया। कुलीनों और पादरियों की सामन्तशाही सदा के लिए समाप्त हो गयी।

सन् 1789 ई0 की फ्रांस की क्रान्ति घरेलू मुशीबतों से निपटने वाला राष्ट्रीय आन्दोलन मात्र नहीं था। यूरोप के सभी देशों में इस क्रान्ति के अनेक समर्थक थे और इस अर्थ में शुरू से ही क्रान्ति का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय था। सारे यूरोप का शिक्षित वर्ग कान्ति की घटनाओं को बड़ी दिलचस्पी से अध्ययन कर रहा था। सन् 1789 ई0 के जिस नवयुग के आगमन ने बहुत से व्यक्तियों को सम्मोहित कर दिया था, उसमें कवि वर्ड्सवर्थ भी था। क्रान्ति की घटनाओं के स्वागत में उसने निम्न पक्तियाँ लिखी–

'उस नवप्रभात में जीवित होना ही वरदान था,
और युवा होना तो स्वर्गिक ही था।'[30]

## औद्योगिक क्रान्ति

यूरोप के इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी इंग्लैण्ड के सम्राट और पार्लियामेंट के संघर्षों के लिए, अठाहरवीं शताब्दी इंग्लैण्ड और फ्रांस के युद्धों के लिए तथा उन्नीसवीं शताब्दी विज्ञान के विकास के लिए प्रसिद्ध है।[31] मध्य युग में स्थिर सामन्ती समाज के संकीर्ण दृष्टिकोण ने यूरोप में विज्ञान में कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं होने दिया। किन्तु कृषि योग्य भूमि के विस्तार और उसके बेहतर उपयोग करने तथा कामगारों की कमी के कारण पशुओं, हवा और पानी की शक्ति का प्रयोग शुरू हुआ। उत्तर मध्ययुग में बड़े तकनीकी सुधार होने से कृषि व अन्य वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। अतिरिक्त उत्पाद ने आगे उत्पादन को बढ़ावा दिया। धीरे–धीरे किसानों से बलपूर्वक काम करने पर आधारित वंशानुगत सामंती व्यवस्था का स्थान व्यापारी समाज ने ले लिया, जिसमें उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन एवं मुद्रा द्वारा भुगतान प्रमुख हो गया। इससे व्यापार के तीव्र विस्तार को बढ़ावा मिला, जिसमें जहाजरानी व नौ संचालनों में सुधार से और अधिक वृद्धि हुई। व्यापार के विश्वव्यापी विस्तार ने व्यापारी वर्ग को ताकतवर बना दिया। कालान्तर में व्यापारी वर्ग सामन्तों और जमींदारों को सत्ता से हटाने में सफल हो गया। सत्रहवीं शताब्दी से ही नये पूँजीवादी तरीकों से उत्पादन की आगे उन्नति के लिए तैयारी हो चुकी थी। उत्पादन, व्यापार और व्यवसाय पर सांमती और शाही प्रतिबन्ध हट चुके थे। बुर्जुआ वर्ग को बड़े राजनीतिक, धार्मिक और बौद्धिक संघर्ष के बाद ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था विकसित करने में प्रारम्भिक विजय मिल सकी । ब्रिटेन में अठारहवीं शताब्दी तक शहरों के मध्य वर्ग के लोग सामंती सीमाओं से पूरी

तरह से मुक्त हो चुके थे। वे सारी दुनिया में अपने उत्पादों के लिए बढ़ते बाजारों की पुर्ति करने के लिए उसमें पूँजी लगा सकते थे। अब सामंती अर्थव्यवस्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तब्दील हो रही थी। उस समय के महान तकनीकी अविष्कारों ने परिवर्तन को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक वस्तुओं के उत्पादन में धीरे–धीरे होने वाले परिवर्तनों ने एक तीव्र परिवर्तन को जन्म दिया। मुख्य बात यह है कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान प्रयोगात्मक विज्ञान के नये तरीकों का आम जीवन में प्रसार शुरू हो गया था। उनके उपयोग ने नयी तकनीक विकसित कर उत्पादन के साधनों मे काफी परिवर्तन कर दिया, जिसे हम औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं।[32]

औद्योगिक क्रान्ति का विचारधारा पर भी उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में उदारवाद का प्रचार था, जिसका आधार वैयक्तिक स्वतंत्रता का सिद्धांत था। इस शताब्दी के अनेक दार्शनिकों और विचारकों ने इसे जन्म दिया और फ्रांसीसी क्रान्ति ने इसका पोषण किया। इंग्लैण्ड में एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'द वेल्थ ऑफ नेशन्स' में व्यापार और व्यवसाय पर राज्य का नियंत्रण व्यर्थ बताकर उनको स्वतंत्र छोड़ने की नीति का समर्थन किया।

औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप की प्राचीन संस्कृति को पूर्णतः बदल डाला। उसने जीवन–मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये, जीवन–दृष्टि मे युगान्तर स्थापित किया। इन सब का प्रभाव साहित्यिक मानदंडों पर भी पड़ा तथा उसमें भी आमूल परिर्वतन हुये।

## रोमांटिक आन्दोलन की विकास यात्रा

सदियों से परम्परा प्रियता और सामंतशाही से ग्रस्त यूरोप में मानव विवेक कुंठित हो गया था। अठारहवीं शताब्दी में घटित होने वाली क्रान्तियों मे मनुष्य को सोचने के लिए विवश किया। क्रान्ति ने मनुष्य में निर्णय करने की नवीन दृष्टि प्रदान की । उसे पहली बार अपने व्यक्तित्व एवं विचारधारा के मूल्य का अहसास हुआ। रूसो, वाल्टेयर, लेसिंग और टामसपेन आदि ने अपने मानवतावादी विचारों से विश्व बन्धुत्व की भावना को विकसित किया। काण्ट, हीगल, फिक्टे आदि के दर्शन ने प्रकृति एंव मानव सम्बन्धों को परिभाषित कर उसे स्पष्ट किया।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में साहित्य और कला के क्षेत्र में यूरोप व्यापी रोमांटिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन ने पश्चिमी यूरोप के देशों को विशेष रूप से प्रभावित किया। इस युग में जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड के साहित्य , कला और दार्शनिक विचारधारा में तथा राजनीति में विशेष परिवर्तन हुए। किन्तु सारे यूरोप में यह रोमांटिक आन्दोलन एक जैसा नहीं था। फ्रांस में यह आन्दोलन राजनीति से प्रेरित था, जर्मनी में यह आन्दोलन दर्शन से प्रभावित था, इंग्लैण्ड मे इस आन्दोलन का स्वरूप सामाजिक था।[33]

## जर्मनी में रोमांटिक आन्दोलन

जर्मनी में रोमांटिसिज्म का विकास इंग्लैण्ड से पहले आरंभ हो गया था। जर्मन काव्य में रोमांटिसिज्म को प्रश्रय देने वाले प्रारंभिक कवियों में क्लापस्टाक (1724 ई0–1803 ई0), वीलैण्ड (1733 ई0–1813 ई0) और लेसिंग (1729 ई0–1781 ई0) के नाम प्रमुख हैं। क्लापस्टाक ने अनेक संम्बोध गीतियों (Odes) तथा मेसियस (Messias) नामक महाकाव्य की रचना की। उसकी रचनाओं में स्थान स्थान पर उसके मानवतावादी दृष्टिकोण, सौन्दर्यकामिता की झलक मिलती है। वीलैण्ड की प्रमुख कृति 'ओवेरॉन' है। यह एक रोमांटिक कृति है। लेसिंग ने भी अपनी काव्य–कृतियों, नाट्य–रचनाओं के माध्यम से रोमांटिक धारा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

जर्मनी में श्लेगल बन्धुओं फ्रेडरिक श्लेगल (1759 ई0–1805 ई0) तथा आगस्ट विल्हेम (1767 ई0 –1845 ई0) को जर्मन रोमांटिक आन्दोलन का प्रवर्तक माना जाता है। फ्रेडरिक श्लेगल ने रोमांटिक काव्य को प्रगतिशील सार्वदेशिक कहा। श्लेगल बन्धुओं ने क्लासिज्म और रोमांटिसिज्म को विरोधी अर्थो में प्रयुक्त किया।

जर्मनी में चले 'Sturan Und Drang' (Storm and Pressure) नामक आन्दोलन ने प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति तथा नवीन स्वातन्त्र्य भावना को संरक्षण देना अपना लक्ष्य बनाया। इस आन्दोलन के अनुयायी साहित्य–क्षेत्र में और उसी प्रकार जीवन में सभी प्रकार के बन्धनों से घृणा करते थे और प्रकृति द्वारा प्राप्त प्रेरणा से चालित होने का समर्थन करते थे। इस आन्दोलन ने जर्मनी के प्रकृति–प्रेमी भावुक कलाकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया।

जर्मनी में रोमांटिक प्रवृत्तियों के विकास में साहित्यकार गेटे (1749 ई0–1832 ई0) का भी महत्वपूर्ण योगदान है। उसकी काव्य कृतियों 'Die Loidan Jungen Werthers' और 'Fouste' (फॉउस्ट) में सौन्दर्य से उद्भूत कोमल भावनाओं के साथ–साथ प्रकृति के मार्मिक चित्रों की भी अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव में गेटे तीव्र रोमाटिक संवेदन के कवि थे। यद्यपि अपनी प्रौढ़ावस्था में गेटे ने रोमांटिसिज्म को 'रोग' की संज्ञा दी और उसकी अतिवादिता की भर्त्सना की, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसकी युवावस्था की रचनाएं स्वाभाविक रोमांटिक भावनाओं से ओत–प्रोत हैं।

जर्मन रोमांटिसिज्म की प्रमुख विशेषता उसकी देसी उपज है, जिसके पीछे राष्ट्रीय आकांक्षाएँ सक्रिय दिखाई देती हैं। एक अन्य विशेषता, रोमांटिसिज्म के संपूर्ण इतिहास में जर्मनी की विशिष्टता प्रकाशित करती है, वह उसका वैविध्यपूर्ण रूप है। यूरोप के अन्य देशों में रोमांटिक आन्दोलन की चेतना साहित्य और विशेष रूप से काव्य में ही अधिक जागरूक एंव सक्रिय रही, परन्तु जर्मनी में रोमांटिसिज्म ने साहित्य की विभिन्न विधाओं के अतिरिक्त अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों को भी प्रभावित किया।[34] जर्मन रोमांटिक चेतना की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम दर्शन था। जर्मन रोमांटिक धारा का मुख्य उद्देश्य तर्क, बुद्धिवाद एवं विज्ञानवाद के अतिरेक को नियंत्रित कर धर्म एवं आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतिष्ठापना रहा है। उसकी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने बौद्धिकता और तार्किकता का विरोध कर अनुभूति और अन्तर्दृष्टि पर बल दिया। इस प्रकार उसने यूरोप के रोमांटिक काव्य को समुचित दार्शनिक पीठिका प्रदान की।

## फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन

फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन की शुरूआत रूसो से मानी जाती है। इस आन्दोलन के प्रथम चरण में एक ओर वैचारिक आन्दोलनों का जोर था, तो दूसरी ओर फ्रांस राजनीतिक विप्लव से गुजर रहा था। जिस फ्रांसीसी क्रान्ति ने विश्व–बन्धुत्व प्रधान मानवता का समर्थन किया था, उसी क्रान्ति के वातावरण में उत्पन्न नेपोलियन अन्य देशों की स्वतंत्रता का तेजी से अपहरण करने लगा। नेपोलियन के शासन के विरूद्ध अन्य देशों में राष्ट्रीयता की भावना पनपी। फ्रांस में भी प्राचीन और नवीन के बीच संघर्ष चलता रहा। साहित्यकारों ने अतीत को महत्व दिया और ऐतिहासिक लेखन की ओर आकर्षित हुए। अपनी

राजनीतिक प्रतिबद्धताओं के कारण एक न होने के बावजूद विचारकों ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मॉग की।

विक्टर ह्यूगो (1802 ई0–1885 ई0) ने फ्रांसीसी रोमांटिक आन्दोलन के दक्षिणपंथी और वामपंथी विचारों को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया। विक्टर ह्यूगो पर रूसो का बहुत प्रभाव पड़ा था। चौदह वर्ष की अवस्था में ही उसने एक दुखान्त नाटक लिख डाला था। बीस वर्ष की अवस्था में ही उसका प्रथम काव्य–संग्रह प्रकाशित हो गया था। उसने लगभग बीस वर्षों तक कविता, नाटक, उपन्यास के क्षेत्र में काम किया और फ्रांसीसी स्वच्छन्दतावाद का नेतृत्व किया। उसकी ख्याति एक उपन्यासकार के रूप में अधिक है, पर फ्रांस में वह कवि के रूप में सम्मानित हैं। उसने काव्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थापना की कि कवि विशिष्ट प्रातिभ–ज्ञान से सम्पन्न होता है और उसमें भावना की स्वतंत्रता रहनी चाहिए। उसने राजनीति तथा इतिहास से स्वयं को सम्बद्ध रखते हुए भी अपनी कविताओं में कल्पना को प्रचुर प्रश्रय दिया। उसके सुन्दर गीतिकाव्यों के कारण उसे 'फ्रांसीसी गायक' कहकर सम्बोधित किया गया। उसमें कल्पना का वेग, करूणा की शक्ति और दृष्टि का चमत्कार था। उसकी प्रतिभा घनिष्ठ रूप से मानवीयता से जुड़ी हुई थी और वह जीवन के सुख–दुख को अच्छी तरह समझता था।[35]

फ्रांस के रोमांटिक आन्दोलन में लैमर्तीन, विग्नी, म्यूजेत के नाम भी महत्वपूर्ण हैं। फ्रांसीसी रोमांटिक काव्य ने रोमानी मुद्रा को अभिव्यक्ति देने के लिए संवेदन, कल्पना तथा भावावेग का आश्रय लिया और स्वयं को जर्मनी , इंग्लैण्ड, इटली और स्पेन की नयी प्रवृतियों से दूर नहीं रखा। स्टेण्डहल और बालजाक भी रोमांटिक आन्दोलन से जुड़े थे। ये मूलतः उपन्यासकार थे। समीक्षा को भी रोमांटिक आन्दोलन ने प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी में रचनाओं का परीक्षण इसी दृष्टिकोण से किया गया। रोमांटिक प्रभाव में ही इस दृष्टिकोण का विकास हुआ कि रचना को समझने के लिए रचनाकार के परिवेश को भी जानना होगा। 'रचना को भीतर से जानना उसकी उचित समीक्षा है:'– यह रोमांटिक समीक्षा का मुख्य बिन्दु है।

फ्रांस में काव्य, नाटक उपन्यास समीक्षा आदि साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त रोमांटिक आन्दोलन ने इतिहास, धर्म, राजनीति, दर्शन आदि के सम्बन्ध में विचार रखने वाले विचारकों एवं लेखकों

को भी प्रभावित किया। देश के राजनीतिक विप्लव के कारण फ्रांस में रोमांटिक आन्दोलन इंग्लैण्ड की तुलना में कुछ देर से सक्रिय हुआ और उसके रचनाकारों की संख्या भी सीमित है। पर यह ध्यान देने योग्य है कि फ्रांस में ही रोमांटिसिज्म के विचार का उद्भव हुआ। फ्रांस चिन्तन के क्षेत्र में अग्रणी रहा है। फ्रांस के रोमांटिक आन्दोलन में प्रेरणा प्रातिभज्ञान, कल्पना, सौन्दर्यानुभूति आदि की प्रधानता है। इन्हें रोमांटिसिज्म का मूल तत्व माना जाता है।[36] फ्रांसीसी रोमांटिक आन्दोलन ने यूरोपीय रोमांटिक आन्दोलन को विस्तार दिया।

## इंग्लैण्ड में रोमांटिक आन्दोलन

रोमांटिक आन्दोलन का पूर्ण विकास इंग्लैण्ड में हुआ। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में सन् 1798 ई0 से 1832 ई0 तक के काल को रोमांटिक युग (Romantic Age) कहते हैं। जानसन युग की कविता में पोप युग की शास्त्रीय सम्प्रदाय की कविता से विलगाव के जो चिन्ह प्रकट होने लगे थे, वे रोमांटिक युग में आकर नितान्त स्पष्ट हो गये। वड्र्सवर्थ, कालरिज, सर वाल्टर स्कॉट, बायरन, शेली और कीट्स प्रभृति कवि रोमांटिक धारा के प्रमुख कवि हैं।

वर्ड्सवर्थ को अंग्रेजी रोमांटिक धारा का प्रर्वतक माना जाता है। वर्ड्सवर्थ ने कालरिज के साथ मिलकर सन् 1798 ई0 में लिरिकल बैलेड्स (Lirical Ballads) का सम्पादन किया। यह घटना अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में एक युग प्रर्वतक साहित्यिक घटना है। इस काव्य संग्रह के प्रकाशन के साथ ही रोमांटिक युग की काव्य धारा का अभ्युदय हुआ। इस कृति में रोमांटिसिज्म और प्रकृतवाद का पूर्ण विकास देखा जा सकता है। वस्तुतः इस कृति के द्वारा वर्ड्सवर्थ ने विगत युग के काव्य की रूढियों , अन्य परम्पराओं तथा प्राचीन, कृत्रिम एवं अनावश्यक नियमों पर आक्रमण किया और उसकी मान्यताओं को चुनौती दी। इसका द्वितीय संस्करण सन् 1800 ई0 में प्रकाशित हुआ। द्वितीय संस्करण में वर्ड्सवर्थ द्वारा लिखी गयी भूमिका 'रोमांटिक कविता का मेनीफेस्टो' कहा जाता है। वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज ने रोमांटिक काव्य के लिए नयी भूमि तैयार की। 'लिरिकल बैलेड्स' के माध्यम से उन्होंने नये युग के आगमन की सूचना दी तथा यह घोषणा की कि काव्य सर्जना ऐसी कला है जिसे कृत्रिम परम्पराओं के संकीर्ण बंधन

से बाँधा नहीं जा सकता। लिरिकल बैलेड्स के माध्यम से जिस रोमांटिक आंदोलन का आरंभ हुआ उसे बाद में बायरन, शेली और कीट्स जैसी प्रतिभाओं ने चरम पर पहुंचा दिया।[37]

## विलियम वर्ड्सवर्थ

'लिरिकल बैलेड्स' में संग्रहीत अधिकांश रचनाएँ वर्ड्सवर्थ (सन् 1770 ई0–1850 ई0) की थीं। इस संग्रह की अंतिम कविता 'लाइन्स रिटेन एबव टिन्टर्न एबे' (Lines Written Above Tintern Abbey) है, जो अंग्रेजी काव्य की एक महान रचना मानी जाती है। वर्ड्सवर्थ की प्रमुख रचनाएँ 'एन इवनिंग वाक' (An Evening Walk), 'डिस्क्रिप्टिव स्केचेज' (Descriptive Sketches), 'दि रेक्ल्यूज' (अपूर्ण), 'दि प्रिल्यूड', 'दि डेफोडिल्स', 'दि सालीटरी रीपर', 'लूसी पोयम्स', 'ओड टू ड्यूटी', 'ओड ऑन दि इन्टीमेशन्स' 'ऑन इम्पारटेलिटी', 'कन्वेशन ऑफ सिन्ट्रा', 'दि एक्स करशन', 'लाओडामिआ' आदि हैं।

अंग्रेजी काव्य में वर्ड्सवर्थ ग्राम्य एवं प्रकृति जीवन के श्रेष्ठतम कवि हैं। उन्हें अंग्रेजी स्वच्छन्तावाद (English Romanticism) का प्रर्वतक माना जाता है। उनके द्वारा सम्पादित 'लिरिकल बैलेड्स' को अंग्रेजी 'रोमांटिक आन्दोलन का घोषणा–पत्र' कहा जाता है। काव्य–शैली एवं काव्य–वस्तु सम्बन्धी वर्ड्सवर्थ के सिद्धान्त, परम्परा एवं कृत्रिमता का विच्छेद करके स्वाभाविकता एवं यथार्थता की स्थापना के समर्थन में हैं। 'लिरिकल बैलेड्स' के दूसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने अपने काव्यादर्शों की व्याख्या करते हुए लिखा है –

'इन कविताओं में हमारा प्रधान उद्देश्य था घटनाओं और परिस्थितियों का चयन साधारण जीवन से करना तथा उसके वर्णन में आदि से अन्त तक ऐसी भाषा का चुनाव करना, जिसका व्यवहार लोग वास्तव में करते हैं, और इसके साथ ही साथ उन्हें कल्पना का ऐसा पुट भी देना था, जिसके कारण साधारण वस्तुएँ भी अद्भुत रूप धारण कर लें।'[38]

वर्ड्सवर्थ की इस घोषणा में तीन बातें मुख्य हैं–

1– वर्ड्सवर्थ अपनी कविताओं में वर्ण्य विषय साधारण जीवन से लेने के पक्ष में हैं, इस रूप में उनकी रूचि निम्न श्रेणी के ग्रामीण जीवन में अधिक है।

2– उन्होंने आगस्टन सम्प्रदाय के लेखकों के आडम्बरपूर्ण और अस्वाभाविक वाक्जाल के स्थान पर उस भाषा का प्रयोग करना उपयुक्त समझा है, मनुष्य स्वभावतः जिसका व्यवहार करते हैं।

3– वड्र्सवर्थ ने जीवन के शुष्क, भावना रहित और कल्पनाहीन वर्णन के विरोध में उसे कल्पना के रंग में रंगकर प्रस्तुत करने का समर्थन किया है।

वर्ड्सवर्थ ने अपनी कृतियों में अपनी अनुभूति, मनुष्य की सहज भावनाओं तथा जीवन के प्राथमिक सारभूत और निर्व्याज स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। उनकी सभी रचनाओं की प्रवृत्ति जीवन के सरलीकरण की ओर है।

## सैमुअल टेलर कॉलरिज

कॉलरिज अंग्रेजी रोमांटिक युग के दूसरे उल्लेखनीय कवि हैं। वह 'लिरिकल बैलेड्स' के सहयोगी कवि हैं। उनकी काव्य समीक्षाओं को उनके काव्य की अपेक्षा अधिक महत्व मिला।

अन्य रोमांटिक कवियों की तुलना में कॉलरिज बहुपठित तथा बहुश्रुत थे। उनकी रूचि आरम्भ से ही दर्शन, सौन्दर्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीति तथा विज्ञान की ओर रही। अन्य रोमांटिक कवियों के विपरीत उन्होंने अपनी काव्य दृष्टि के अर्न्तगत वैज्ञानिक रूपों को समाहित करने का प्रयत्न किया। बाइबिल और ओशियन प्रतीकों के आतिरिक्त उन्होंने हिब्रू, मिस्री एवं भारतीय धर्मों एवं दर्शनों के प्रतीकों को भी अपने काव्य में ग्रहण किया । वे संपूर्ण विश्व को एक विशाल एवं संगठित इकाई के रूप में देखते थे। भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत के बीच सम्बन्ध स्थापन करने के प्रयास में ही वे जीवन भर विविध रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग करते रहे।

कॉलरिज की प्रमुख कविताएँ 'द एन्शिएण्ट मारिनर', 'क्रिस्टाबेल', 'कुबलाखान', 'लव डिजेक्शन एन ओड', 'फ्रांस एन ओड' हैं। उनके काव्य की सर्वोपरि विशेषता है, उनमें विद्यमान अति प्राकृतिक तत्व। उन्होंने अति प्राकृतिक घटनाओं को मनोवैज्ञानिक आकार प्रदान कर उन्हें एक अतीन्द्रिय तथ्य अथवा दृश्य के रूप में प्रस्तुत किया है। कालॅरिज के काव्य में वर्णित प्रत्येक पात्र अथवा घटना एक विचित्र रहस्यात्मकता से ओत–प्रोत है। उनकी अधिकांश कविताएँ स्वप्न का परिणाम हैं । वास्तविकता यह है कि

कॉलरिज स्वप्नों के ही कवि हैं। उन्होनें स्वयं कहा है– 'मेरी कितनी इच्छा है कि मैं भारतीय देवता विष्णु के समान कमल के पुष्प पर विराजमान हो आनन्द सागर में संतरण करूँ और दस लाख वर्षों की अवधि में कुछ क्षणों के लिए यह जानने के लिए जागूँ कि मुझे दस लाख वर्ष और सोना है।'[39]

एक अन्य स्थान पर कॉलरिज का कथन है –'स्वप्न मेरे लिए छाया मात्र नहीं है, वरन् सार तत्व है और मेरे जीवन में दुर्घटना के समान है।'[40]

कालॅरिज की कविताओं में मध्य युग के प्रति तीव्र आकर्षण दिखाई देता है। वस्तुतः कॉलरिज की काव्य चेतना के निर्माण में मध्ययुगीन पुराण, इतिहास, लोकगीत और दन्त कथाओं का महत्वपूर्ण योग है।

कॉलरिज की कविताओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, उनकी अतिशय कल्पनाशीलता। अपनी उत्कृष्ट कल्पनाशीलता के बल पर ही कॉलरिज ने अलौकिक ,अतिप्राकृतिक, रहस्यपूर्ण, विचित्र और असंभाव्य को मूर्त सम्भाव्य और विश्वसनीय बना दिया है।

रोमांटिक युग के कवियों पर प्रायः यह दोष लगाया जाता है कि वे पूर्ण रूपेण अंहवादी हैं। किन्तु कॉलरिज पर यह दोष कदापि नहीं लगाया जा सकता । वे पूर्णतया मानवतावादी कवि हैं। उनकी 'दि एन्शिएंट मारिनर' कविता अहंभाव के विरूद्ध एक प्रवचन है।[41]

कॉलरिज के काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का भी सूक्ष्म और ह्रदयग्राही चित्रण हुआ है। वर्ड्सवर्थ के समान ही कालॅरिज भी प्रकृति के अर्न्तगत एक दिव्य सत्ता की संस्थिति मानते हैं। उनके काव्य में आद्यन्त संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

रोमांटिक युग की कविता को कॉलरिज का प्रदेय परिमाण में अल्प होते हुए भी अत्यंत मूल्यवान है। कॉलरिज का वास्तविक महत्व इस बात में है कि उन्होनें अपने काव्य में विज्ञान और सृजनात्मक कल्पना का अपूर्व समन्वय किया है। भौतिक और आध्यात्मिक जगत के मध्य सम्बन्ध स्थापन ही उनकी काव्य कला का प्रधान लक्ष्य रहा है। इसी संदर्भ में कॉलरिज का यथार्थ मूल्यांकन किया जा सकता है।

## सर वाल्टर स्काट

वाल्टर स्काट के रूप में रोमांटिसिज्म को एक ऐसा व्याख्याता मिला, जो अपने युग में अत्यधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली था। उसका बचपन सीमा प्रदेश के गाँवों में बीता। यहाँ उसने उस स्थान की

निर्जन और ऊबड़–खाबड भूमि से प्रेम करना सीखा और यहीं उसकी बाल कल्पना उन युद्धों की कथाओं द्वारा जाग्रत हुई, जिनमें उसके पूर्वजों ने स्वयं भाग लिया था। बचपन से ही उसे प्राचीन लोक गाथाओं से प्रगाढ़ प्रेम हो गया और स्वेच्छा से उन्हें संग्रहीत करने लगा। बड़े होने पर भी वह स्काटलैंड की घाटियों में भ्रमण के लिए जाया करता था। जर्मनी के रोमांटिक साहित्य के प्रति भी वह आकृष्ट हुआ तथा उसने कुछ जर्मन लोकगाथाओं का अनुवाद भी किया। उसने 'दि मिन्स्ट्रेल्सी ऑव दि स्काटिश बार्डर' नाम से लोक गाथाओं को प्रकाशित कराया। उसकी अन्य प्रसिद्ध रोमांटिक कविताएं हैं– 'मार्मियन', 'दि लेडी ऑफ दि लेक', 'रोकवी' आदि। यद्यपि उसकी शैली कहीं–कहीं उखड़ी और अस्पष्ट है तथापि उसमें आवेग, शक्ति एवं स्वच्छन्दता है। उसके काव्य का महत्व रोमांटिक अतीत को पुनरुज्जीवित करने में है।

## लार्ड बायरन

बायरन रोमांटिक युग की द्वितीय पीढ़ी का सर्वाधिक प्रतिनिधि कवि है। उसके साहित्य में क्रान्ति की उस व्यापक, आवेग पूर्ण, किन्तु अशक्त भावना की अपेक्षाकृत सबसे अधिक अभिव्यक्ति हुई है, जो उस युग की एक प्रमुख विशेषता थी। उसके प्रारंभिक कविता संकलन 'फ्यूगिटिव पीसेज', 'पोयम्स ऑन वेरियस अकेजन्स' वर्ष 1807 ई0 में प्रकाशित हुए। इन रचनाओं के स्वागत से अभिप्रेरित होकर उसने 'आवर्स ऑफ आइडिलनेस' के नाम से अपना तृतीय संकलन प्रकाशित कराया। 'एडिनबरा रिव्यू' ने इस कृति की तीव्र आलोचना की। इस आलोचना का उत्तर बायरन ने अपनी 'इंग्लिश वर्ड्स एण्ड स्कॉच रिव्यूअर्स' नामक व्यंग्य रचना में दिया। उसने यूरोप की यात्रा की। सन् 1812 ई0 में 'चाइल्ड हैरोल्ड पिलिग्रिमेज', के प्रथम दो सर्गो में अपनी यूरोप यात्रा का विशद एवं रोचक वर्णन किया। इस कृति में समाज द्वारा प्रताड़ित तथा निष्कासित, स्वप्नछिन्न, संवेदनशील, उदार, तेजस्वी और उदात्त यायावर का जो चरित्र उपस्थित किया है उसमें हम बायरानिक हीरो की रूपरेखा देख सकते हैं। रोमांटिक काव्य के विकास में बायारानिक हीरो का अत्यन्त महत्व है। चाइल्ड हैरोल्ड में अनजान प्रदेशों के निवासियों, नये दृश्य प्रसंगों और वातावरण का अंकन जिस गरिमा और अभिनवता के साथ हुआ है, वह रोमांटिक भावधारा के अनुकूल ही है। 'चाइल्ड हैरोल्ड' के प्रकाशन के साथ ही बायरन को विशाल सफलता प्राप्त हुई। बायरन ने स्वयं लिखा है– 'एक सुबह मैं उठा और अपने आप को प्रसिद्ध पाया।'[42]

सन् 1812 ई0 से 1816 ई0 तक बायरन ने अनेक पद्य–प्रेमाख्यानकों की रचना की। इन प्रेमाख्यानकों में 'दि कार्सेर', 'लारा', 'दि गिंयौर' 'दि ब्राइड ऑफ एवीडास' तथा 'दि सीज ऑफ कोरिन्थ' विशेष उल्लेखनीय हैं। 1816 ई0 तथा 1817 ई0 में क्रमशः 'चाइल्ड हैराल्ड्स पिलिग्रिमेज' के तीसरे और चौथे सर्गों का प्रकाशन हुआ। 'प्रिजनर ऑफ शिलान' का प्रकाशन भी वर्ष 1816 ई0 में ही हुआ। 1817 ई0 में बायरन ने 'वेम्पो' की रचना की। यह कृति इटालियन बरलेस्क (प्रहसन) की विशेषताओं से समन्वित है। इसमें सामाजिक रीति–रिवाजों एवं परम्परागत नैतिक आदर्शों पर गहरा व्यंग्य किया गया है। इस कविता की विषय वस्तु भी भिन्न है। इसमें एक ऐसी पत्नी की कहानी कही गयी है, जो अपने पति की अनुपस्थिति में पर पुरुष से प्रेम करती है। इसकी शैली भी सहज औपचारिक और विनोद पूर्ण है। सन् 1822 ई0 में 'विजन ऑफ जजमेंट' नामक व्यंग्य कविता का प्रकाशन हुआ। सन् 1819 ई0 से 1824 ई0 के बीच 'डान जुआन' (Don guan) नामक लम्बी कविता का प्रकाशन हुआ। इस रचना ने उन्हें यूरोप के महत्वपूर्ण कवियों की कोटि में पहुँचा दिया।

बायरन का साहित्य न केवल विशाल था वरन् रूप विधान में भी विविधता लिए हुए था। किन्तु यह विविधता केवल बाहरी ही है। बायरन एक अहंवादी कवि था, उसने प्रत्येक रचना में अपनी ही भावनाओं, दुखों और कार्य–व्यापारों का प्रत्यंकन किया है।

एक सिद्धांतशास्त्री के रूप में बायरन ने अपने को आगस्टन सम्प्रदाय का अनुयायी घोषित किया था और रोमांटिक काव्य धारा का विरोध करते हुए पोप की प्रशंसा तथा वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की भर्त्सना की थी। उसकी 'विजन ऑफ जजमेंट' तथा 'डान जुआन' जैसी प्रौढ रचनाओं को अठारहवीं शताब्दी की शास्त्रीय काव्य परम्परा के अन्तर्गत रखना ही उचित जान पड़ता है। फिर भी बायरन का रोमांटिक कवि के रूप में अध्ययन करना दो कारणों से आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथमतः इसलिए कि बायरन रोमांटिक युग के दूसरे चरण में उत्पन्न हुए और इस ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। द्वितीयतः इसलिए भी कि बायरन की 'चाइल्ड्स हैराल्ड पिलिग्रिमेज', 'प्रिजनर ऑफ शिलान' तथा 'मेनफ्रेड' आदि रचनायें निःसंदिग्ध रूप में रोमांटिक युग की भावधारा को अभिव्यक्त करती हैं।

## पी० बी० शेली

शेली अंग्रेजी रोमांटिक युग के प्रतिनिधि कवि हैं। परिमाण की दृष्टि से शेली का साहित्य अत्यन्त विपुल है। उनकी प्रथम काव्य कृति है– 'क्वीनमेव', जिसका प्रकाशन सन् 1813 ई0 में हुआ। इस कविता में शेली की मानव कल्याण की आवेश पूर्ण भावना मुखरित हुई है। उनकी दूसरी काव्यकृति है– 'एलास्टर' या 'दि स्प्रिट ऑफ सालीट्यूड' जिसका प्रकाशन सन् 1816 ई0 में हुआ। यह एक प्रकार की दार्शनिक आत्मकथा है। शेली की प्रमुख कृतियॉ हैं– 'दि रिवोल्ट ऑफ इस्लाम', 'जूलियन एण्ड मंडालो', 'दि येन्सी' (नाटक), 'प्रोमेथ्यूज अन्बाउन्ड' (गीति नाट्य) 'एपिसाइकीडियन', 'ओड टु दि वेस्ट विन्ड', 'दि सेन्सिटिव प्लाण्ट', 'दि क्लाउड', 'टु ए स्काईलार्क' 'एडीनेस' आदि ।

शैली अपने व्यक्तित्व, स्वभाव, आचरण और व्यवहार से भी एक कवि ही था। उसकी भावनाऍ, मनोदशाएँ, अनुभूतियाँ व विचार सहज–स्वाभाविक रूप से कविता में ही अभिव्यक्त होते थे। शेली एक अतिशय भावप्रवण एवं संवेदनशील व्यक्ति था। वह सदैव इस संसार से दूर किसी कल्पना लोक में विचरण किया करता था। वह एक स्वप्नद्रष्टा, कल्पनाजीवी और आदर्शवादी कवि था। जीवन की वास्तविकताओं से उसका कोई प्रयोजन न था। उसकी भावनाऍ, विचार और आदर्श ही उसके लिए सब कुछ थे। सभी प्रकार की भौतिक सत्ता, मनुष्यकृत नियम, सांसारिकता, नैतिक बंधन, धर्मान्धता, हठवादिता से उसे अतीव घृणा थी, क्योंकि उसका विश्वास था कि इन बुराइयों ने ही मनुष्य की आध्यात्मिक दृष्टि को रुद्ध और विकृत कर दिया है। शेली की मान्यता थी कि प्रेम की महती शक्ति द्वारा ही इन बुराइयों का उन्मूलन हो सकता है। वस्तुतः शेली ने अपना जीवन स्वतन्त्रता, सौन्दर्य और प्रेम की खोज में ही समर्पित कर दिया। स्वतन्त्रता, सौन्दर्य और प्रेम उसके लिए पर्यायवाची थे।

शेली के काव्य में प्रकृति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य का उत्कृष्ट उपासक था और अपना अधिकांश समय प्रकृति के साहचर्य में ही व्यतीत करता था। इसी कारण उसके काव्य में सरिताओं, सागरों, गहन वन प्रदेशों की नीरवता, शारदीय धूप, पर्वत श्रृंगों पर मेघों का नर्तन, पुष्पों के अन्तर्गत वर्ण और पक्षियों के कलरव आदि के सजीव चित्र प्रस्तुत हुए हैं। प्रकृति शेली के लिए बौद्धिकता का स्रोत, प्रेम का प्रतीक और सौन्दर्य का आगार है।

शेली ग्रीक संस्कृति और साहित्य का उत्कृष्ट विद्वान था। वह ग्रीक दार्शनिक प्लेटो की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित था। शेली की सामाजिक और राजनीतिक धारणाओं, साहित्य एवं कविता सम्बन्धी स्थापनाओं तथा धार्मिक व नैतिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में प्लेटो के सिद्धान्त ही हैं।

शेली के काव्य में आदर्शवादिता, लोकमंगलकारी भाव, नूतन चेतना, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। अंग्रेजी साहित्य ही नहीं, विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य पर शेली का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ा है।

## जॉन कीट्स

रोमांटिक युग की द्वितीय पीढ़ी के महत्वपूर्ण कवियों में जॉन कीट्स अंतिम कवि हैं। छब्बीस वर्ष की अल्पायु में ही जॉन कीट्स की मृत्यु हो गयी। उनका सम्पूर्ण साहित्यिक प्रदेय उनके पॉच–छः वर्षों के रचना का परिणाम है। उनका प्रथम काव्य संग्रह 1817 ई0 में 'पोयम्स' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। कीट्स का मानना था कि प्रकृति काव्य की अत्यन्त प्रेरणा स्रोत है तथा यदि कोई व्यक्ति प्रकृति से पूर्ण साहचर्य स्थापित करना चाहता है तथा उसके सौन्दर्य और रहस्य का रसास्वादन करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह मानव प्रकृति का अध्ययन करे। वस्तुतः कविता मानव–जीवन की काव्यात्मक समीक्षा है।

सन् 1817 ई0 में ही कीट्स की दूसरी कृति 'एण्डीमियन' प्रकाशित हुई। इसका कथानक एक प्राचीन यूनानी पौराणिक कथा पर आधारित है। सन् 1818 ई0 में कीट्स की अगली रचना 'इजाबेला' या 'दि पार्ट ऑफ बेसिल' प्रकाशित हुई। यह करूण रस से ओत–प्रोत रचना है। इसकी प्रधान पात्रा इजाबेला के दो भाई अपनी बहन के प्रेमी लोरेन्जों की हत्या कर देते हैं और उसके शव को जंगल में छिपा देते हैं। लोरेन्जो का प्रेत इजाबेला को स्वप्न में इस जघन्य कृत्य की सूचना देता है। इजाबेला जंगल से अपने प्रेमी के सिर को ले आती है और तुलसी के पात्र में रख लेती है, किन्तु उसके भाई उस पात्र को चुरा ले जाते हैं। भग्नहृदया इजाबेला अन्त में, मृत्यु को प्राप्त होती है। कथा में प्रवाह और मर्मस्पर्शिता का गुण है। स्थान–स्थान पर सजीव बिम्बों का भी विन्यास हुआ है।

कीट्स की प्रमुख रचनाओं में 'हाइपेरियन' (महाकाव्य), 'लैमिया' (प्रदीर्घ कविता), 'ईव ऑफ सैण्ट इग्निस' हैं। कीट्स के मृत्योपरांत उसका 'ला वेल दाय सा मर्सी' नामक प्रगीतात्मक प्रेमाख्यानक प्रकाशित हुआ। इसे कीट्स की सर्वोत्कृष्ट कविता माना जाता है।[43] कीट्स की कला का चरम विकास उसके संबोध–गीतों में होता है। 'टु ए नाइटिंगेल', 'टु साइके', 'टु आटम' आदि संबोध गीत अत्यंत समृद्ध रचनाएं हैं।

कीट्स विशुद्ध रूप से कलात्मक स्वभाव से सम्पन्न कवि थे। इसी कारण उन्होंने सदैव कला और सौन्दर्य के संसार में विचरण किया। वे राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मत मतान्तरों, वादों–प्रवादों तथा आन्दोलनों के प्रति सदैव उदासीन रहे और न उन्होंने अपने काव्य में तत्कालीन सामाजिक मनोदशा तथा जनजीवन की परिस्थितियों का कभी चित्रण ही किया। कीट्स के मतानुसार कविता का उद्देश्य किसी सामाजिक सिद्धान्त, धार्मिक उपदेश अथवा राजनीतिक वाद की अभिव्यक्ति करना न होकर सौन्दर्य का शोध करना है। कीट्स के जीवन और काव्य का मूलादर्श ही सौन्दर्यकामिता रहा है। 'एण्डीमियन' की विख्यात प्रथम पंक्ति 'सुन्दरता की वस्तु सदा आनन्द विधायक है'– यह कीट्स के काव्य का प्रधान स्वर व्यंजित हुआ है।[44] कवि ने अपने एक पत्र में लिखा है– 'मैंने समस्त वस्तुओं में सौन्दर्य के सिद्धान्त से ही प्रेम किया है।'[45]

कीट्स के काव्य में सर्वत्र पलायनवादी प्रकृति के दर्शन होते हैं। उसे आधुनिक संसार कठोर, भावना रहित, शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है। अतएव अपने स्वभाव के अनुसार उसने इस संसार से पलायन कर कल्पना लोक में रमण का प्रयत्न किया।

रोमांटिक कालीन अन्य कवियों की तरह ही कीट्स भी प्राकृतिक सौन्दर्य का महान चित्रकार है। अपनी कविता में उसने प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृश्यों का अत्यन्त सफलता पूर्वक अंकन किया है।

तीव्र संवेदनशीलता तथा कल्पना–प्रवणता के कारण कीट्स अपनी अनुभूतियों को बिम्बों द्वारा अभिव्यंजित करने में अत्यंत कुशल थे। उनके काव्य के रचना विधान पर दृष्टिपात करने पर यह बात सहज ही परिलक्षित होती है कि कीट्स एक सचेष्ट कलाकार थे। वे अपनी कविताओं को किसी क्षण की

विशिष्ट प्रेरणा के भरोसे न छोडकर उनमें निरन्तर परिष्कार व परिवर्तन करते रहते थे। कलागत संयम एवं जागरूकता उनके काव्य को उनके समकालीन कवियों के काव्य से पृथक् कर देते हैं।

रोमांटिक युग की द्वितीय पीढ़ी का अंतिम कवि होने के कारण कीट्स का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस संदर्भ में विचारणीय बात यह है कि शैली एवं छंद आदि की दृष्टि से कीट्स अपने अन्य समकालीन कवियों की अपेक्षा अधिक रोमांटिक हैं। कीट्स का काव्य सौन्दर्य चेतना की ओर प्रवृत्त है।

## रूस में रोमांटिक आन्दोलन

रोमांटिक आन्दोलन जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्ड के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय देशों में भी फैला। अंग्रेजी और जर्मनी की रोमांटिक धारा का प्रभाव रूस पर भी पडा। रूस के प्रथम रोमांटिक कवि पुश्किन ने काव्य और कलाओं को रूढ़िवादिता की सीमा से बाहर निकालकर उसे स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया।

## अलेक्जेंडर पुश्किन

पुश्किन (1799 ई0–1837 ई0) को रूसी रोमांटिक आंदोलन का आंरभकर्ता माना जाता है। उसकी प्रमुख कृतियाँ 'कवि मित्र के लिए', 'ओड टु लिवर्टी', 'चादायेव के लिए', 'देश', 'काकेशस के कैदी', 'बाख्मीसराम का फौव्वारा', 'येत्गेनी अनेगिन', 'बोरिस गोदुनोव', 'मोजार्ट और सालेरी', 'काम्येनी गोस्त्र', 'प्लेग के समय भोज', 'दुब्रोवस्की', 'कप्तान की बेटी', हुक्म की बेगम आदि हैं।

पुश्किन की साहित्य यात्रा अपेक्षाकृत छोटी उम्र में ही शुरू हो गयी थी। उस समय का साहित्यिक वातावरण मुख्यतः उत्तर क्लासिज्म और रोमांटिसिज्म के सौन्दर्य बोध के वर्चस्व से प्रभावित था। निरंकुश सत्ता द्वारा नियंत्रित समाज में रहते हुए रोमांटिक रूझान वाले कवि पुश्किन के लिए जीवन और कृतित्व का उद्देश्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता के संघर्ष में देखना स्वाभाविक था। आरम्भिक रचनाओं में स्वतन्त्रताकामी व्यक्ति ही उनकी चिंताओं के केंद्र में दिखाई देता है।

पुश्किन का रचना–संसार देश की सीमाओं में कभी बँधा नहीं रहा। अपनी रचनाओं के उपयुक्त कथानकों और चरित्रों के लिए वह निर्बाध रूप से कहीं भी जा सकते थे, शर्त सिर्फ यही रही कि ये चरित्र या कथानक उसकी सौन्दर्य और वैचारिक जरूरतों को पुरा कर सकें।

व्यक्ति की स्वतन्त्रता पूरे समाज और राष्ट्र की स्वतंत्रता से जुड़ी होती है– यह समझ पुश्किन को एक राष्ट्र के रूप में रूस की ऐतिहासिक नियति को पहचानने के लिए प्रेरित करती है। शासक और जनता के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करते हुए पुश्किन इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि निर्णायक शक्ति अंततः जन सामान्य ही है। अपने आक्रोश में यह गूंगी और नासमझ जनता सत्ता के सारे छद्मों और आडम्बरों को उखाड़ फेंकती है।

विश्व में ऐसे कम ही कवि– लेखक हुए हैं जिनके कृतित्व का अपने देश के सांस्कृतिक, साहित्यिक और आत्मिक जीवन से इतना अंतरंग सम्बन्ध है जितना पुश्किन की रचनाओं का। पुश्किन की रचनाएं बचपन से बुढ़ापे तक एक समान हर परिस्थिति में सच्चे समझदार दोस्त की तरह साथ देती आयी हैं। बचपन में लोक कथाओं का संसार, किशोरावस्था में प्रेमानुभूतियॉ, दाम्पत्य जीवन में पति–पत्नी द्वारा एक दूसरे की भावनाओं को समझने और निभाने में पथ प्रदर्शन और इससे बढ़कर मनुष्य के समृद्ध और जटिल अंतर्जगत् की संरचना को ध्यान में रखना– ये गुण हैं पुश्किन की रचनाओं के, और यही गुण हैं, जिन्हे आत्मसात करने में हरेक को पुश्किन का काव्य सतत प्रेरित करता है।

पुश्किन को अपने समय की काव्य भाषा की सीमाओं का पूरा अहसास था। भाषा की कृत्रिमता और अत्यधिक शैलीकृत रूप को अपनी रचनाओं में बदलने का वह जीवन भर प्रयास करते रहे।[46]

रोमांटिक आन्दोलन को अन्य कवियों ने भी आगे बढ़ाया। गोगल ने यूक्रानियाँ और कासफ के निवासियों के ग्रामीण जीवन की कहानियों के आधार पर काव्य–रचना करके रोमांटिक काव्य को प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में जन्म लेकर रोमांटिक काव्य–आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी में संपूर्ण यूरोप में फैल गया। इंग्लैण्ड में यह आन्दोलन सर्वाधिक उत्कृष्ट एवं सफल रहा। वर्ड्सवर्थ, शेली, बायरन, कीट्स आदि रोमांटिक कवियों ने यूरोप ही नहीं, पूरे विश्व के साहित्य को प्रभावित किया।

## रोमांटिक आन्दोलन का ह्रास

प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अतः वह निश्चित ही युगीन वातावरण के अनुकूल अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। अठारहवीं शताब्दी के जिस वातावरण ने रोमांटिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया था, उन्नीसवीं शताब्दी में वह शीघ्रता से परिवर्तित होने लगा था। रोमांटिक प्रवृत्तियों के विपरीत तर्क, उपयोगितावाद, भौतिकवाद, इत्यादि के नवीन प्रभाव सबल और सक्रिय हो उठे थे। सामंतवादी व्यवस्था का अवसान हो चुका था और पूँजीवादी व्यवस्था स्थापित होकर उसके भयंकर परिणाम भी सामने आ चुके थे। औद्योगिक उन्नति के कारण शोषणकर्ता और शोषितों के नये वर्ग स्थापित हो चुके थे। वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि ने मनुष्य को कल्पनाशील के स्थान पर तर्कशील बना दिया था। भावना की अपेक्षा दृश्यमान वस्तु – जगत का महत्व अधिक हो गया था। अतः यथार्थवादी साहित्य की उपयुक्त भूमि तैयार हो चुकी थी और इसी भूमि में कल्पना और भावना–प्रधान रोमांटिक प्रवृत्तियों का टिके रहना कठिन था।[47]

डार्विन के विकासवाद के वैज्ञानिक सिद्धांत ने मुनष्य को अन्य प्राणियों की भाँति एक विकसित जीव सिद्ध कर दिया। इस विचारधारा के प्रभाव से साहित्य में प्रकृतवाद का जन्म हुआ, जिससे रोमांटिक भाव–धारा को गहरा धक्का लगा।

मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित होकर साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद का जन्म हुआ, जो कल्पना के प्रतिकूल ठोस व्यावहारिक सत्य पर आधारित था। रोमांटिक साहित्य भावना प्रधान था और बाह्य सामाजिक परिस्थितियों की उपेक्षा करता था। इसके विपरीत परवर्ती यथार्थवादी साहित्य ने बाह्य स्थूल जगत को ही मुख्य माना और भावजगत को नगण्य स्थान दिया। क्योंकि यथार्थवादी साहित्य समकालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुकूल था, फलस्वरूप रोमांटिक साहित्य का सृजन अवरूद्ध हो गया।

डार्विन और मार्क्स के अतिरिक्त मनोविश्लेषणशास्त्री फ्रायड की विचारधारा ने भी उन्नीसवीं शताब्दी को अत्यधिक प्रभावित किया। मनोविश्लेषणात्मक साहित्य अन्तर्दृष्टि प्रधान था, जिसमें मानस लोक का चित्रण विशेषतः किया गया। इसे अन्तश्चेतना का यर्थार्थवादी साहित्य भी कहा गया है। अस्तु,

डार्विन, मार्क्स और फ्रायड की विचारधाराओं के प्रभाव से विकसित यथार्थवादी साहित्य के प्रचार–प्रसार से रोमांटिक साहित्य का सृजन रूक गया।

जहाँ युगीन वातावरण में अनुकूल साहित्य की संरचना में परिवर्तन होना अनिवार्य है, वहाँ प्रकृति विशेष की अतिशयता भी उसके लिए उत्तरदायी है। एफ० एल० लुकास के शब्दों में– 'जिस प्रकार मदिरा का एक चषक मनुष्य की विचार शक्ति या प्रतिभा और पर्यवेक्षण शक्ति को तीव्र बनाकर शरीर में स्फूर्ति का संचार कर सकता है, किन्तु उसके एक दर्जन गिलास का पान उसकी शक्ति को गिरा देता है। उसी प्रकार रोमांटिक प्रवृत्तियों का आनुपातिक प्रयोग साहित्य के लिए स्वास्थ्यकर था तो उनका अतिरेक हानिकर और प्रभावहीन बनाने वाला था। वास्तव में रोमांटिसिज्म का ह्रास या पतन इसी बात का साक्षी है।'[48]

जिस प्रकार यूरोप का क्लासिक युग अपने शस्त्रीय अतिरेक के कारण अनुपयोगी होकर स्पन्दनहीन हो गया था, उसी प्रकार रोमांटिक युग की कल्पना और भावना के अतिरेक ने अव्यवस्था को जन्म दिया और रोमांटिक साहित्य जीवन निरपेक्ष हो गया। यह यथार्थ जीवन और वस्तु जगत से बहुत दूर जा पड़ा। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अन्य वादों की भाँति रोमांटिसिज्म (स्वच्छन्दतावाद) भी अपने अतिरेकी, विकृत एवं अस्वस्थ रूप तथा प्रतिकूल युगीन परिस्थितियों के कारण टिका न रह सका।

## रोमांटिसिज्म की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

सामान्य रूप से देखा जाता है कि साहित्य के क्षेत्र में कोई भी वाद या सम्प्रदाय हमेशा के लिए टिका नहीं रह सकता। किसी सम्प्रदाय या वाद का निर्माण होता है, उसका उत्कर्ष काल आता है, फिर उसका विरोध शुरू होता है और एक नये साहित्यिक वाद का जन्म होता है। नया सम्प्रदाय पहले के विरोध में जन्म लेता है, किन्तु वह उसकी प्रवृत्तियों या विशेषताओं से अपने को पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाता। कई विरोधी साहित्यिक सम्प्रदाय या वाद एक ही समय प्रचलित रहते हैं। प्रत्येक वाद की कोई न कोई प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में अन्य वादों में भी विद्यमान रहती है। इस तरह किसी वाद को दूसरे वाद से पूरी तरह पृथक् नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में यह जरूरी हो जाता है कि अन्य वादों की भी प्रवृत्तियों से अवगत हुआ जाय।

## स्वच्छन्दतावाद और अन्य वाद

स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) को सही रूप में समझने के लिए अन्य वादों से उसकी भिन्नता और समानता पर विचार करना आवश्यक है। शास्त्रीयतावाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, प्रतीकवाद तथा रहस्यवाद आदि वादों (सिद्धान्तों) से स्वच्छन्दतावाद की तुलना करने पर इसकी मुख्य प्रवृत्तियों से अवगत हुआ जा सकता है।

## स्वच्छन्दतावाद और शास्त्रीयतावाद

ऐसा माना जाता है कि शास्त्रीयतावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छन्दतावाद का उदय हुआ। स्थूल रूप से शास्त्रीयतावाद (Classicism) शब्द का प्रयोग कला और साहित्य की कुछ साधारण विशेषताओं ,जैसे–सरलता, नियंत्रण एवं क्रमबद्धता को संक्षिप्त रूप से अभिव्यक्त करने के लिये होता है। डॉ0 देवराज उपाध्याय के शब्दों में–'क्लासिक शब्द का अर्थ है–सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय, गंभीरतम अर्थात् ऐसी वस्तु जिसकी समता संसार की कोई वस्तु न कर सके। × × × × × जब हम क्लासिक शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा मतलब एक ऐसे काव्य से होता है जो अपनी महानता, ऊँचाई और गौरव में संसार के अन्य काव्यों को पीछे छोड जाता हो। × × × × × भारत में हम लोग कलात्मक, अनुकरणीय आदर्शों के लिए कालिदास, वाल्मीकि और तुलसीदास की ओर देखते हैं। यूरोप में ग्रीक एवं रोमन की श्रेष्ठ रचनाओं को क्लासिकल कहा जाता है, साथ ही साथ उनके आदर्शों को सामने रखकर उनके अनुकरण पर जिस साहित्य का सृजन होने लगा, उसे भी क्लासिकल कहा जाने लगा। इग्लैण्ड में सन् 1660 ई0 से सन् 1798 ई0 तक का साहित्य–सृजन होमर, वर्जिल, हॉरेस और अरस्तू के आदर्शों पर हुआ। अतः इस काल को साहित्य का 'क्लासिकल युग' कहते हैं।'[49]

क्लासिक और रोमांटिक साहित्य का अन्तर करते हुये डॉ0 देवराज उपाध्याय ने लिखा है– 'क्लासिक साहित्य उसे कहते हैं जिसमें ईसा पूर्व पॉचवी शताब्दी के ग्रीक साहित्य से समानता हो। उसी तरह रोमांटिक शब्द उस साहित्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिसमें तेरहवीं शताब्दी ए0 डी0 की रोमन भाषाओं से उत्पन्न साहित्य में समानता पायी जाय। × × × × × यह स्पष्ट है कि दोनों

क्लासिक श्रेणी के साहित्य में जो समानता है. वह आकार प्रकार की है और रोमांटिक श्रेणी की कविताओं में बाहरी परिधान की बात छोड़कर समानता है– आन्तरिक स्पिरिट की।'[50]

स्कॉट जेम्स के अनुसार– 'शास्त्रीयवाद सदा मध्यम मार्ग की खोज में रहता है, वहीं दूसरी ओर रोमांटिक अति की। क्लासिक को शक्ति पसंद है, रोमांटिक को साहसिकता आकर्षित करती है। एक परम्परा की ओर देखता है, दूसरे में नूतनता की चाह होती है। एक पक्ष में वे सब गुण–दोष आ सकते हैं जिनका सम्बन्ध चुस्ती, दुरूस्ती और औचित्य, संतुलन, संयम, गतानुगतिकता, अनुशासन, शान्ति, अनुभव आदि के साथ है। दूसरे के पक्ष में उन गुण और दोषों का समावेश है जो आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, कुतूहल, प्रक्षुब्धता, प्रगति, स्वातंत्र्य, प्रयोगिता और उत्तेजकता की भावनाओं के साथ–साथ चला करते हैं।'[51]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में – 'वह काव्य धारा जो काव्य और कला के व्यक्त सौन्दर्य–प्रसाधनों, सुन्दर शब्दों और आकृतियों आदि का आग्रह करके चलती है, क्लासिज्म की प्रतिनिधि कही जाती है। × × × × × इसी प्रकार जो काव्य धारा अत्यन्त अनियमित पद्धति, संयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमांटिक गति की सूचक है। × × × × × भावना की अराजकता रोमांटिक काव्य का अतिवाद है और बाह्य रूप की सूक्ष्मातिसूक्ष्म पाबंदी क्लासिकल काव्य का अतिवादी रूप है।'[52]

अस्तु, शास्त्रीयतावाद और स्वच्छन्दतावाद में निम्नलिखित अंतर किये जा सकते हैं –

1. स्वच्छन्दतावादी कवि संवेगों से परिचालित होता है, जबकि शास्त्रीयतावादी बुद्धि–तर्क का सहारा लेता है।
2. शास्त्रीयतावादी सामान्यीकरण पर बल देता है, जबकि स्वच्छन्दतावाद की विशिष्टता है– वैयक्तिकता बोध।
3. शास्त्रीयतावाद में परम्परा के प्रति मोह है, उसके प्रति श्रद्धा है, जबकि स्वच्छन्दतावाद में परम्परा के प्रति विद्रोह है।

4. शास्त्रीयतावादी प्रकृति को स्थूल पदार्थ मानता है, जबकि स्वच्छन्दतावादी प्रकृति में असीम सत्ता के दर्शन करता है, मानव–मन पर उसके गहरे प्रभाव को स्वीकार करता है, उसे कल्पना और अनुभूति का उद्रेक करने वाला स्रोत मानता है।
5. शास्त्रीयतावाद का बल आडम्बरपूर्ण अभिव्यक्ति पर था, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि अपने भावों को सहजता से व्यक्त करने में विश्वास करता है। शास्त्रीयतावादी काव्य अभिधामूलक है, जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य व्यंजनात्मक है।
6. शास्त्रीयतावादी कवि रूप–विधान और शिल्प पर अधिक ध्यान देता था, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि संवेग, भावोद्रेक और कल्पना का सहारा लेता है।
7. शास्त्रीयतावादी काव्य में संयम की प्रधानता है, जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य ने वर्जनाओं को तोड़ा है।
8. शास्त्रीयतावादी कवि जीवन और जगत् को यन्त्रवत् मानता था, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि के लिये जगत् आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण है।
9. शास्त्रीयतावादी कवि की विषय–वस्तु सीमित है, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवि की विषयवस्तु असीम है।
10. शास्त्रीयतावाद कला प्रधान है, जबकि स्वच्छन्दतावाद भाव प्रधान है।

## स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद

यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध में उन साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाता है, जो वास्तविक जीवन की अनुकृति से निर्मित होती हैं और जो अपनी विषय–वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती हैं। यथार्थवादी लेखक वह होता है जो वस्तून्मुखी दृष्टिकोण धारण करता है और अपनी रचना में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों को सन्निविष्ट न करके अपनी विषय–वस्तु का निर्वाह छाया–विवरणात्मक अथवा हीन शैली में धारण करता है। एच0 लेविन के अनुसार– 'साहित्य में यथार्थवाद उस पद्धति को कहते हैं जिसका उद्‌देश्य जीवन में सभी वस्तुओं का पूर्ण निष्ठामय चित्रण एवं प्रकृति का प्रस्तुतीकरण है। यह प्रवृत्ति सौन्दर्य के लिए वास्तविकता के

आदर्शीकरण को, अभिव्यंजना के शैलीकरण को और आध्यात्मिक और अतिप्राकृतिक विषय वस्तु के निर्वाह को अस्वीकृत करती है।'[53] जार्ज लुकास और हॉवर्ड फास्ट भी यथार्थवादी साहित्य में वास्तविकता के तटस्थ चित्रण को अनिवार्य मानते हैं। जिस प्रकार स्वच्छन्दतावाद शास्त्रीय पद्धति के बंधन की अतिशयता के विरोध में विकसित हुआ था, उसी प्रकार यथार्थवाद स्वच्छन्दतावाद की अतिशय कल्पनाशीलता के विरुद्ध उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्य और कला में विकसित मनोवृत्ति थी।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में– 'उन्नीसवीं शताब्दी में, विशेषकर फ्रांस के कलाकारों ने रोमांटिसिज्म की कल्पनाशीलता के विरुद्ध यथार्थ और वास्तविकता की पुकार उठायी और कथा साहित्य के अन्तर्गत यथार्थवाद, तथ्यवाद और प्रकृतवाद का प्रवेश कराया।'[54]

किन्तु व्यापक अर्थों में यथार्थवाद केवल रोमांटिक कल्पना के विरुद्ध ही नहीं, अपितु उस युग की और भी अनेक प्रवृत्तियों के विरुद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया थी। पूँजीवादी व्यवस्था के भयंकर परिणाम, वैज्ञानिक दृष्टि और डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने रोमांटिक भावधारा को गहरा धक्का दिया। मनुष्य की दृष्टि में कल्पना अथवा भावना की अपेक्षा वस्तु–जगत का अधिक महत्व हो गया। यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के इसी प्रकृतिवादी दृष्टिकोण से यथार्थवाद का आरम्भ होता है, जिसने आगे चलकर मार्क्स के समाजवाद और फ्रायड के मनोविज्ञान के प्रभावों को भी ग्रहण कर विभिन्न रूप धारण किये।[55]

कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित होकर डार्विन के विचारों से उद्भूत प्रकृतिवाद के स्थान पर समाजवाद–यथार्थवाद की स्थापना हुई, जो प्रकृतिवाद की अपेक्षा समाज के लिए कही अधिक उपयोगी था। मार्क्सवाद द्वारा समाज के ऐतिहासिक विकास और उसकी वर्तमान स्थिति पर वैज्ञानिक प्रकाश पड़ा। इसमें भौतिकवादी जीवन दर्शन की प्रधानता थी, वस्तु–जगत (विशेषकर आर्थिक) को सर्वाधिक महत्व दिया गया और दृश्यमान बाह्य जगत को प्रधान स्थान। हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का आविर्भाव मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य में हुआ।

जहाँ तक स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद में अन्तर का प्रश्न है, प्रथम, कल्पना और भावजगत को महत्व देता है, तो द्वितीय दृष्टिगोचर एवं अनुभवजन्य जगत को। प्रथम का उद्देश्य मानसिक और भावात्मक है, दूसरे का उद्देश्य भौतिक एवं व्यावहारिक। स्वच्छन्दतावादी साहित्य शुद्ध कलात्मक है,

यथार्थवादी साहित्य उपयोगिता प्रधान। स्वच्छन्दतावादी अपने विषयों का चुनाव असामान्य, असाधारण और अलौकिक वस्तुओं में से करता है, यथार्थवादी सामान्य और साधारण को अपनाकर चलता है। स्वच्छन्दतावादी का दृष्टिकोण आत्मगत होता है, यथार्थवादी का समाजगत। स्वच्छन्दतावादी का सत्य काल्पनिक और काव्य का सत्य है और यथार्थवादी का ठोस भौतिकवादी। डॉ0 भगीरथ मिश्र के शब्दों में– 'वह धारणा जिससे प्रेरित होकर साहित्यकार नित्य–प्रति, देखे–सुने, भले–बुरे चरित्रों और परिस्थितियों का चित्रण करता है। वह अनिवार्यतः यह ध्यान नहीं रखता कि ये चरित्र या परिस्थितियाँ मानव समाज की भलाई करेंगी या बुराई, साहित्य में यथार्थवाद कहलाती हैं।[56] भाषा और शैली के सम्बन्ध में दोनों ही स्वच्छन्द हैं। किन्तु स्वच्छन्दतावादी की भाषा में सौजन्य, औदात्य, सौष्ठव एवं सौन्दर्य होता है, जबकि यथार्थवादी संरचना की भाषा शैली प्रायः विचार प्रधान, नीरस और शुष्क होती है। प्रकृति से अत्यधिक प्रेम होने के कारण स्वच्छन्दतावादी प्रायः ग्रामीण जीवन को प्रधानता देता है, जबकि यथार्थवादी साहित्य में नागरिक जीवन तथा उसमें श्रमिक वर्ग और उनकी समस्याओं के चित्रण द्वारा दलितों और शोषितों के प्रति विशेष सहानुभूति व्यक्त की जाती है । ग्रामीण जीवन के भी यही पक्ष यथार्थवादी साहित्य में आते हैं।

## स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद

जीवन की श्रेष्ठ संभावनाओं की कल्पना आदर्शवाद है। आदर्श का स्वरूप–निर्माण देश काल की परिस्थितियों के अनुसार होता है। युग सत्य के अनुकूल सत् की प्रतिष्ठा और असत् की पराजय संकेतित करना आदर्शवादी कवियों का प्रधान उद्देश्य होता है। अपने जीवन की वर्तमान स्थिति और आस–पास के वातावरण से ऊबकर मनुष्य ने अपने जीवन के सुन्दर, सुखद और श्रेष्ठ रूप की कल्पना की, तभी आदर्श का जन्म हुआ। साहित्य में आदर्शवाद की निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती हैं–

1. मनोनुकूल भविष्य की कल्पना एवं जीवन को परिचालित करने वाली किसी अलौकिक शक्ति के प्रति आकर्षण ।
2. समाज में प्रचलित मान्यताओं का समन्वय एवं जीवन के पूर्णत्व का सन्देश।
3. स्वस्थ जीवन–निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन और प्रचार।

4. नैतिक बल और चारित्रिक दृढ़ता के विकास की भावना।
5. जीवन पथ–दर्शन का आग्रह और तदनुकूल उपदेशात्मकता और नीतिमत्ता।

स्वच्छन्दतावाद और आदर्शवाद की तुलना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों में कल्पना का प्राधान्य है और दोनों का अलौकिक शक्ति के प्रति आकर्षण है, किन्तु अन्य प्रवृत्तियाँ दोनों वादों में एक सी नहीं है। आदर्शवाद समाज में प्रचलित मान्यताओं में समन्वय कराने का प्रयत्न करता है, जबकि स्वच्छन्दतावाद रूढियों का तीव्र विरोधी है। स्वच्छन्दतावाद में नैतिकता, चारित्रिक दृढ़ता और उपदेशात्मकता का नितान्त अभाव रहता है। आदर्शवाद मुख्यतः उपयोगितावादी है। स्वच्छन्दतावाद 'कला कला के लिए' सिद्धांत का पक्षधर होने के कारण शुद्ध आनन्दवादी है।

## स्वच्छन्दतावाद और प्रतीकवाद

प्रस्तुत कथ्य को समर्थ अभिव्यंजना देने के अभिप्राय से जब किसी समानधर्मी अथवा समानरूपी स्थूल अथवा सूक्ष्म, अप्रस्तुत से जो कथ्य नहीं होता, अभिहित किया जाता है। इस अप्रस्तुत को प्रतीक और समूची अभिव्यक्ति को प्रतीक योजना कहते हैं और ऐसी सांकेतिक अभिव्यंजना की विचारधारा को प्रतीकवाद के नाम से जाना–समझा जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस और बेल्जियम में यथार्थवाद, प्रकृतिवाद की प्रतिक्रिया में प्रतीकवाद का आन्दोलन प्रारंभ हुआ। अतः विभिन्न देशों के साहित्य में विविध प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल ने काव्य में प्रयुक्त समस्त प्रतीकों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है–परम्परानुगत, देशगत, व्यक्तिगत, युगगत।[57] रहस्यात्मकता की भाँति प्रतीक–योजना भी स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्ति विशेष है।

## स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद

सृष्टि के अणु–अणु में व्याप्त किसी रहस्यमयी शक्ति की अनुभूति और उस परोक्ष सत्ता को जानने–समझने की आतुरता रहस्यवाद का मूल तत्व है। रहस्यवादी काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. ज्ञात–अज्ञात प्रकृति की नियामक सत्ता के प्रति जिज्ञासा।
2. प्राकृतिक रहस्य–सौन्दर्य के प्रति विमुग्ध आकर्षण और उसमें अन्तर्निहित परोक्ष सत्ता के प्रति माधुर्य भावना।

3. प्रेम की पीर और प्रियतम की अनिर्वचनीयता।

4. दार्शनिकता और प्रतीकात्मकता।

इस प्रकार रहस्यवाद का सम्बन्ध अध्यात्म जगत से है। इसकी चिन्तन प्रणाली में ब्रह्म का अनवरत ध्यान, उसी को समस्त सृष्टि में व्याप्त पाने की भावना का ग्रहण प्रधान है।[58]

स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद में कोई विरोध नहीं है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में रहस्यात्मकता की सृष्टि प्रभूत मात्रा में होती है। दोनों में अन्तर यही है कि रहस्यवादी काव्य में रहस्यानुभूति की व्यंजना प्रमुख रूप से होती है, जबकि स्वच्छन्दतावादी रचनाकारों की यह प्रवृत्ति विशेष है। स्वच्छन्दतावाद में रहस्यवाद के अतिरिक्त और भी बहुत सी विशेषताएं हैं।

## स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) की विशेषताएँ

रोमांटिसिज्म के बारे में आर्थर कॉम्पटन रिकेट (A.C. Ricket) ने 'अंग्रेजी साहित्य के इतिहास' में लिखा है– 'रोमांटिसिज्म सामान्यतः तीव्रतर जानकारी है। उच्च काल्पनिक भावना का कला या साहित्य के क्षेत्र में एक स्पष्टीकरण है। रोमांटिसिज्म का प्रभाव दर्शन, इतिहास तथा साहित्य के विभिन्न अंगों पर दिखाई देता है। उसका 'स्वच्छन्द' के रूप में लगाया हुआ अर्थ गुण की अपेक्षा दोष का ही अधिक प्रदर्शन करता है। अमर्यादित्व और चैतन्य के पर्यायवाची के रूप में भी इसका कई बार प्रयोग किया जाता है। रोमांटिसिज्म का आवश्यक तत्व औत्सुक्य और सौन्दर्य–प्रेम ही है। उसके परिणाम का सुप्त उद्‌गम मध्ययुग के अदभुत सौन्दर्य तथा विविध वस्तुओं से सम्बन्धित निश्चित कल्पना में पाया जाता है।[59] इस विवेचन से सिद्ध होता है कि औत्सुक्य और अद्‌भुद सौन्दर्य दोनों को रोमांटिसिज्म के अन्तर्गत महत्वपूर्ण माना जाता है।

वेर्सफील्ड के अनुसार–'रोमांटिक प्रवृत्ति यह है कि रचना में समसामयिक जीवन की यथार्थता को व्यक्त किया जाय और ऐसा करने में यदि प्राचीन मान्यतायें खण्डित होती हैं तो उनकी चिन्ता न की जाय। जो लेखक रोमांटिक पद्धति का अनुसरण करते हैं उनकी वृत्तियों में हम कुछ–कुछ नवीन पाने की आशा करते हैं। यह नवीनता मानव जाति के क्रमिक विकास का कारण और परिणाम दोनों ही होती है

और इसी के कारण साहित्य मानव जाति का एक अंग बन सका है।'[60] अर्थात् कोई भी साहित्यिक रचना आसमान से नीचे नहीं गिरती। उसे मानव जीवन को ही केन्द्र बिन्दु मानकर आगे बढना होता है।

डॉ0 प्रेम नारायण शुक्ल हिन्दी के रहस्यवादी एवं छायावादी काव्य की रोमांटिक काल की अधिकांश प्रवृत्तियों से साम्य स्थापित करते हुए कहते हैं– 'नवीन छन्दों का विन्यास, प्रकृति प्रियता, ग्रामीण जीवन की झॉकी, यथार्थ की अपेक्षा काल्पनिक चित्रों का विधान, मनोवैज्ञानिकता, अतिशय भावुकता और प्राचीनता के प्रति विद्रोह आदि ऐसी कुछ बातें हैं, जो हिन्दी के रोमांटिक काव्य के स्वरूप का विधान करती हैं।'[61] तात्पर्य यह है कि नवीनता की कामना और विद्रोह की भावना रोमांटिक काव्य की निजी विशेषताएं हैं।

मराठी समीक्षक के0 क्षीरसागर के मतानुसार 'रोमांटिक शब्द का रूपान्तरण एक ही शब्द में करना असंभव है। मूल अंग्रेजी संज्ञा में जिन लक्षणों का अन्तर्भाव होता है उनको लेकर भिन्न–भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। सौन्दर्यवाद, स्वातन्त्र्यवाद, नवीन्यवाद, अद्‌भुततावाद, भावनावाद–इनमें से प्रत्येक शब्द में रोमांटिसिज्म का एक–एक लक्षण अंतर्भूत हुआ है। 'सौन्दर्य में अद्‌भुतता का निवास' ऐसा रोमांटिसिज्म का एक लक्षण बताया गया है, बल्कि अद्‌भुतता और सौन्दर्य इन दोनों का अन्तर्भाव रोमांटिक भूमिका में होता है, ऐसा नहीं। इसका मुख्य कारण रोमांटिसिज्म एक शैली या संग्राम नहीं है। रोमांटिसिज्म जीवन की ओर देखने की एक मूलभूत दृष्टि है या अनुभव लेने का एक मार्ग है। रोमांटिक वृत्ति के व्यक्ति में सौन्दर्य से पुलकित होने की शक्ति अन्यों से अधिक मात्रा में दिखाई देती है और साथ ही साथ अद्‌भुतता के प्रति प्रेम भी रोमांटिक वृत्ति के व्यक्ति की एक विशेषता माननी होगी।'[62] इससे स्पष्ट है कि यह एक तीव्रतम जीवनानुभूति होती है, जिसमें प्रेम का अनन्य और असाधारण महत्व होता है। रोमांटिसिज्म की मूल प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुये के0 क्षीरसागर ने अपने मत की पुष्टि करते हुए कहा है –'स्वप्निल वृत्ति और संवेदना–पूजन रोमांटिक लोगों की सही विशेषताएं नहीं हैं तो उनकी सामर्थ्य उनकी लगन (Vearning) और भावनात्मक ईमानदारी (Sencerity) में है।'[63] ये दो गुण इस प्रवृत्ति के मानो दो त्राण हैं। इनके अभाव में रोमांटिक साहित्य का कोई मूल्य नहीं है।

'रीडर्स इनसाइक्लोपीडिया' के अनुसार स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषतायें हैं –व्यक्तिवादिता, प्रकृति–पूजा, स्वतन्त्र विचार और धार्मिक रहस्यवाद की ओर प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति, राजनीतिक सत्ता और सामाजिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह, शारीरिक वासनाओं का उन्नयन, स्वान्तः सुखाय, भावनाओं और उत्तेजनाओं को प्रोत्साहन तथा अलौकिक, दूषित, एकान्तिक और निर्दय के प्रति अविरल आकर्षण।'[64]

'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिकाना' में रोमांटिसिज्म की कुछ और विशेषताओं की ओर सकेत किया गया है– 'चूँकि स्वच्छन्दतावाद, भावात्मक जीवन में जो कुछ विचित्र और रहस्यात्मक है उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, वह स्वभावतः अपनी सामग्री का आधार अतीत में खोजता है और विशेषतया उस मध्य युग से सहानुभूति रखता है, जबकि भावनागत लालसायें शौर्य या साहसिकता के प्रति प्रेम और रहस्यात्मक बोध की अभिव्यक्ति करती थीं। × × × × × अतः अतीत के प्रति सहानुभूति और मानवता के प्रति नवीन रूचि रोमांटिसिज्म के चिन्ह हैं।[65]

एफ0 एल0 लुकास, बैविट, अर्नेस्ट वार्नबाम आदि पाश्चात्य विद्वानों ने रोमांटिक कविता को 'कल्पना प्रधान' कहा है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी भी स्वच्छन्दतावादी काव्य में कल्पना की प्रधानता स्वीकार करते हैं।[66]

डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित के शब्दों में– 'नव्य श्रेणिक काव्य की परम्परा का विरोध, प्रकृति–चित्रण, आदर्शात्मक विद्रोह, सौन्दर्यवाद, मद, अवसाद, अलौकिक तत्व तथा अतीत का काल्पनिक मनोरम चित्रण अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।'[67]

डॉ0 अजब सिंह के अनुसार 'स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति कवि की कल्पना, अनुभूति, व्यक्तिवाद, मानवतावाद, सौन्दर्य प्रेम, उदात्त तत्व, विस्मय और रहस्यानुभूति, विषाद और असन्तोष, विद्रोह और नवीनता, लोक साहित्य और लोकगीत, अतीत प्रेम (विशेषकर मध्ययुग), प्रकृति प्रेम, मानवीकरण, बिम्ब–विधान, प्रतीक–योजना और संगीतात्मकता आदि विविध रूपों में हुई है।'[68]

डॉ0 शिवराम माली लिखते हैं कि 'स्वच्छन्दतावादी कलाकार अपने एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर उस दृष्टिकोण के अनुसार कलाकृतियों को जन्म देता है। इन कलाकृतियों में अद्भुतरम्यता, स्वप्न

रंजन, कलात्मकता, कल्पना शक्ति का प्रस्फुटीकरण और सौन्दर्यवृत्ति का उत्कट आविष्कार उमड पड़ता है।'[69]

डॉ0 गंगाचरण त्रिपाठी ने अपने 'काव्य तत्व' नामक ग्रंथ में 'सौन्दर्यवाद, विद्रोह की प्रवृत्ति अथवा प्रतिक्रियात्मकता, सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति, मानवतावाद, निराशावाद, रहस्यवाद, अतीत का गुणगान, कल्पना प्राधान्य, व्यक्तिवाद अथवा व्यक्तित्व का प्राधान्य, प्रकृति प्रेम, आंतरिक प्रेरणा का महत्व, गतिशीलता की स्वीकृति आदि को स्वच्छन्दतावादी विशेषताओं के अन्तर्गत समाहित किया है।'[70]

डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त ने अंग्रेजी काव्य की स्वच्छन्दतावादी धारा की विशेषताओं को दर्शाते हुए 'विद्रोह की प्रवृत्ति, कृत्रितमा से मुक्ति, मध्य युग का प्रत्यावर्तन, कल्पना का प्राधान्य, अद्‌भुत तत्व, व्यक्तिवाद, सौन्दर्य–दृष्टि और ऐन्द्रियता तथा प्रकृति–प्रेम की प्रवृत्ति को गिनाया है।'[71]

**निष्कर्षतः स्वच्छन्दतावादी साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –**

## रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह

स्वच्छन्दतावादी साहित्य का निर्माण ही शास्त्रीयतावाद के विरोध में हुआ। स्वच्छन्दतावादी काव्य में नीति, धर्म, साहित्यिक परम्पराओं और शास्त्रीयता के विरुद्ध विद्रोह का भाव मिलता है। स्वच्छन्दतावादी कवि किसी प्रकार के पूर्व निर्धारित काव्य नियमों से आबद्ध न रहकर अपनी निजी भावनाओं और अनुभूतियों के अनुरूप काव्य रचना करता है।

## सौन्दर्यवादी दृष्टि

स्वच्छन्दतावाद में सौन्दर्य–प्रेम और सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा– ये दो मुख्य तत्व हैं। स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार की दृष्टि में सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य है। उनके काव्य में सौन्दर्य भावना सर्वत्र मिलती है। वर्ड्‌सवर्थ की कविता में जहाँ सौन्दर्य की सूक्ष्म व अपार्थिव व्यंजना हुई है, वहाँ कीट्‌स की कविता में रंगीनी, यौवन व उल्लास के लिए ऐन्द्रिय चित्रण की प्रधानता है। शेली संपूर्ण प्रकृति को सौन्दर्यमयी पाता है।

## व्यक्तिपरकता

आधुनिक साहित्य में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। इसमें साहित्यकार का संपूर्ण व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है। ऐसी कविता समाजगत कम और व्यक्तिगत अधिक होती है। इसमें कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों का प्राधान्य रहता है। प्रबन्ध काव्य में यदि नायक आत्म–केन्द्रित व्यक्ति होता है तो गीतिकाव्य में कवि अपनी उदासी, निराशा, वेदना, व्यथा आदि का चित्रण करता है। काव्य में विवेक के स्थान पर संवेग, भावुकता, आकांक्षा, आदर्शमयता होती है। वह अरूप की भावना में रमता है और स्थूल से अधिक सूक्ष्म को महत्व देता है। उसमें गहन अनुभूति होती है और उसकी यह तीव्र अनुभूति ही उसे काव्य–सृजन की प्रेरणा देती है। इसी व्यक्तिवाद के प्राधान्य के कारण कवि अपने ही भावोन्माद में लिप्त रहता है, जिसकी अतिशयता से क्षुब्ध हो गेटे ने रोमांटिसिज्म को रोग कहा था (Romanticism was diseased)।

## प्रकृति–प्रेम

स्वच्छन्दतावादी कवि का प्रकृति से विशेष अनुराग रहा है। प्रकृति–प्रेम के कारण कई साहित्यकारों को नयी प्रेरणा मिल चुकी है। उसके प्रकृति–चित्रण में अत्मीयता होती है। उसमें अभिधात्मकता के स्थान पर व्यंजनात्मकता अधिक रहती है। स्वच्छन्दतावादी कवि ने प्रकृति के मुक्त प्रांगण में स्वच्छंद विहार किया। रूसो ने मानव को प्रकृति की ओर लौटने के लिए पुकारा था। स्वच्छन्दतावादी साहित्यकारों में प्रकृति के प्रति आकर्षण अनेक रूपों में व्यक्त हुआ है। सबसे पहले यह बनावटी सौन्दर्य के तिरस्कार और सहज प्राकृतिक रूपों के प्रति आकर्षण में दिखाई देता है। औद्योगिक सभ्यता की विकृतियों तथा घुटन से व्याकुल इन संवेदनशील साहित्यकारों के लिए प्रकृति एक शरण स्थली थी। उसे उन्होंने बाह्य जीवन के सुंदर परिवेश के रूप में ही नहीं बल्कि जीवन के प्रेरणादायक तत्व के रूप में देखा। प्रकृति के आध्यात्मिक प्रभाव को भी इन्होंने महसूस किया। वर्ड्सवर्थ ने अपनी कविता 'टिंटर्न एबे' में प्रकृति को धात्री, पथ प्रदर्शिका, संरक्षिका तथा अपने संपूर्ण नैतिक अस्तित्व की आत्मा के रूप में संबोधित किया है। प्रकृति के साथ इन रचनाकारों का सम्बन्ध रहस्यवाद तक पहुँचता है, जब वे इसके माध्यम से अपने अन्तर्जगत की पहचान करते हैं या चरम सत्ता का साक्षात्कार करते हैं।

प्रकृति मे ये अपने भावों का प्रतिबिंब भी देखते हैं और उसके रूपो तथा बिम्बों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को समृद्ध भी करते हैं।

## काल्पनिक व्यामोह

कल्पना को स्वच्छन्दतावाद में बहुत महत्व मिला। स्वच्छन्दातावादी इस कटु–कठोर जगत से दूर रहना चाहता है, नवीन और अनुपम के प्रति आकृष्ट होता है। वह वास्तविकता से पलायन कर कल्पना–लोक में विचरण करना चाहता है। सभी अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में कल्पना का प्राधान्य होता है। वे जब कभी बाह्य, स्थूल जगत् या विचार–जगत के किसी पदार्थ के संपर्क में आते हैं, उनकी कल्पना उन्हें दूसरे लोक में ले जाती है। वे इस जगत को छोड़ किसी अद्‌भुत ऐन्द्रिय–जगत् में विचरण करने लगते हैं। कॉलरिज ने सिद्धान्त के स्तर पर कल्पना का विस्तृत विवेचन किया और सामान्य व्यक्ति की कल्पना से बढ़कर कवि–कल्पना की महत्ता स्थापित की। कल्पना ने इस युग की रचनाओं में भाषा तथा भाव के सौन्दर्य का आधान किया। किन्तु कहीं–कहीं यह जीवन और जगत के दुखों से हारे मन के पलायन का माध्यम भी बनी।

## मध्ययुगीन आकर्षण एवं अद्‌भुत तत्व

स्वच्छन्दतावादी साहित्यकारों में मध्ययुगीन गीतों, गाथाओं एवं रोमानी कथाओं में जबर्दस्त आकर्षण मिलता है। कल्पना का सहारा लेकर उन्होंने उस युग की चित्रमयता तथा रोमान को सजीव किया। कॉलरिज और कीट्स की कविता तथा स्कॉट के उपन्यासों में मध्ययुग का यह प्रत्यावर्तन सबसे अधिक प्रबल रूप में दिखाई देता है।

मध्ययुगीन रोमान के प्रति आकर्षण अद्‌भुत तत्व के प्रति स्वच्छन्दतावादियों की रूचि से भी पुष्ट हुआ। वाल्टर पेटर ने स्वच्छन्दतावाद की एक विशेषता यह मानी है कि यह 'सौन्दर्य में अद्‌भुत तत्व जोड़ता है' (Addition of strangeness to beauty)। वाट्स डण्टन ने इस प्रवृत्ति को अद्‌भुत का पुनर्जागरण (Renaisance of wonder) कहा है। अद्‌भुत तत्व के प्रति यह आकर्षण कई रूपों में व्यक्त हुआ। अपने तीव्रतम रूप में यह अतिमानवीय या अलौकिक (Supernatural) तत्वों की चर्चा में दिखाई देता है–विशेषकर कॉलरिज तथा स्कॉट की रचनाओं में । अन्य रचनाकारों में यह सामान्यतः कुतूहल,

विस्मय तथा रहस्य के भाव में व्यक्त हुआ। इससे प्रेरित होकर उन्होंने जाने–पहचाने जीवन संदर्भों तथा वस्तुओं को नयी दृष्टि से देखना आरंभ किया।

## भाषा–शैली तथा छंद की स्वतन्त्रता

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति को महत्व दिया। उनका स्वच्छन्दतावाद भाषा–शैली सम्बन्धी सिद्धांतों में भी अभिव्यक्त होता है। हालांकि इस दौर के रचनाकारों में भाव, भाषा तथा शिल्प का अपार वैविध्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु एक बिन्दु पर सभी सहमत थे। सभी सायास शिल्प और बाह्य अलंकरण के विरोधी थे। वे मानव के नैसर्गिक मूल भावों का चित्रण सहज तथा आडम्बरहीन भाषा–शैली में करने के पक्षधर थे। वर्ड्सवर्थ ने तो आम बोलचाल की भाषा को ही काव्य भाषा के रूप में स्वीकार करने का आग्रह किया।[72] इस अतिवाद को न स्वीकार करते हुए भी अन्य रचनाकारों ने काव्यास्वाद तथा भाव–संप्रेषण के लिये सहज, बनावट रहित भाषा की आवश्यकता को स्वीकारा।

भाषा की सहजता का तात्पर्य भावों या अभिव्यक्ति की सपाटता से नहीं है। सभी स्वच्छन्दतावादी रचनाकारों ने सूक्ष्म अर्थच्छायाओं को उद्‌घाटित करने के लिये भाषा और ध्वनि के संगीत का सुन्दर उपयोग किया है। सपाट गद्यात्मक कथन के स्थान पर वे सूक्ष्म व्यंजना तथा सांकेतिकता के महत्व पर बल देते थे, जिससे काव्य में रहस्यात्मक सौन्दर्य और दार्शनिकता के साथ–साथ उसकी अभिव्यंजना शक्ति भी बढ़ जाती है।

छंद के संदर्भ में भी इस युग के कवि का स्वातन्त्र्य–भाव स्पष्ट होता है। पिछले युग के सधे–बँधे, अनुशासित, तुकांत, हीरोइक कपलेट के स्थान पर इन्होंने कोमल मधुर गीति (लिरिक) या फिर मुक्त छंद (ब्लैक वर्स) को अपनाया और उसकी अपार क्षमता को उद्‌घाटित किया। अपने मिज़ाज के अनुसार ही स्वच्छन्दतावादियों ने अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया।

# संदर्भ एवं टिप्पणियाँ


1. डब्ल्यू0 डी0 एलोक (W. D. Elock-) – The Roman Language, Page-17-18
2. एफ0 एल0 लुकास (F. L. Lucas) – The Decline and fall of the Romantic Ideal, Page-16-17
3. Webester's New Twentieth Century Dictionary of English Language.
4. हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग) – संपादक–डा0 धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ –188
5. डॉ0 जगदीश गुप्त – स्वच्छन्दतावादी काव्य की दार्शनिक विवेचना, पृष्ठ–4
6. विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) – '(Romanticism is) liberalism in Literature.'
7. वाट्स डंटन (Watts Dunton) – 'The Renaisance of the feeling of wonder in poetry and art.' (A. C. Ricket – A History of English Literature from earliest time to 1916), Page-239
8. एल0 एबरक्रोम्बी (L. Abercrombie) – Romanticism, Page-22
9. पेटर्स एसेज – संपादक–एम0 एम0 सक्सेना, पृष्ठ–96
10. एफ0 एल0 लुकास – The Decline and fall of the Romantic Ideal, Page-36
11. प्रो0 कजामियाँ (Pro. Cazamian) – A History of English Literature, Page-997
12. ए0 सी0 रिकेट – A History of English Literature from earliest time to 1916), Page-92
13. इरविंग वैबिट – Rousseau and Romanticism, Page-354
14. सी0 एच0 हरफोर्ड – The Age of Wordsworth, Page-14
15. डॉ0 हेज (Dr. Hadge) – 'The essence of Romanticism is inspiration.'
16. स्टडार्ड (Stoddard) – 'Romanticism is its noblest expression is a departure from law, fact, from harmony, from perspective in quest of new fact, a new harmony, a new perspective.'

17. हरबर्ट ग्रियर्सन – The background of English Literature, Page-225

18. जार्ज सेंट्सबरी – A Histrory of English Criticism, Page-415

19. New Standard Dictionary of English Literature (Vall-3), Page-2129

20. Webester's New International Dictionary of the English Language (Vall-2), Page-2164

21. The shorter Oxford English Dictionary (Vall-2), Page-1750

22. Dictionary of world Literature - संपादक–जे0 टी0 शिप्ले, पृष्ठ– 352

23. 'We hold these truths to be self evident : that all men are created equal, that they are endowed by their creater with certain unalienable rights, that among these are life, liberty and pursuit of happiness...........'
(उद्धृत–जैन एवं माथुर–विश्व इतिहास–1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ– 204

24. जैन एवं माथुर – विश्व इतिहास (1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ–204

25. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ– 5–6

26. पं0 जवाहर लाल नेहरू – The Glimpses of world History, Page-338

27. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–6

28. जार्ज एलन – French Revolution (Part-1), Page-22

29. जैन एवं माथुर–विश्व इतिहास (1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ– 228

30. 'Bliss it was in that dawn to be alive
But to be young was very heaven.'
–(Wordsworth – The Prelude)

31. डॉ0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –412

32. जैन एवं माथुर–विश्व इतिहास (1500 ई0–1950 ई0), पृष्ठ–326

33. डॉ0 फूल बिहारी शर्मा–हिन्दी की स्वच्छन्द समीक्षा, पृष्ठ–37

34. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–23

35. एल0 कजामियाँ – ए हिस्ट्री ऑफ फ्रेंच लिटरेचर, पृष्ठ–311

36. डॉ0 प्रेमशंकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –25–26

37. वही, पृष्ठ–41

38. 'The principal object proposed in these poems was to choose incidents and situations from common life, and to relate or describe them through out, as far as this was possible in a selection of language really used by men, and at the same time to throw over them a certain colouring of a imagination, whereby ordinary things should be presented to the mind in an unusal aspect.'

– Wordsworth : Preface to the second Edition of Lyrical Ballads.

(The Political works of Wordsworth, Page-935)

39. 'I should much wish, like the Indian Vishnu to float about along an infinite ocean, cradled in the flower of the lotus, and wake once in a million years for a few minutes just to know that I was going to sleep a million years more.

- Coleridge

40. 'Dreems with me are no shadows but the very substances and foot-thick calamities of my life.' - Coleridge

41. 'But is Ancient Mariner, that invaluable example egotistic is it not, on the contrary a sermon against egotism.'

- F.L. Lucas – The Decline and fall of the Romantic Ideal, Page-20

42. 'I woke up one morning and found my self famous.' - Lord Byron

43. '................the masterpiece, not only among the shorter poems of Keats, but even (if any single master-piece must be choosen among them all).'

- Sidney Colvin

44. 'A thing of beauty is a joy for ever' – John Keats (Endymion)

45. 'I have loved the principle beauty in all things.' - John Keats.

46. प्रो0 बरयाम सिंह – परिशिष्ट–2, अलेक्सांद्र पुश्किन की प्रेम–कविताएं

(ओ, मेरे बसन्त के वर्ष ! – अनुवाद–कुमार कौस्तुभ), पृष्ठ–90–91

47. डॉ0 कमल कुमारी जौहरी–हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृष्ठ–74

48. एफ0 एल0 लुकास – The Decline and fall of Romantic Ideal, Page-102

49. डॉ0 देवराज उपाध्याय – रोमांटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–8

50. वही, पृष्ठ –22

51. आर0 ए0 स्कॉट जेम्स – The Making of the Literature, Page-210-211

52. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ– 440

53. एच0 लेविन – Comperative Literature, Page-284

54. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ– 447

55. डॉ0 कमल कुमारी जौहरी – हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृष्ठ– 75

56. डॉ0 भगीरथ मिश्र – हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ–422

57. डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल – हिन्दी साहित्य में विविध वाद, पृष्ठ–472

58. वही, पृष्ठ–453

59. ए0 सी0 रिकेट – A History of English Literature, Page-292

60. वेर्सफील्ड – साहित्य का मूल्यांकन (अनुवाद–डॉ0 रामचन्द्र तिवारी), पृष्ठ–14

61. डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल – हिन्दी साहित्य में विविध वाद, पृष्ठ–459

62. के0 क्षीरसागर – टीका विवेक, पृष्ठ– 220

63. वही, पृष्ठ–309

64. Readers Encyclopaedia, Page-943

65. Encyclopaedia Americana (Vall-23), Page-655-656

66. डॉ0 देवराज उपाध्याय – रोमांटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–2

67. डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित – आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव, पृष्ठ–181

68. डॉ0 अजब सिंह – आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ–14

69. डॉ0 शिवराम माली – स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान, पृष्ठ–26

70. डॉ0 गंगा चरण त्रिपाठी – काव्य तत्व, पृष्ठ–157

71. डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त – पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृष्ठ–195–199

72. डॉ0 विक्रमादित्य राय–वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज : समीक्षा सिद्धान्त, पृष्ठ–39

# अध्याय-2

# हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण

## अध्याय–2

# हिन्दी स्वच्छन्दतावाद : स्वरूप विश्लेषण

### स्वच्छन्दतावाद : शब्द और आशय

'स्वच्छन्द' शब्द संस्कृत के विशेषण 'स्व' में धातु 'छन्द' के योग से बना है। 'स्व' का अर्थ है–स्वयं की अर्थात् अपनी और 'छन्द' का अर्थ है–इच्छा, इस प्रकार 'स्वच्छन्द' का अर्थ हुआ–स्वयं की इच्छानुसार अथवा स्वतन्त्र रुचि के अनुसार। 'स्वच्छन्द' से ही भावात्मक संज्ञा 'स्वच्छन्दता' रूप निर्मित हुआ। अतः स्वच्छन्दता का सामान्य अर्थ हुआ–स्वाधीनता, स्वतन्त्रता, आजादी।[1]

हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दता (स्वच्छन्दतावाद) शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' (Romanticism) के अर्थ में हुआ है। यह नितान्त भिन्न प्रश्न है कि स्वच्छन्दतावाद शब्द 'रोमांटिसिज्म' का पर्यायवाची शब्द है या नहीं, परन्तु इस शब्द का प्रयोग 'रोमांटिसिज्म' के पर्यायवाची शब्द के रूप में अधिक मात्रा में हुआ है। सर्वप्रथम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'आधुनिक काल : काव्य खण्ड – नयी धारा – द्वितीय उत्थान' के सन्दर्भ में 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द रोमांटिसिज्म के पर्याय के रूप में किया।[2] यह शब्द हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य की समान प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके प्रयोग किया गया है। कुछ ऐसे विद्वान हैं जो 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द का प्रयोग करने पर आपत्ति करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस शब्द को अंग्रेजी शब्द 'रोमांटिसिज्म' के लिये प्रयोग किये जाने पर आपत्ति करते हुए लिखा है–'कुछ विद्वानों ने हिन्दी में इसे स्वच्छन्दतावाद कहा है। परन्तु यह शब्द उस संपूर्ण साहित्य की आत्मा को प्रकट करने में समर्थ नहीं है।'[3] किन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रोमांटिसिज्म के लिए हिन्दी में कोई दूसरा पर्यायवाची शब्द भी नहीं सुझाया है। डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर' ने रोमांटिसिज्म को हिन्दी में 'रोमांसवाद' कहा है।[4] डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने भी इसे 'रोमांसवाद' कहा है। उन्होंने लिखा है– 'हिन्दी में आविर्भूत इस स्वच्छन्दतावाद या रोमांसवाद के मूल तत्व प्रायः वे ही थे जो अंग्रेजी कविता के रोमांसवाद में प्राप्त होते हैं।'[5]

अत्यधिक व्यवहार में आने के कारण रोमांटिसिज्म के हिन्दी अनुवाद में स्वच्छन्दतावाद शब्द स्थिर हो गया है। स्वच्छन्दतावाद को आलोचकों और लेखकों ने रोमांटिसिज्म के अर्थ में ग्रहण कर लिया है और वही अर्थ उसमें ध्वनित होने लगा है।[6]

## हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा

हिन्दी के विद्वानों ने स्वच्छन्दतावाद को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार–'सामाजिक बन्धनों को तोड़कर जीवन में स्वच्छन्द विचरण करने की लालसा ही स्वच्छन्दतावाद है।[7]

डॉ0 जगदीश गुप्त की परिभाषा इस प्रकार हैं–'स्वच्छन्द काव्य धारा अन्तश्चेतना में उमडने वाले अनेक भावस्रोतों का सम्मिलित अविरल उद्याम प्रवाह है जो अव्यक्त प्रेरणा से अव्यक्त की मिलनोत्कंठा में निष्प्रयास कवि–कंठ से फूट पड़ता है, जिसके तीव्र प्रवाह में पड़कर रूढ़ियों और परम्पराओं की भीमशिलाएं पिस–पिसकर बालुका कणों में परिवर्तित हो जाती हैं, नियमों के कास–सिवार बह जाते हैं, छन्दों के कूल टूटने लगते हैं, जो उन्मुक्त प्रकृति के बीच विस्तृत भूखण्ड पर फैले वनों–उपवनों की अभिनव सौन्दर्य–सुषमा को प्रतिबिम्बित एवं जन–जन–मन–रंजन करता हुआ, अनियमित, वक्रगति से प्रवाहमान न जाने किस दिशा की ओर चला जाता है।'[8]

डॉ0 अजब सिंह के शब्दों में– 'स्वच्छन्दतावाद नवीन अनुभूति की भूमि पर पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से विद्रोह कर चेतन प्रकृति तथा लोकजीवन की अनुभूति को वाणी देता है। नये काव्य–रूपों, नयी शैलियों को पल्लवित और पुष्पित करता है। चेतन और अवचेतन, विषय और विषयी, अन्तः और बाह्य, मानव और प्रकृति दो विरोधी तत्वों का समन्वय भी करता है तथा इसकी दुनिया पूरी तरह से नयी होती है।'[9]

डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा के अनुसार– 'हिन्दी स्वच्छन्दतावाद को हम चाहे जिस नाम से क्यों न पुकारें, पर वह कालक्रम में आकस्मिक रूप से प्रकट हो जाने वाला एक काव्यगत आन्दोलन ही नहीं था, प्रत्युत् वह सचेतन मानवता का सहज आस्फालन था। मानवीय चेतना का यह आलोड़न अनेक स्तरों पर एक साथ हुआ था। पश्चिम में खुली आंखों से इन्द्रजालिक अवतरण का अवलोकन हुआ था। किन्तु वहीं

मानवीय चेतना का यह स्फोट राजनीतिक धरातल पर कार्यान्वित हो रहा था। पश्चिमी राजनीति और सामाजिक विचारों के क्षेत्र में हम बन्धन विमोचन की जिस द्रुत प्रक्रिया का दर्शन करते हैं, वही प्रक्रिया साहित्यिक स्तर पर रोमांटिसिज्म के रूप में दिखाई पडती है। × × × × × हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का सम्बन्ध इतनी घनिष्ठता के साथ राजनीतिक चेतना के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। वह मूलतः आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों के परिष्कार के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था।'[10]

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– 'रोमांटिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना के अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग– ये दो घनीभूत मानसिक वृत्तियॉ इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की जननी हैं।'[11]

डॉ0 रामचन्द्र मिश्र ने विभिन्न परिभाषाओं के तत्वों का समन्वय करके स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा इस प्रकार दी है– 'स्वच्छन्दतावादी काव्य, काव्य की वह विशेष सर्जना है जो कल्पना और आवेश से युक्त परम्परा विधान और बाह्यांग–नियंत्रण से विमुक्त और मानसिक सरलता और अकृत्रिमता से सम्पन्न मानसिक तथा लोकभूमि की भावनाओं से युक्त हो।'[12]

इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद की सामान्यतः सभी परिभाषाओं में काव्य के कथ्य और शिल्प–विधान में परम्परागत बन्धनों से मुक्ति पर बल दिया गया है।

## हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी काव्य–संरचना की परम्परा

सामान्यतः 'स्वच्छंदतावाद' अभिधा आधुनिक हिन्दी काव्य के एक विशेष सोपान के लिए रूढ़ हो गयी है। इसलिए स्वच्छन्दतावाद कहने से आधुनिक काल की कविताओं, विशेषकर पश्चिम के रोमांटिक साहित्य से प्रेरणा लेकर हिन्दी में लिखे गये साहित्य का बोध होता है। किन्तु स्वच्छन्दता किसी युग विशेष का गुण न होकर मनुष्य की आन्तरिकता से जुड़ा तत्व है। इसलिए स्वच्छन्दतावाद के तत्व आदिकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल के साहित्य तक मिल सकते हैं। आदिकालीन स्वच्छन्द भावचर्या के उपासक कवियों और आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य की मूल चेतना में समानता भी मिलती

है। दोनों युगों के काव्य नियमों और परम्परागत रूढ़ियों का विरोध करते हुए उत्पन्न होते हैं। परन्तु शिल्प और अभिव्यंजना की दृष्टि से उनमें पर्याप्त अन्तर भी दिखाई देता है। वस्तुतः प्रत्येक युग में स्वच्छन्द और परम्परित काव्य रचनाएं होती रही हैं।

हिन्दी स्वच्छन्द काव्य के आरंभ –सूत्र सरहपा आदि सिद्धों की कविताओं में खोजे जा सकते हैं और कबीर के काव्य में उसका एक भव्य स्वरूप देखा जा सकता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समस्त निराकारवादी कवियों का काव्य स्वच्छन्द है और सभी साकारोपासक कवियों ने परम्परित काव्य की रचना की है। वस्तुतः परम्परा और स्वच्छन्दता के तत्व किसी सम्प्रदाय–विशेष के द्वारा नियमित नहीं होते। कवि का विशिष्ट व्यक्तित्व ही स्वच्छन्दता और परम्परा के आयामों की सृष्टि करता है। अतः समस्त सिद्धों और नाथपंथी योगियों के साहित्य को स्वच्छन्द नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक कवि अपनी चेतना के अनुसार परम्परित और स्वच्छन्द काव्य का सृजन करता है।

यदि भक्तिकाल के निर्गुण और सगुण विचारधाराओं से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि इनमें भी स्वच्छदता के तत्व विद्यमान हैं। हम तुलसीदास को अभिजात्यवादी कवि मान सकते हैं, परन्तु सूरदास को अभिजात्यवादी कवि मानने में संकोच होगा। सूरदास कृष्ण लीला के स्वच्छन्द गायक हैं। यह ठीक है कि सूरदास ने पुष्टि सम्प्रदाय को स्वीकार किया था तथा स्वामी वल्लभाचार्य के संरक्षण में श्रीनाथ जी के मंदिर में मुख्य कीर्तनिया थे, परन्तु सूरदास की वाणी स्वच्छन्दता के तत्वों से समन्वित है, उनके काव्य में परम्परा का निर्वाह उतना नहीं हुआ है। इसी प्रकार यदि हम निर्गुण कवियों की कविताओं का अध्ययन करें तो कबीर को हम बेहिचक स्वच्छन्दतावादी कह सकते हैं, परन्तु मलिक मुहम्मद जायसी को हमें परम्परावादी कवियों के वर्ग में रखना पड़ेगा।[13]

हिन्दी में रीतिकाल में भी रीतिबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त स्वच्छन्द काव्य धारा की एक स्वस्थ परम्परा मिलती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में– 'उस (श्रृंगार) काल में स्वच्छन्द मनोवृत्ति वाले ऐसे कवियों का भी प्रादुर्भाव हुआ जो रीति के बन्धन तोड़ डालना चाहते थे। ये शास्त्र में गिनायी गयी सूची तक ही सीमित रहने वाले नहीं थे। ये प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग संगठित करने के अभिलाषी थे। रीतिबद्ध होकर एक ओर काव्य–रचना बहिर्वृत्ति के निरूपण में व्यस्त थी, दूसरी

ओर इनके हृदय का वेग अन्तर्वृत्ति का अवकाश चाहता था। अतः इन्होंने रीति पद्धति का अतिक्रमण किया।'[14] इस तरह हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दतावाद के अंकुर बोधा, ठाकुर और घनानन्द की कविताओं में ही निकल चुके थे।[15] ये ऐसे भावुक कवि थे जिन्हें 'नजर की फांस' ने चुभकर पीड़ा की अनुभूति करायी थी।[16] घनानन्द की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को लक्ष्य करके रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है– 'यदि घनानन्द ने खड़ीबोली में कविता लिखी होती तो सरलता से वे छायावाद के पूर्व पुरुष मान लिए गये होते।'[17]

रीति कालीन प्रेमोन्मत्त कवियों की स्वच्छन्द कविता पर श्रीकृष्ण की स्वच्छन्द लीला का प्रभाव था और रीतिबद्ध कवियों ने भी कृष्ण लीला से ही प्रेरणा  ग्रहण की। किन्तु दोनों प्रकार के कवियों की प्रेरणा के मूल में गहरा अन्तर है। रीतिबद्ध कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का अत्यधिक श्रृंगारी चित्रण करने में प्रयोग किया, जबकि स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले प्रेमोन्मत्त कवियों ने कृष्ण–लीलाओ को प्रेमाभिव्यंजना का आधार बनाया। वस्तुतः इनमें स्वच्छन्दता मूलक प्रवृत्ति प्रेम की प्रकृत भूमि पर आरूढ़ होने के लिए जगी थी, वासना के गड्ढे में गिरने के लिए नहीं।[18] इन स्वच्छन्द कवियों पर सूफी मत की 'प्रेम की पीर' का प्रभाव भी विद्यमान था। प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय था। अतः स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम की यह पीर फारसी काव्य धारा की वेदना विवृत्ति के साथ सूफी कवियों से ही ली है।[19] रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्य धारा पर जो भी प्रभाव रहे हों, किन्तु इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि वह पाश्चात्य प्रभाव से अछूती थी। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे समीक्षक यह मानते हैं कि रीतिमुक्त धारा के कवि घनानन्द से हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का आरंभ माना जा सकता है। परन्तु आज हम जिस अर्थ में स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग करते हैं, उसमें संपूर्ण मानवता का आग्रह है, प्रेम भावना की वैयक्तिक अनुभूति का प्रकाशन तो उसका अंश मात्र है।[20]

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद आधुनिक युग की उत्पत्ति है और उसमें देश की राजनीतिक,  सामाजिक परिस्थितियों का योग है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से ही हिन्दी में स्वच्छन्दवादिता का आभास मिलने लगता है। शताब्दियों से हिन्दी कविता भक्ति और श्रृंगार के रंग में रंगी चली आ रही थी। उसमें 'चपल वार वनिता का  क्रीत–विलास' और कृत्रिम श्रृंगार ही अधिक था। अभिजात कुलवधू जैसी प्रकृत अंग – सुषमा और स्वाभाविक हृदय–सौन्दर्य की बहुत कमी थी।[21] केवल

चुंबन और आलिंगन, रति और विलास, रोमांच और स्वेद, स्वकीया और परकीया की कडियों में जकडी हुई हिन्दी कविता को सर्वप्रथम भारतेन्दु ने लोक जीवन के राजपथ पर लाकर खड़ा कर दिया। × × × × × आर्थिक जीवन में मंहगाई और अकाल, टैक्स और धन का विदेश प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र में बहुदेव पूजा और मत–मतान्तर के झगड़े, सामाजिक क्षेत्र में जाति–पाँति के टंटे, खान–पान के पचड़े और बाल विवाह, नैतिक क्षेत्र में पारस्परिक कलह और विरोध, उद्यमहीनता और आलस्य, भाषा–भूषा–भेष की विस्तृति तथा राजनीतिक क्षेत्र में पराधीनता और दासता–जीवन के ये विभिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रस्तुत होने लगे थे। × × × × × ब्रजभाषा में यह विषय की क्रान्ति थी।[22] छन्द के क्षेत्र में भी भारतेन्दु ने लावनी, गजल, रेखता, कजली, कबीर आदि छन्दों में नवीन प्रयोग किये। भारतेन्दु के अतिरिक्त ठाकुर जगमोहन सिंह का मार्मिक चित्रण और उदात्त प्रेम का स्वरूप उनकी स्वच्छन्दवादिता का परिचायक है। इस प्रकार यद्यपि भारतेन्दु में रोमांटिक तत्व उभरकर नहीं आ पाये थे, परन्तु आगे के विद्रोही युग की भूमिका प्रस्तुत कर दी थी।[23] इस युग में ही समाज का यथार्थ चित्रण करने के उपरान्त कवि क्रमशः व्यक्तिवादी हो गया था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पं0 श्रीधर पाठक को प्रथम स्वच्छन्दतावादी कवि घोषित करते हुए लिखा है– 'हरिश्चन्द्र के सहयोगियों में काव्य धारा को नये–नये विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति तो दिखाई पड़ी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गयी और पथ के ढाँचों, अभिव्यंजना के ढंग और प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छन्दतावाद के दर्शन न हुए। इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आभास पं0 श्रीधर पाठक ने ही दिया। उन्होंने प्रकृति के रूढ़िबद्ध रूपों तक ही न रहकर अपनी आँखों से भी उसके रूपों को देखा।[24]

वस्तुतः हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दवादिता का अवतरण श्रीधर पाठक द्वारा अनूदित 'एकान्तवासी योगी' काव्य से होता है। 'एकान्तवासी योगी' में भाषा, भाव, छन्द सभी का नूतन विधान सामने आया। 'कश्मीर–सुषमा', 'वनाष्टक' और 'सांध्य अटन' के संवेदनशील प्रकृति–चित्रण ने पाठक जी की स्वच्छन्दवादिता को और भी पुष्ट किया। यद्यपि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की नीतिवादिता और उपदेशात्मक इतिवृत्तात्मकता स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिए बाधक सिद्ध हुई, किन्तु पाठक जी अपने

काव्य द्वारा उसे संजीवनी प्रदान करते रहे। डॉ0 राम चन्द्र मिश्र के शब्दों में– 'पं0 श्रीधर पाठक अंग्रेजी काव्य की पूर्व स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों से प्रभावित थे। अंग्रेजी काव्य के उस काल में जिस प्रकार कवि परम्परागत काव्य पद्धतियों को परित्यक्त कर वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर काव्य क्षेत्र में अपना नया संसार बसाना चाहते थे, उसी प्रकार हिन्दी की सामन्ती प्रवृत्तियों के विरोध में पाठक जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य पद्धति को जन्म देकर एक नया प्रयोग प्रारंभ किया।'[25]

राय देवीप्रसाद पूर्ण, पं0 रामचन्द्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी', बदरी नारायण भट्ट, रामनरेश त्रिपाठी, तथा मुकुटधर पाण्डेय आदि ने पाठकोत्तर प्रांरम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य परम्परा को प्रगति दी। हिन्दी कविता में प्रकृति के प्रायः मनोहर रूप का ही वर्णन किया जाता था। आंग्ल रोमांटिक काव्य के प्रभाव से भयंकर रूप का भी वर्णन किया जाने लगा।[26] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एडविन आर्नोल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' के अनुवाद 'बुद्धचरित' में प्रकृति के आनन्ददायक और भयंकर दोनों रूपों का चित्रण किया है। रूपनारायण पाण्डेय के काव्य में दुखवाद और वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। मन्नन द्विवेदी गजपुरी की कविताओं में जन्मभूमि की हीनावस्था के प्रति अवसाद तथा सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण उपलब्ध होता है। बदरी नारायण भट्ट के काव्य में सजीव प्रकृति चित्रण, दुखवाद की भावना एवं वैयक्तिक भावना का स्वरूप विद्यमान है।[27] रामनरेश त्रिपाठी के लौकिक प्रेम, व्यवहारिक राष्ट्रीयता, प्रासादिक भाषा का प्रयोग तथा प्रेम की उदात्त भावनाएं बड़ी ही स्वाभाविक एवं चित्ताकर्षक हैं। मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं में दुखवाद, अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा, रूप का आकर्षण तथा निष्काम भाव से प्रकृति–दर्शन, प्रासादिक एवं मधुर शैली का प्राधान्य है।

आरंभिक स्वच्छन्दतावादी कविता यद्यपि द्विवेदी युग में रची गयी थी, किन्तु वह उस युग की केवल एक प्रवृत्ति थी। यही नहीं आरंभिक स्वच्छन्दतावादी कविता स्वयं द्विवेदी जी के प्रभाव से मुक्त होकर लिखी गयी थी।

स्वच्छन्दतावाद का व्यापक प्रसार छायावादी कविता के माध्यम से हुआ। हिन्दी के छायावादी काव्य की अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य से अत्यधिक तदनुरूपता उस पर रोमांटिक प्रभाव को सिद्ध करती

है। फिर भी छायावाद का विकास भारतीय परिस्थितियों में हुआ। इसने भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से प्रेरणा ली।

## स्वच्छन्दतावाद और छायावाद

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को लेकर अनेक विवाद हैं। कुछ लोग दोनों को एक मानते हैं, कुछ दोनों में अन्तर करते हैं। छायावाद का नामकरण सन् 1920 ई0 तक हो चुका था। मुकुटधर पाण्डेय ने 1920 ई0 में जबलपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'श्री शारदा' के जुलाई, सितंबर, नवम्बर तथा दिसम्बर के अंकों में 'छायावाद' शीर्षक से एक लेखमाला छपवायी थी। इस लेखमाला के अंत में मुकुटधर पाण्डेय ने लिखा है–'छायावाद की आवश्यकता हम इसलिए समझते हैं कि उससे कवियों को भाव–प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों– अनेक रीतियों का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।'[28]

डॉ0 नामवर सिंह ने छायावाद के सम्बन्ध में लिखा है– 'छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के 'रोमांटिक' उत्थान की वह काव्य–धारा है जो लगभग ईस्वी सन् 1918 से 36 (उच्छ्वास से युगान्त) तक की प्रमुख युगवाणी रही, जिसमें प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से भावोच्छ्वास–प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना–वैभव की वह 'स्वच्छंद प्रवृत्ति' है जो देश–काल–गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा–आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दतावाद की उस सामान्य भाव–धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में छायावाद पड़ा।'[29]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वच्छन्दतावाद और छायावाद में अन्तर किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'आधुनिक काल–काव्य खण्ड–नई धारा' के द्वितीय उत्थान के कवियों को स्वच्छन्दतावादी माना तथा इन कवियों की कविताओं को अंग्रेजी रोमांटिसिज्म से जोड़ा।[30] उन्होंने श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि को स्वच्छन्दतावादी कहा। इसी क्रम में तृतीय उत्थान की कविताओं के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अग्रलिखित कथन दृष्टव्य है–

'द्वितीय उत्थान में काव्य की नूतन परम्परा का अनेक विषयस्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ, द्विवेदी जी के प्रभाव से एक ओर उसमें भाषा की सफाई आयी, दूसरी ओर उसका रूप गद्यवत रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर बाह्यार्थ निरूपक हो गया। अतः इस तृतीय उत्थान में जो प्रतिवर्तन हुआ और पीछे छायावाद कहलाया, वह उसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्य शैली की ओर था, वस्तु विधान की ओर नहीं। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।'[31]

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने छायावाद को स्वच्छन्दतावाद के विरुद्ध उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आयी कविता समझा। उन्होंने आगे लिखा है– 'गुप्तजी, मुकुटधर पाण्डेय आदि के द्वारा स्वच्छन्द नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढॉचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थीं, परन्तु ईसाई संतों के 'छायाभास' (फैंटामासा) तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबलिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला में ऐसी कविताएं छायावाद कही जाने लगी थीं। यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाये रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नये कवि एक बारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इनका दूसरे साहित्य क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का इस पर साथ–साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इनके भीतर अंग्रेजी और बंगला की पदावली का जगह–जगह ज्यों का त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बातें मार्ग की स्वतन्त्र उद्भावना नहीं सूचित करतीं। × × × × × छायावाद नाम चल पड़ने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तु–विन्यास की विश्रृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले।'[32]

आचार्य शुक्ल ने छायावाद के बारे में आगे कहा– 'प्रणय वासना का यह उद्‌गार आध्यात्मिक पर्दे तक ही छिपा न रह सका। हृदय की सारी काम वासनाएं, इन्द्रियों के सुख–विलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच बॅधी हुई रूढ़ि पर व्यक्त होने लगी। अतः छायावाद शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य शैली के सम्बन्ध में भी प्रतीकवाद (सिंबलिज्म) के अर्थ में होने लगा।'[33]

आचार्य शुक्ल जी ने इस तरह स्वच्छन्दतावाद और छायावाद में अंतर किया। वे छायावाद को रोंमाटिसिज्म कहने के पक्षधर नहीं थे। प्रसाद, पंत, निराला को शेली इत्यादि से प्रभावित मानते हुए भी शुक्ल जी उन्हें रोमांटिक मानने से इनकार करते थे।[34]

आचार्य शुक्ल जी की धारणाओं का खण्डन करते हुए डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है– 'उनके (शुक्ल के) अनुसार अज्ञात की जिज्ञासा ही सच्ची रहस्य भावना है। परन्तु उन्होंने देखा कि छायावादी कवि उस जिज्ञासा को आध्यात्मिकता का रूप दे रहे हैं, इसलिये छायावादी रहस्य भावना को उन्होंने साम्प्रदायिक तथा आध्यात्मिक रहस्यवाद समझ लिया। उन्हें छायावाद की इस आध्यात्मिकता का मूल स्रोत रवीन्द्रनाथ में दिखाई पडा और चूँकि रवीन्द्रनाथ ब्राह्म थे और ब्राह्मों का मत ईसाई धर्म से ज्यादा मिलता था, इसलिए शुक्ल जी ने इन सबसे एक तरह का वादरायण सम्बन्ध स्थापित कर लिया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ईसाई धर्म की ही आध्यात्मिकता ब्राह्म माध्यम से हिन्दी कविता में व्यक्त हो रही है। जब मूल भाव की एकसूत्रता स्थापित हो गयी तो उन्होंने छायावाद के नाम के साथ भी उसका मेल मिला दिया। बुद्धि हो तो आदमी क्या नहीं कर सकता। उन्हें ईसाई मत में छाया अर्थ देने वाला एक 'फैंटसमैटा' शब्द भी मिल गया। बस फिर क्या था ? उन्होंने छायावाद शब्द को उससे जोड़ दिया और साबित कर दिया कि छायावाद नाम और भावधारा दोनों दृष्टियों से यूरोप का प्रभाव है । इस तरह उन्होंने हिन्दी छायावाद और ईसाई फैंटसमाटा के बीच बंगला कड़ी की भी कल्पना कर डाली और कह चले कि बंगला में भी इन कविताओं को छायावाद कहते हैं। बंगला में छायावाद नामक कोई वाद या शब्द है या नहीं, इसकी छानबीन करना उनका प्रयोजन न था। उन्हें तो अपनी बात रखनी थी, रख दी, गलत हो चाहे सही। यह प्रवाद कि बंगला में भी छायावाद नामक एक वाद है, बहुत दिनों बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्मूल हुआ।'[35]

इस प्रकार डॉ0 नामवर सिंह आचार्य शुक्ल जी के इस मत का खण्डन करते हैं कि छायावाद बंगला रहस्यवाद से प्रभावित है जो कि स्वयं ईसाई रहस्यवाद से प्रभावित था। उन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा छायावाद को 'अन्योक्ति काव्य' कहने तथा आचार्य शुक्ल जी द्वारा केवल अध्यात्म और रहस्यवाद को छायावाद की विषयवस्तु कहने का कड़ा प्रतिवाद किया। डॉ0 नामवर सिंह ने बताया है कि

आगे चलकर रोमांटिसिज्म और छायावाद का द्वैत समाप्त हो गया। सामान्य पाठक छायावाद को रोमांटिसिज्म का पर्याय समझने लगे। कुछ लोग आचार्य शुक्ल जी द्वारा गढे हुए स्वच्छन्दतावाद को भी छायावाद का पर्याय अथवा अंग मानने लगे तथा अन्य लोग स्वच्छन्दतावाद का द्वितीय उत्थान कहना अधिक युक्ति संगत मान चले।[36] डॉ0 नामवर सिंह ने इसका प्रतिवाद किया है। उन्होंने लिखा है– 'इस तरह प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी की कविताओं की चर्चा के सिलसिले में अंग्रेजी के मिस्टिसिज्म और रोमांटिसिज्म तथा हिन्दी के रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद शब्द आये। व्यवहार में रहस्यवाद, मिस्टिसिज्म का पर्याय हो गया है और छायावाद तथा स्वच्छन्दतावाद रोमांटिसिज्म के। × × × × × जहाँ तक रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद शब्दों के शब्दार्थ और लोक प्रचलित भाव का सम्बन्ध है, इन तीनों में निःसन्देह थोड़ा–थोड़ा अंतर है। रहस्यवाद अज्ञात की जिज्ञासा है, तो छायावाद चित्रण की सूक्ष्मता है और स्वच्छन्दतावाद प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा।'[37]

डॉ0 नामवर सिंह ने रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद तीनों को एक ही काव्य धारा की विविध प्रवृत्तियाँ माना। उन्होंने कहा है–'जिस तरह अन्य साहित्यों में अनेक प्रवृत्तियों के पुंज रोमांटिक काव्य को एक संज्ञा 'रोमांटिसिज्म' दी गयी है। उसी तरह अनेक प्रवृत्तियों के पुंज छायावादी काव्य को भी एक ही नाम देना चाहिये। कहना न होगा कि यह एक नाम छायावाद ही हो सकता है।'[38]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास' में छायावाद के विषय में लिखा है– 'इसी नवीन प्रकार की कविता को किसी ने छायावाद नाम दे दिया है। यह शब्द बिल्कुल नया है। यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बंगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिन्दी में आया है। छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के जोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है। बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रभाषा–शैली या प्रतीक–पद्धति के रूप में माना गया या फिर रहस्यवाद के अर्थ में। उपहास और व्यंग्यों का काफी विस्तृत साहित्य सूचित करता है कि औसत श्रेणी के सहृदय को इस कविता की महत्ता स्वीकार करने में समय लगा है। वह पहले इसे

एकदम नवीन और अवांछनीय वस्तु समझता रहा। शैली रूप में इसे स्वीकार करने वालों के मन में भी इस श्रेणी की कविता के विषय में विशेष गौरव का भाव नहीं हैं।'[39]

डॉ0 बच्चन सिंह ने छायावाद शब्द को निरर्थक माना है और उस पूरे साहित्य को स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत करने का आग्रह किया है। उन्होंने लिखा है– 'छायावाद स्वयं में कोई अर्थ नहीं है। आधुनिक साहित्य का इतिहास लिखते समय यह बाधक सिद्ध होता है। कविताओं के लिये छायावादी काव्य कह दिया जाता है, पर उसी काल–खण्ड में लिखे गए गद्य को छायावादी गद्य नहीं कहा जाता। × × × × × कुछ लोग इस काल–खण्ड की कविता को छायावादी तथा नाटक, कहानी आदि को स्वच्छन्दतावादी कहते हैं। इतिहास की अपनी विवशता है कि किसी एक काल–खण्ड की मुख्य प्रवृत्ति के आधार पर एक नाम दें। इस समय के साहित्य को केवल एक ही नाम दिया जा सकता है–स्वच्छन्दतावाद। × × × × × इस काल को स्वच्छन्दतावाद युग कहने से दो समस्यायें हल हो जाती हैं– एक तो तत्कालीन गद्य –पद्य को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत अधिक सार्थक ढंग से विवेचित किया जा सकता है, दूसरे यह कि यह अन्य भारतीय और भारतीयेतर साहित्यों के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन (रोमांटिक मूवमेंट्स) से जुड़ जाता है। अतः छायावाद के स्थान पर इस नये शब्द के चयन की ऐतिहासिक आवश्यकता है।'[40]

डॉ0 प्रेमशंकर ने भी 'छायावाद' शब्द को उस संपूर्ण काव्य–व्यक्तित्व को व्यक्त करने में असमर्थ माना और स्वच्छन्दतावाद नाम देने की वकालत की । उन्होंने लिखा है– 'जिसे हिन्दी में छायावाद कहा जाता है, उसकी कहानी कम दिलचस्प नहीं। किसी ने बैठे–ठाले मजाक के तौर पर फिकरा कस दिया और यह नाम चल निकला। लोगों ने तहकीकात तक की जरूरत नहीं समझी । जैसे बार–बार इन्कारने पर प्रयोगवाद का लेबिल लगा दिया गया। छायावाद शब्द जिस रचना के लिये इस्तेमाल किया जाता है, मेरा विचार है कि वह उसके व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं करता और एक असमर्थ नाम है। × × × × × स्वच्छन्दतावाद रोमांटिसिज्म के लिए प्रयुक्त शब्द है, पर यदि छायावाद के पहले दौर में कुछ

लोग इसे विदेशी काव्य का पिछलगुवा न मान लेते, तो संभव है उसे स्वच्छन्दतावाद नाम ही मिल जाता। मैं समझता हूँ यह अधिक सार्थक नाम है।'[41]

छायावाद नामकरण के सम्बन्ध में डॉ0 नरेंद्रदेव वर्मा का कथन है– 'छायावाद नाम से एक धूमिल, अस्त–व्यस्त और वायवी चिंतन और सृजन के प्रतीक का ही बोध कर पाते हैं। वस्तुतः नामकरण का उद्देश्य किसी वस्तु को छिपाना या उसे छद्मवेशी बनाना नहीं होता। नामकरण की सार्थकता वस्तु के स्वभाव और उसकी व्यंजना पर आधारित होती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि छायावाद की अभिधा बहुत कुछ अमूर्त और वायवी है तथा उसके द्वारा वस्तु स्थिति का यथावत् स्पष्टीकरण नहीं होता।'[42]

हिन्दी में छायावाद शब्द का प्रचलन आकस्मिक है। आरंभ में जब छायावाद शब्द का प्रयोग किया गया तो इसका आशय अस्पष्टता और अमांसलता आदि से था तथा सुमित्रानन्दन पंत की कविताओं को आधार बनाकर यह नामकरण किया गया।[43] छायावाद शब्द उस काव्य की संपूर्ण ध्वनि को व्यंजित नहीं करता। द्विवेदी युगीन वर्णन प्रधान कविताओं की तुलना में जब छायावाद की आरंभिक रचनायें 'इन्दु' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आयी होंगी तो वे समीक्षकों को बेपहचान लगी होंगी और ऐसा लगभग हर महत्वपूर्ण रचना आन्दोलन के साथ होता है। 'छायावाद' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इन व्यक्तियों के अपने पूर्वाग्रह रहे होंगे, जो उन्होंने आरम्भिक रचनाओं के आधार पर बनाये होंगे। इसका एक प्रमाण 'जुही की कली' का 'सरस्वती' के द्वार से लौट आना है।[44] यह कविता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को, जो कि 'सरस्वती' के सम्पादक थे, प्रभावित नहीं कर सकी थी।

छायावाद के सम्बन्ध में समीक्षकों की भिन्न–भिन्न मान्यताएं हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद की परिभाषा देते हुए उसे 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान' कहा। शांति प्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा तथा डॉ0 नगेन्द्र ने उसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। इन व्याख्याओं से उस समय के साहित्य के आन्तरिक सूत्र को पकड़ पाना संभव नहीं है। असल में छायावाद एक अयाचित और अनुपयुक्त अभिधा है जिसे हिन्दी काव्य प्रवाह के आधुनिक उद्वेलन के ऊपर थोप दिया गया है। छायावाद की अभिधा उस नवोन्मेषमयी सौन्दर्योच्छ्वास की प्रगल्भ वेगवती

धारा के योग्य नहीं है, जो किसी परम्परित रूपाकार में नहीं बँधना चाहती, जिसे कथ्य और शिल्प के पूर्व निवेदित आयामों के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहती है, जो किसी भी प्रकार के बाह्य नियमों को स्वीकार नहीं करती। वस्तुतः यह हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा है और स्वच्छन्दतावाद का अभिधेय ही इसके प्रति पूरी तरह से न्याय कर सकता है। जिसे हम छायावाद के नाम से जानते हैं, वह वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद ही है तथा जिसका उदय भी नियमों के प्रति विद्रोह की भावना से हुआ है।[45]

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को मात्र अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का अनुकरण नहीं मानना चाहिए। दोनों आन्दोलनों में लगभग सौ वर्षों का अंतर है। दोनों की मनोवृत्तियों में अन्तर है। हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य आध्यात्मिक भावबोध के सहारे विकसित हुआ है। इसकी जडें बहुत गहरी हैं।

पं0 श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी तथा जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि कवियों के काव्य को एक साथ स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत ही समाहित किया जा सकता है। इन सबको छायावाद के अन्तर्गत एक साथ समाहित नहीं किया जा सकता।

स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति उस समय के समस्त साहित्य में किसी न किसी रूप में रही है, जबकि छायावाद नामकरण जिन विशेष काव्य रचनाओं के लिए दिया गया उनके अतिरिक्त इसमें और कविताओं को समाहित करना अनुपयुक्त होगा। यह सत्य है कि भारतीय स्वच्छन्दतावाद और पाश्चात्य रोमांटिसिज्म में पर्याप्त अन्तर है, दोनों की भावभूमि और समय का अन्तर तो प्रत्यक्ष है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद भारतीय नवजागरण की साहित्यिक निष्पत्ति है और छायावादी काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। छायावाद नामकरण इतना प्रचलित हो गया है और उस युग के काव्य–विशेष के लिए रूढ़ हो गया है कि अपनी अर्थगत अस्पष्टता के बावजूद वह हिन्दी काव्य के एक विशेष काल–खण्ड की कविता का बोध कराता है। अतः गलत या सही, यदि छायावाद नाम चल पड़ा तो साहित्येतिहास से उसे खारिज करना संभव नहीं। साहित्यिक जगत इस नाम को स्वीकार कर चुका है। छायावाद नाम इतना ज्यादा प्रचलित हो गया है कि स्वच्छन्दतावाद शब्द इसके पीछे छिप गया है, फिर

भी छायावाद के पहले के साहित्य तथा छायावाद के बाद के साहित्य और छायावादी साहित्य– इन तीनों समयों के समस्त गद्य–पद्य साहित्य को एक साथ समझने के लिए स्वच्छन्दतावाद नामकरण की पहल की जानी चाहिये।

## हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य का काल–विभाजन

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन काल–खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। ये काल–खण्ड क्रमशः आरंभ, उत्कर्ष और ह्रास के द्योतक भी हैं। यह विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

### प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावाद (पूर्व स्वच्छन्दतावाद)

इसका समय 1900 ई0 से 1920 ई0 तक माना जा सकता है। यह स्वच्छन्दतावाद का उद्भव काल है। हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की शुरूआत पं0 श्रीधर पाठक से मानी जाती है। पं0 श्रीधर पाठक के अतिरिक्त अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं।

### स्वच्छन्दतावाद (छायावाद)

इसका समय 1920 ई0 से 1938 ई0 तक माना जा सकता है। छायावाद हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का उत्कर्ष काल है। इस काल के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा आदि हैं।

### उत्तर स्वच्छन्दतावाद (नव स्वच्छन्दतावाद)

इसका समय 1938 ई0 से 1960 ई0 तक माना जा सकता है। इस काल में आकर स्वच्छन्दतावाद का समापन हो जाता है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नई कविता आदि काव्यान्दोलन प्रारम्भ होते हैं। फिर भी किसी प्रवृत्ति के लिए समय की कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। साहित्य में कई प्रवृत्तियॉ एक साथ चलती रहती हैं। इस काल के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंश राय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि हैं।

## पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा

विश्व के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का महत्वपूर्ण स्थान है। पुनरूत्थानवादी आन्दोलनों के पश्चात् नवजागरण से उपजी चेतना का साहित्यिक रचनाओं में समाहार इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरंभ होता है। विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति और बौद्धिकता के द्रुतगामी विकास ने स्थान और काल की इकाईयों को इतना समीप ला दिया है कि आज पाश्चात्य और पौर्वात्य की विभाजक –रेखायें धूमिल हो गयी हैं। पश्चिम के सम्पर्क से भारतीय जीवन और समाज में जिस तर्कपूर्ण जीवन – दृष्टि का विकास हुआ है, उससे साहित्यकार भी प्रभूततः प्रभावित हुआ है। हमारी जीवन–पद्धति और चिंतन के क्रम में भी आपातिक परिवर्तन परिलक्षित होता है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से पश्चिमी चिंतन ने हमारे देश के ज्ञान की प्रत्येक धारा में प्रवेश पा लिया था। इस चिंतन में साहित्यिक संरचना का क्रम भी अनुप्रेरित हुआ और नवीन साहित्यिक कृतियों में आदर्शवाद, परम्परानुमोदन, भावुकता और काव्यशास्त्रीय प्रतिबद्धता के स्थान पर यथार्थवादी, समकालीन, तर्क प्रवण, स्वच्छन्दतावादी रचना–दृष्टि का विकास हुआ। साहित्यिक संरचना में इस परिवर्तन क्रम को लक्षित करके हम पाश्चात्य प्रभाव को अनदेखा नहीं कर सकते और न ही पश्चिमी चिंतन का आदान किसी हीन भाव का द्योतक होना चाहिये। वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य चिंतन के प्रभाव ने हमारी रचना –धर्मिता को नवीन आयाम प्रदान किये हैं और सृजन की सार्थकता प्रमाणित की है। आधुनिक युग में संपूर्ण भारतीय साहित्य में नवीन भावधाराओं एवं चिंतन धाराओं का प्रवाह पश्चिमी साहित्य एवं विचारधारा के संपर्क से और भी वेग से प्रवाहमान हो चला है।

## भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के आरंभ का काल देश में राजनैतिक संघर्षों और राष्ट्रीय आन्दोलन एवं विद्रोह का काल रहा है। कई शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् संपूर्ण भारत की विद्रोही चेतना का विस्फोट सन् 1857 ई0 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में प्रकट हुआ। भारत में भी प्राचीन एवं नवीन के बीच संघर्ष चलने लगा। सन् 1857 ई0 में ईस्ट इंडिया कंपनी का अधिकार समाप्त हो गया और

ब्रिटिश क्राउन ने राज्य शासन का भार स्वयं ग्रहण कर लिया। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि सभी जातियों एवं धर्मों के प्रति पूर्ण न्याय किया जाएगा। भारतीयों के धार्मिक विषयों में कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। शासन के द्वारा भी सभी का संरक्षण होगा और जनता का कल्याण ही सरकार का लक्ष्य होगा। देशी राजाओं की सुरक्षा एवं स्वातन्त्र्य का ध्यान रखा जायेगा। उन्होंने सरकार की राज्य विस्तार की नीति को भी छोडने की घोषणा की। इन घोषणाओं के फलस्वरूप भारतीय जनता में सरकार के प्रति विश्वास की भावना जगने लगी। संपूर्ण भारत के वायुमंडल में एक प्रकार की आशा और प्रफुल्लता छा गयी। रेल, डाक, तार और शिक्षा आदि की व्यवस्था के कारण विदेशी सरकार के प्रति जनता में कृतज्ञता की भावना उमड़ पडी।

किन्तु क्रमशः भारतीयों को यह विदित हुआ कि जो कुछ सरकार ने उनकी सुविधा के निमित्त किया है, वह सब केवल अभिनय मात्र था। इन सुधारों के पीछे कोई सद्भावना नहीं थी। भारतीयों को यह ज्ञात हो गया कि अंग्रेजों ने देश भर में रेलों का जाल केवल अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही बिछाया था। रेलों के द्वारा भारत का कच्चा माल बडे–बड़े नगरों तक शीघ्रता से पहुँचाया जा सकता था और वहाँ से जहाजों पर लादकर विदेशों में पहुँचाया जा सकता था। इसका अन्य कारण यह भी रहा कि अवसर पड़ने पर अपनी सेना को रेलों द्वारा भारत के किसी भी कोने में भेज सकते थे। ब्रिटेन की स्वार्थमयी व्यावसायिक वृत्ति अत्यन्त तीव्र हो गयी और उसने भारत में अधिक पूँजी लगायी। ब्रिटेन ने भारत का आर्थिक शोषण करना शुरू किया। उसके इस कृत्य का खुलासा दादाभाई नौरोजी ने 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' नामक पुस्तक में किया। उन्होंने 'आर्थिक निकासी' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिससे ब्रिटेन द्वारा भारत के शोषण का पर्दाफाश हुआ।

परिस्थितियों की कठोरता ने भारतीय जनता में अविश्वास एवं विद्रोह की भावनाओं का संचार किया। ब्रिटिश शोषण के खिलाफ आन्दोलन छिड़ गया। इस देश व्यापी आन्दोलन का चरमोत्कर्ष उस समय लक्षित हुआ, जब सन् 1885 ई0 में भारतीय जनता ने पहली बार एक राष्ट्रीय झंडे के नीचे संगठित होकर इण्डियन नेशनल कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) की स्थापना की। आरंभ में अंग्रेजी सरकार कांग्रेस के कार्य–कलापों के प्रति उदासीन थी। एक अंग्रेज अफसर ए0 ओ0 ह्यूम द्वारा स्थापित होने के

कारण अंग्रेजी सरकार इसे सुरक्षा कपाट (सेफ्टी वाल्ब) मानकर चल रही थी। किन्तु शीघ्र ही वह इस संस्था की गतिविधियों को सतर्कता एवं जागरूकता के साथ देखने लगी। कांग्रेस संस्था द्वारा भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था। इसी समय भारत के राजनीतिक क्षेत्र में एक आकस्मिक घटना घटी, जिसने भारत के स्नायुजाल में विद्रोह की लपटों को भडकाने का काम किया। सन् 1905 ई0 में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने अपनी निरंकुशता का परिचय देते हुए बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया और इसकी घोषणा सरकारी गजट में कर दी। अभिनव राष्ट्रीयता के प्रादुर्भाव–काल में सरकार के इस कुकर्म ने भारतीय प्रतिष्ठा पर कुठाराघात किया और कांग्रेस ने इसका वीरोचित विरोध किया। अखण्ड भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक 'वन्देमातरम्' का गीत जनता के अधरों पर गूॅज उठा और स्वदेशी आन्दोलन देश भर में व्याप्त हो गया। सन् 1905 ई0 में एशिया के छोटे किन्तु सुसंगठित देश जापान ने रूस जैसे विशाल यूरोपीय देश को पराजित कर दिया। इस घटना ने यह प्रमाणित किया कि अब यूरोपीय देश अजेय नहीं हैं। जापान की विजय ने पराधीन देशों में एक प्रकार का आत्मगौरव एवं आत्मनिर्भरता की भावना प्रतिष्ठित कर दी। इसी समय तुर्की ने यूनानियों को पराजित किया। इसी तरह जर्मनी और इटली का राष्ट्रों के रूप में संगठित होना, आयरलैण्ड का होमरूल आन्दोलन, फ्रांस की राज्य क्रान्ति तथा अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम– इन सभी ने भारत की सामान्य जनता को संगठन और राष्ट्रीयता का महत्व समझा दिया। फलस्वरूप संपूर्ण भारत–जाति अपने कुल, जाति एवं धर्म के स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता की व्यापक भावना में दीक्षित होने लगी थी। राष्ट्रीयता के विकास ने संपूर्ण देश के लिये एक देशीय भाषा की आवश्यकता का अनुभव कराया और आगे चलकर हिन्दी ऐसी भाषा के रूप में सर्वमान्य हुई। इसी समय से कांग्रेस ने भी आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास एवं दृढ़ता के साथ अपना कार्यक्रम प्रारंभ कर दिया।

लार्ड मिन्टो (1906 ई0 – 1910 ई0) के समय तक बंग–भंग से सम्बद्ध स्वदेशी आन्दोलन चलता रहा। वास्तव में बंग–भंग के पीछे हिन्दुओं और मुसलमानों को विभक्त करके उन पर शासन का षड्यन्त्र कार्य कर रहा था, क्योंकि बंगाल के पूर्वी भाग में मुसलमान एवं पश्चिमी भाग में हिन्दू अधिक थे। ब्रिटिश सरकार की निरंकुशता ने कांग्रेस में अतिवादियों को जन्म दिया, जो विद्रोह और सशस्त्र क्रान्ति का

समर्थन करने लगे। फलतः सन् 1906 ई0 में कलकत्ता के अधिवेशन में कांग्रेस के नरमदल (मितवादी) एवं गरमदल (अतिवादी) में विभक्त होने की नौबत आयी। इतना होने के बाद भी सभापति दादाभाई नौरोजी ने यह घोषणा की कि 'स्वराज हमारा लक्ष्य है।' कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास हुआ कि अब से कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य है, शासन–सुधार मात्र नहीं। सन् 1907 ई0 में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस विभाजित हो गयी। नरमदल के नेता गोपाल कृष्ण गोखले थे और अतिवादियों के नेता बाल गंगाधर तिलक हुए। गरमदल से प्रभावित होकर अनेक युवा क्रान्तिकारियों ने हिंसक आन्दोलन का सहारा लिया। पंजाब के गरमदल के नेता लाला लाजपत राय देश से निर्वासित कर दिये गये। बाल गंगाधर तिलक को छः वर्ष की सजा मिली। सरकार ने भारत के समाचार पत्रों का स्वातन्त्र्य छीन लिया। इस प्रकार सरकार का दमन–चक्र जनता पर क्रूरता के साथ चल रहा था।

सन् 1906 ई0 में सर सैयद अहमद खॉ के अनुयायियों ने 'मुस्लिम लीग' की स्थापना की। सन् 1909 ई0 में मिन्टों–मार्ले–सुधार प्रस्तुत किये गये, जिनके अनुसार कौसिलों से लेकर जिला बोर्डो तक में प्रतिनिधि चुनाव द्वारा चुने जा सकते थे। इस समय तक अंग्रेज कांग्रेस से किसी न किसी प्रकार समझौता करना चाहते थे। लार्ड हार्डिंग द्वितीय (1910 ई0 – 1916 ई0) अंग्रेजों की इस समझौतावादी नीति के प्रतिनिधि बनकर आये । कांग्रेस ने सन् 1910 ई0 के प्रयाग अधिवेशन में उनके आगमन पर अपना संतोष प्रकट किया। हार्डिंग के उदार दृष्टिकोण के कारण भारत की राजनैतिक परिस्थितियों में शान्ति छा गयी। बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया गया।

सन् 1914 ई0 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो गया। इस युद्ध में भारत ने ब्रिटेन की सहायता अत्यन्त तत्परता के साथ की। सन् 1918 ई0 में युद्ध समाप्त होने के बाद अंग्रेजी सरकार ने भारत को उनकी सेवाओं के बदले कुछ नहीं दिया। सरकार की ओर से सन् 1919 ई0 में 'मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड–सुधार पत्र' प्रस्तुत हुआ, जिससे भारतीय संतुष्ट नहीं थे। इसी अवसर पर क्रान्तिकारियों के दमन के लिये सरकार ने रौलेट एक्ट पास किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत की संपूर्ण जनता ने हड़ताल करके उसका घोर विरोध किया। सरकार ने दमन की नीति अपनायी। इस नीति की पराकाष्ठा उस समय दिखाई पड़ी, जब 13 अप्रैल, 1919 ई0 को पंजाब के जलियॉवाला बाग में जनरल डायर ने नागरिकों की

शान्तिपूर्ण विशाल सभा पर बिना चेतावनी के गोली चलवा दी। सैकडों लोग गोलियों से भून डाले गये। सन् 1920 ई0 में कलकत्ता कांग्रेस में गॉधी जी ने असहयोग आन्दोलन की योजना बनायी और उसी वर्ष दिसम्बर के नागपुर अधिवेशन में शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित हुआ। सरकारी स्कूलों, कालेजों तथा दफ्तरों का परित्याग, सरकारी उपाधियों का त्याग आदि कार्य इस आन्दोलन के प्रधान अंग थे। खद्दर का उपयोग, चरखे का प्रयोग एवं प्रचार शुरू हुआ। इस आन्दोलन में कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिलकर कार्य किया और आन्दोलन की लहरें देशभर में फैल गयीं। सन् 1929 ई0 में भारत के संपूर्ण स्वातन्त्र्य को ही कांग्रेस ने अपना लक्ष्य घोषित किया। सन् 1930 ई0 में गॉधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया। सन् 1931 ई0 में भगत सिंह और उनके दो साथियों को फॉसी दे दी गयी। इससे संपूर्ण देश स्तब्ध रह गया। तीन गोलमेज सम्मेलनों से भी कोई हल नहीं निकला। सन् 1939 ई0 से 1945 ई0 तक द्वितीय विश्वयुद्ध चला। इसी समय भारतीयों ने अपना संघर्ष तेज कर दिया। सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के माध्यम से सशस्त्र संघर्ष चलाया। महात्मा गॉधी के नेतृत्व में 'भारत छोड़ों आन्दोलन' चलाया गया। इन घटनाओं से भारत की स्वतन्त्रता का समय नजदीक आया। 15 अगस्त सन् 1947 ई0 को देश को आजादी मिली। स्वतंत्रता संघर्ष सिर्फ एक राजनीतिक आंदोलन ही नहीं था, यह सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन भी था। राजनीतिक घटनाओं ने साहित्यिक आन्दोलनों को भी प्रभावित किया। स्वतन्त्रता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन का बहुत बड़ा मूल्य है।

## सामाजिक परिस्थितियॉ (आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थितियॉ)

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारत की सामाजिक परिस्थितियों ने स्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रभावित किया। उन पर पाश्चात्य विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के साथ पाश्चात्य विचारधारा भारत में प्रविष्ट हो गयी थी। समानता, विश्व बन्धुत्व की भावना तथा पाश्चात्य विचारों ने स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के विकास में योगदान दिया।

स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्‌भव और विकास को समकालीन आर्थिक परिस्थितियों ने भी प्रभावित किया। भारत में पूँजीवाद को बल मिलने के पश्चात् नगरों का विकास होने लगा था। नगरों में रहने वाले मध्यम वर्ग ने अपना अस्तित्व बनाये रखा। स्वच्छन्दतावाद के अधिकतर कवि इसी मध्य वर्ग के हैं और प्रायः स्वच्छन्दतावादी काव्य मध्यवर्गीय चेतना का परिणाम समझा जाता है। दोनों विश्वयुद्धों के बीच भारत के आर्थिक संकट से भारतीय जनता में जो निराशा छा गयी थी, उसका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा पर पड़ा। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य में अभिव्यक्त निराशा तथा वेदना की प्रवृत्ति कुछ हद तक युग की इन आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित जान पड़ती है।

कोई भी साहित्यिक आन्दोलन अपने युग की सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण करता है। कवि भी सामाजिक प्राणी है। अतः वह उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। भारतीय सामाजिक नवजागरण के प्रवर्तन का प्रथम श्रेय पाश्चात्य संपर्क को है। अंग्रेजों के शासन में आने के उपरान्त ही यूरोप से भारत का सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया। इस प्रकार पाश्चात्य संपर्क से भारत पर पाश्चात्य प्रभाव का पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक ही है। अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व ही देशीय भाषाओं में शिक्षा का सम्यक् प्रचार था। परन्तु इस शिक्षा पद्धति के अत्यन्त प्राचीन होने के कारण उसमें निर्जीवता आ गयी थी । अंग्रेजों ने भारत में अपने राज्य को सुस्थिर रखने तथा ईसाई धर्म का प्रचार करने की आवश्यकता का अनुभव किया। लार्ड मैकाले के परामर्श से लार्ड विलियम वेंटिक ने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम होने की घोषणा की। राजा राममोहन राय आदि भारतीय नेताओं ने इस घोषणा का समर्थन किया। युवकों में भी अंग्रेजी भाषा सीखने का उत्साह क्रमशः बढ़ने लगा। प्रत्येक अंग्रेजी पढ़े–लिखे व्यक्ति को सरकारी नौकरी से प्राप्त होने वाली सुविधा और प्रतिष्ठा को देखकर असंख्य युवक अंग्रेजी शिक्षा की ओर उन्मुख हुए। शीघ्र ही अंग्रेजी शिक्षा लोकप्रिय हो गयी। शिक्षा को बंगाल और मद्रास में अधिक प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से नवीन यूरोप के साथ भारत का सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार पाश्चात्य संपर्क से भारत में आकस्मिक और आमूल परिवर्तन हुए।

वस्तुतः आधुनिक भारत का जन्म ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की गोद में हुआ। इसके पहले जनता समाज और देश के प्रति अपने कर्तव्य को भूल चुकी थी। ऐसी दशा में अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य

साहित्य के प्रभाव से बहुत से व्यक्तियों को अपने देश और समाज के प्रति कर्तव्य का बोध हुआ। व्यक्ति अपने संकुचित स्वार्थों के घेरे से उठकर देश और उसकी जनता के प्रति प्रेम भावना रखने लगा। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से देश के प्रति जो नवीन चेतना जगी, उसी के भीतर से भारत के राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण का जन्म हुआ। इस प्रकार मध्ययुग की अन्ध कारा को चीरकर आधुनिक भारत वासीयों ने नवीन चेतना का साकार रूप धारण कर लिया। यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के अंत तक जो क्रान्तिकारी विचारक उत्पन्न हुए, उन्नीसवीं सदी में आकर उनके विचारों ने एक निश्चित दर्शन का रूप धारण कर लिया। ऐसे विचारकों में रूसो, वाल्टेयर और मान्टेस्क्यू प्रमुख हैं। वे फ्रांसीसी क्रान्ति के उन्नायक नेता तथा विचारक थे। स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृ भावना उन्हीं के विचारों का मूल स्वर है। यूरोपीय संपर्क से भारत में भी विचारों का आन्दोलन सहस्र धाराओं में बह चलने लगा। कविता, नाटक, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध, दर्शन, राजनीति, धर्म आदि क्षेत्रों में इन नवीन विचारों का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। इस सन्दर्भ में राष्ट्रकवि एवं मान्य विचारक रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है– 'इन सारे विचारों और आन्दोलनों का उत्तराधिकार भारत को आप से आप प्राप्त हो गया, क्योंकि अंग्रेजी भाषा के द्वारा इस देश के चिंतक यूरोपीय विचारों के गहन संपर्क में थे। भारतवर्ष में अंग्रेजी की पुस्तकें और समाचार पत्र धड़ल्ले से आ रहे थे। अतएव यूरोप में चलने वाले वैचारिक आन्दोलनों के साथ भारत अनायास सम्बद्ध हो गया तथा जिन भावनाओं की चोट से यूरोप के मस्तिष्क की शिरायें थर–थरा रही थीं, उन भावनाओं की चोट भारत में भी महसूस होने लगी। यूरोप की वैचारिक क्रान्तियों में उस समय भारत ने अपना योगदान विचारक की हैसियत से भले न दिया हो, किन्तु उनका प्रभाव ग्रहण करने में यह देश यूरोप से पीछे नहीं रहा।'[46]

इस प्रकार भारतीय जनता में नवजागरण की चेतना जगी और उनकी दृष्टि समाज और धर्म की प्राचीन मान्यताओं, कुरीतियों तथा अन्ध विश्वासों पर गयी। जनता के मन में एक प्रकार का असन्तोष छा गया और वह सरकार से वाक्–स्वातन्त्र्य की मॉंग करने लगी।

## धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण

आरंभ से ही भारत एक धार्मिक देश रहा है और समय–समय पर यहाँ विभिन्न धर्मों का प्रचार एवं प्रसार था। धर्म और साहित्य में अटूट सम्बन्ध होने के कारण यहाँ साहित्य को धार्मिक प्रचार के निमित्त एक साधन के रूप में स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त यहाँ के मानव जीवन पर धर्म का प्रभाव लक्षित होता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म को प्रधानता दी जाती है। यह धार्मिक प्रवृत्ति वैदिक काव्यों से लेकर आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य धाराओं तक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। संस्कृत के महाकाव्यों से लेकर आधुनिकतम हिन्दी महाकाव्य 'कामायनी' तक भारत की सर्जनात्मक प्रतिभा काव्य के माध्यम से भारत के सांस्कृतिक वैभव तथा स्वस्थ जीवन–दर्शन को ही वाणी देने में लगी हुई है। अपने रस और सौन्दर्यमूलक मान्यताओं तथा मूल्यों की रक्षा करते हुए भी भारतीय काव्य सदा अन्तस्थल में मानव के लिये उज्ज्वल धार्मिक सन्देश वहन करते आया है। प्राचीन काल से भारतीय काव्य और कला में धार्मिक विचार धारा अन्तः सलिला की भाँति बहती चली आ रही है, कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष रूप से, कभी क्षीण और कभी क्षिप्र वेग से। परन्तु पाश्चात्य संपर्क से भारतीय जीवन पद्धति में कई परिवर्तन हुये। भारत का मानसिक कायाकल्प हो गया। इसी समय हिन्दू धर्म पर ईसाई तथा इस्लाम धर्मों के आक्रमण अनेक रूपों में हो रहे थे। ऐसी दशा में हिन्दू धर्म के मनीषी अपने धर्म की दुर्बलताओं को हटाकर उसमें संजीवनी शक्ति भरने के लिए कटिबद्ध हो गये। उन्हीं के प्रयासों से हिन्दू धर्म में नवीन शक्ति का संचार हुआ और भारत का सांस्कृतिक नवजागरण एक सुदृढ़ आधार शिला पर खड़ा हुआ।

अतः इन नवीन परिस्थितियों के कारण भारतीय जनता में जो नवीन चेतना का संचार हुआ, जो नवीन उत्साह की तरंगे उठीं, वे ही भारत के सांस्कृतिक जागरण की प्रेरणा थीं, जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रवर्तन में कार्य कर रहा था।

## काव्य रूढ़ियों से मुक्ति

भारतीय साहित्य के मध्ययुग के अंत तक काव्य में घटना–वैविध्य तथा विषयवस्तु की नवीनता का नितान्त अभाव एवं इतिवृत्तात्मकता तथा उपदेशात्मकता का आधिक्य था। इन्हीं के पिष्टपेषण के कारण काव्य में नीरसता आ गयी थी। प्रायः कवि गण समस्या–पूर्ति, आशु कविता तथा तुकबन्दी किया

करते थे। ऐसी रचनाओं में काव्यत्व की मात्रा कम तथा चमत्कार की मात्रा अधिक होती थी। इस समय के काव्य–प्रणेताओं में न सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता थी और न सहृदय को रमाने की शक्ति थी। इस समय के काव्य में आडम्बर, बोझिलता, अति अलंकारिता, उपदेश–प्रवणता एवं नीतिमत्ता का प्राधान्य था। ऐसे साहित्य के आस्वादन में बाधा उत्पन्न होने के कारण लोकरूचि में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। देश की संपूर्ण भाषाओं की कविता रूढ़ि की श्रृंखलाओं से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगी।

उन्नीसवीं शती के अंत तक हिन्दी साहित्य रूढ़ि ग्रस्त रहा। ये रूढ़ियॉ अनेक रूपों में साहित्य की गतिविधि को रोक लेती थीं। हिन्दी काव्य–क्षेत्र में रीतिकाव्यों तथा प्रबन्ध काव्यों की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चल रही थी। भारतेन्दु के प्रयासों से कविता राजदरबारों के घेरे से बाहर निकलकर जनता की ओर आकर्षित होने लगी। अधिकांश संस्कृत एवं अंग्रेजी के काव्यों का अनुवाद किया गया। इस युग में पाश्चात्य शिक्षा के साथ साहित्यिकों के संपर्क की वृद्धि होने के कारण पाश्चात्य काव्यों के अनुकरण पर भी काव्य लिखे जाने लगे। पाश्चात्य शिक्षा एवं साहित्य का अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करते हुये भी इस काल की कविता की मूल आधारशिला भारतीय संस्कृति ही है।

इस युग में काव्य क्षेत्र में अनेक परिवर्तन किये गये। रीतिकालीन काव्य भाषा (ब्रजभाषा) को छोडकर खड़ीबोली में कविगण रचना करने लगे। खड़ीबोली का संस्कार कर उसे संस्कृतगर्भित बनाया गया। इस युग में हिन्दी काव्य क्षेत्र में नवीन छन्दों का प्रयोग हुआ। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव को ग्रहण करने वाले अधिकतर कवियों ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग किया। कवित्त, सवैया तथा दोहा आदि रीतिकवियों के प्रयुक्त छन्दों को कोई प्राधान्य नहीं दिया गया। खड़ीबोली में काव्य इस युग में एक नवीन आकार को ग्रहण करने लगा। रीति तथा प्रबन्ध काव्यों में कतिपय धार्मिक रूँढ़ियॉ विद्यमान थीं। नायक और नायिका के रूप में कृष्ण और राधा का आरोप किया जाता था। द्विवेदी युग तक आते–आते विषय–वस्तु को नवीन परिवेश में परखा गया। इस युग में यद्यपि पौराणिक कथाओं तथा ऐतिहासिक वीरों के सम्बन्ध में कविताएं लिखी गयीं, तथापि उनके कथानक को कवियों ने अपनी रूचि के अनुरूप परिवर्तित कर उसे युग की मान्यताओं के साँचे में ढाल दिया। इस युग के कवियों ने नैतिकता

एवं सामाजिक आदर्श को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। ऐसे कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रमुख हैं।

इस युग के हिन्दी काव्य–साहित्य में नव निर्माण की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति अवश्य थी, परन्तु वह प्राचीन काव्य रूढ़ियों को पूर्ण रूप से बदल न सकी। आधुनिक काव्य–साहित्य भी धार्मिक भावना के रूढ़िगत प्रभाव से छूट नहीं पाया था। चरित्रों की अलौकिकता का रूढ स्वरूप अब भी शेष रह गया था। नैतिक एवं उत्साहवर्धक उपदेश देना ही इस युग के काव्य का मुख्य उद्देश्य बन गया था। निष्कर्ष तो इतना ही है कि मध्ययुगीन काव्य रूढ़ियों का कुछ हद तक इस युग ने विरोध किया। इस युग की विद्रोही भावना केवल एक भूमिका मात्र है जो आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ी । इसी समय पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद भी भारतीय काव्य साहित्य पर अपना प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दिखाने लगा। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवकों पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का प्रत्यक्ष प्रभाव कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के माध्यम से पडा। उसी समय पाश्चात्य देशों में प्रचार पाने वाले अनेक कला सम्बन्धी वादों का भी प्रभाव हिन्दी के काव्य साहित्य पर देखने को मिलता है, जिसमें कलावाद, व्यक्तिवाद, प्रतीकवाद तथा अभिव्यंजनावाद प्रमुख हैं।

## निष्कर्ष

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन किसी एक कारण का परिणाम नहीं है। रामधारी सिंह 'दिनकर' का कहना है– 'द्विवेदी युग को समीप देखकर हम आसानी से कह देते हैं कि छायावाद द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया था। किन्तु गहराई से देखने पर यह स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि छायावादी आन्दोलन का मूल इतना समीप नहीं था। मूलतः यह भारत के उस सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम था जिसका प्रवर्तन राजा राममोहन राय ने किया तथा जिसके व्याख्याता केशव चन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीमती एनी बेसेन्ट, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी हुए हैं। कविता का यह प्रयास उस नई मानवता की अभिव्यक्ति का प्रयास था,जिसका जन्म भारत–यूरोप के संपर्क से हुआ था और अंग्रेजी शिक्षा के कारण स्वाधीनता, उदारता, वैज्ञानिकता और बुद्धिवाद विषयक यूरोपीय विचारधाराओं की सहज उत्तराधिकारिणी हो गयी थी।'[47]

वस्तुतः हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का उत्कर्ष बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक के आरंभ से अवश्य होता है, परन्तु इस काव्य धारा के बीज अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य विचारों के भारत में प्रवेश करने के समय से ही स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। यह काव्य धारा यूरोपीय स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा से कई अर्थों में भिन्न भी रही, क्योंकि हिन्दी स्वच्छन्दतावाद एक परतन्त्र देश की उपज था।[48] भारत में इस काव्य धारा का सांस्कृतिक पक्ष अत्यन्त प्रबल रहा है। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है– 'यहॉं राष्ट्रीय से अधिक संपूर्ण सांस्कृतिक जागरण प्रधान है। राष्ट्रीय जागरण वस्तुतः सांस्कृतिक जागरण के अंग के रूप में आता है जो पुनर्जागरण की मूल प्रक्रिया के अनुरूप है। यों कह सकते हैं कि छायावाद की राष्ट्रीयता में आधार राजनीति की अपेक्षा संस्कृति है।[49] अधिकतर स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी काव्य–सर्जना में राजनीतिक प्रभावों को स्थूल रूप में ग्रहण नहीं किया। उनका उपचेतन पूरी तरह राष्ट्रीयता से अभिभूत था। उनकी राष्ट्रीयता भारतीय संस्कृति की गंभीर चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों की भास्वर अनुभूति से सम्पन्न थी।[50]

अस्तु, यह स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य–धारा के प्रादुर्भाव में भारत की समकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों ने कम या अधिक मात्रा में अपना सहयोग दिया है। इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा ने अपना विकास किया।

# संदर्भ


1. नालन्दा विशाल शब्द सागर–संपादक– श्री नवलजी, पृष्ठ–1518
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–409
3. डॉ0 देवराज उपाध्याय–रोमांटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–1
4. डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर–शुद्ध कविता की खोज, पृष्ठ–29–30
5. डा0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल–आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृष्ठ– 325
6. डॉ0 अजब सिंह– आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–1
7. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–हिन्दी का समसामयिक साहित्य, पृष्ठ–54
8. डॉ0 जगदीश गुप्त–स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ–9
9. डॉ0 अजब सिंह–आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–44
10. डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–9
11. डॉ0 देवराज उपाध्याय–रोमांटिक साहित्यशास्त्र (भूमिका–डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ–2
12. डा0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–46
13. डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–10
14. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–घनानंद कवित्त (प्रस्तावना), पृष्ठ –3
15. डॉ0 अजब सिंह–आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–12
16. डॉ0 कृष्ण चन्द्र वर्मा–घनानंद, पृष्ठ–1
17. डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर'–चक्रवाल (भूमिका), पृष्ठ–1
18. डॉ0 जयकिशन प्रसाद–हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–261
19. डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर'–संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ–438–439
20. डॉ0 प्रेमशंकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–64
21. डा0 श्याम सुन्दर दास–हिन्दी साहित्य : आधुनिक काल, पृष्ठ–235

22. डॉ0 सुधीन्द्र–हिन्दी कविता का क्रान्ति युग, पृष्ठ–26

23. डॉ0 रघुवंश–हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियॉं (भूमिका), पृष्ठ–12

24. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–410

25. डॉ0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–260

26. डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित–आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव, पृष्ठ–185

27. डॉ0 रामचन्द्र मिश्र–श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –339

28. डॉ0 नामवर सिंह– छायावाद, पृष्ठ–12

29. डॉ0 नामवर सिंह–आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–17

30. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–409

31. वही, पृष्ठ–439

32. वही, पृष्ठ–442

33. वही, पृष्ठ–443

34. डॉ0 नामवर सिंह–छायावाद, पृष्ठ –15

35. वही, पृष्ठ –14

36. वही, पृष्ठ–16

37. वही, पृष्ठ–16

38. वही, पृष्ठ–16

39. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृष्ठ–512

40. डॉ0 बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–352

41. डॉ0 प्रेमशंकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–9

42. डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–12

43. डा0 प्रेमशंकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–68

44. वही, पृष्ठ–68

45. डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–12

46. डॉ0 रामधरी सिंह 'दिनकर'–संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ–503

47. डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर'–काव्य की भूमिका, पृष्ठ –135–136

48. डॉ0 प्रेमशंकर–हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–109

49. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी–आधुनिक कविता–यात्रा, पृष्ठ–19–20

50. डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा–हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद, पृष्ठ–25

# अध्याय-3

# स्वच्छन्दतावादी काव्य-विवेचन

# अध्याय–3

# स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन

## स्वच्छन्दतावादी काव्य–विवेचन का प्रारंभ

स्वच्छन्दतावादी काव्य के उद्‌भव के साथ ही उसका विवेचन आरंभ हो गया था। स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया। हिन्दी में इस तरह के काव्य के विवेचन का प्रारंभ भी उन्होंने ही किया।

## रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सर्वप्रथम आलोचक हैं, जिन्होंने स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप पर प्रामाणिक रूप से विचार किया है। अपने इतिहास ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल में 'काव्य–खण्ड : नई धारा – द्वितीय उत्थान' के अन्तर्गत उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में अपनी मान्यताओं को इस प्रकार व्यक्त किया है–

"पंडितों की बँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य–धारा के साथ–साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है – ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत काल में स्थिर चली आती हुईं पंडितों की साहित्य भाषा के साथ–साथ लोक भाषा की स्वाभाविक धारा भी बराबर चलती रहती है। जब पंडितों की काव्यधारा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है, तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परम्परा में नया जीवन डालता है। प्राकृत के पुराने रूप से लदी अपभ्रंश जब लद्धड़ होने लगी तब शिष्ट काव्य प्रचलित देशी भाषाओं से शक्ति प्राप्त करके ही आगे बढ़ सका। यही प्राकृतिक नियम काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में भी अटल समझना चाहिए। जब–जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बँधकर निष्चेष्ट और संकुचित होगा, तब–तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।

यह भाव धारा अपने साथ हमारे चिर परिचित पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, जंगल–मैदानों आदि को भी समेटे चलती है। देश के स्वरूप के साथ यह सम्बद्ध चलती है। एक गीत में कोई ग्रामवधू अपने वियोग काल की दीर्घता की व्यंजना अपने चिर–परिचित प्रकृति व्यापार द्वारा इस भोले ढंग से करती है– 'जो नीम का प्यारा पौधा प्रिय अपने हाथ से द्वार पर लगा गया वह बड़ा होकर फूला और उसके फूल भी झड़ गये, पर प्रिय न आया।'

इस भावधारा की अभिव्यंजन प्रणालियाँ वे ही होती हैं जिन पर जनता का हृदय इस जीवन में अपने भाव स्वभावतः ढालता आता है। हमारी भाव प्रवर्तिनी शक्ति का असली भण्डार इसी स्वाभाविक भावधारा के भीतर निहित समझना चाहिए। जब पंडितों की काव्य धारा इस स्वाभाविक भाव धारा से विच्छिन्न पड़कर रूढ़ हो जाती है, तब वह कृत्रिम होने लगती है और उसकी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में इसी भावधारा की ओर दृष्टि ले जाने की आवश्यकता होती है। दृष्टि ले जाने का अभिप्राय है उस स्वाभाविक भावधारा के ढलाव की नाना अन्तर्भूमियों को परखकर शिष्ट काव्य के स्वरूप का पुनर्विधान करना। यह पुनर्विधान सामंजस्य के रूप में हो, अंध प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, जो विपरीतता की हद तक जा पहुँचती है। इस प्रकार के परिवर्तन को ही अनुभूति की सच्ची नैसर्गिक स्वच्छन्दता (ट्रू रोमांटिसिज्म) कहना चाहिए, क्योंकि वह मूल प्राकृतिक आधार पर होता है।"[1]

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उसमें स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं का समावेश हो जाता है। आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल ने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की जीवनी शक्ति और अभिव्यक्ति का आधार लोकभूमि को माना है। उन्होंने यह भी भली भांति स्पष्ट कर दिया है कि परिवर्तन की भावना ही वह मूल प्रेरणा है जो स्वच्छन्दतावादी काव्य का सृजन कराती है। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विवेचन से हम स्वच्छन्दतावाद की आधार भूमि से परिचित होते हैं, जिसके माध्यम से स्वच्छन्दतावादी काव्य की व्याख्या की जा सकती है। फिर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस विवेचन में भी स्वच्छन्दतावाद की सर्वांगपूर्ण व्याख्या नहीं हो पाती। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य के लक्ष्य की ओर कोई संकेत नहीं किया है। स्वच्छन्दतावादी काव्य

की अभिव्यजना पद्धति का भी संकेत उन्होंने अपने विवेचन में नहीं किया है। फिर भी स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में प्रारंभिक विवेचन होने के कारण उनके विवेचन का विशेष महत्व है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद पर भी विचार किया है, किन्तु उसे स्वच्छन्दतावाद से अलग करके देखा। अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'आधुनिक काल–काव्य खण्ड : नई धारा– तृतीय उत्थान' के अन्तर्गत उन्होंने छायावाद पर विचार करते हुए लिखा है– 'अतः इस तृतीय उत्थान में जो परिवर्तन हुआ और पीछे छायावाद कहलाया, वह इसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है।'[2]

आचार्य शुक्ल छायावाद को सच्चे स्वच्छन्दतावाद यानी श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी की काव्य धारा से काटकर अलग कर देते हैं। वे इसे इसाई संतों के छायाभास (फैंटासमाटा) से जोड़कर देखते हैं। वे लिखते हैं– 'गुप्त जी और मुकुटधर पाण्डेय आदि के द्वारा स्वच्छंद नूतन धारा चली ही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढॉचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थीं। परन्तु ईसाई संतों के छायाभास (फैंटासमाटा) तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबलिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थीं। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिंदी के कुछ नये कवि एक बारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इनका दूसरे साहित्य क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का इस पर एक साथ चल पडना और कुछ दिनों तक इनके भीतर अंग्रेजी और बंगला की पदावली का जगह–जगह ज्यों का त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बातें मार्ग की स्वतंत्र उद्भावना नहीं सूचित करती । × × × × × 'छायावाद' नाम चलने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विश्रृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य मानकर चले।'[3]

आचार्य शुक्ल ने छायावाद को रहस्यवाद और प्रतीकवाद से जोड़ कर देखा। उन्होंने लिखा है– 'प्रणय वासना का यह उद्‌गार आध्यात्मिक पर्दे में ही छिपा न रह सका। हृदय की सारी काम वासनाएं इन्द्रियों के सुख विलास की मधुर और रमणीय सामग्री के बीच एक बंधी हुई रुढ़ि पर व्यक्त होने लगी।

इस प्रकार रहस्यवाद से सम्बन्ध न रखने वाली कविताएँ भी छायावाद ही कही जाने लगी। अतः 'छायावाद' शब्द का प्रयोग रहस्यवाद तक ही न रहकर काव्य शैली के सम्बन्ध में भी प्रतीकवाद (सिंबलिज्म) के अर्थ में होने लगा।'[4]

आचार्य शुक्ल के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उन्होंने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को अलग करके देखा । छायावाद को उन्होनें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया माना है। वे छायावाद की विषय वस्तु रहस्यवाद को ईसाई मजहब के छायादृश्य (फैंटामासा) से जोड़ते हैं। छायावाद में प्रतीकवाद (चित्र-भाषावाद), अन्योक्ति पद्धति तथा प्रेमगान को ही मुख्य विषय के रूप में छायावाद की विशेषताएं मानते हैं।

आचार्य शुक्ल की छायावाद सम्बन्धी विवेचना का प्रतिवाद करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है– 'छायावाद की सही विवेचना करने में शुक्ल जी से जो भूल हुई है, उसके मूल में उनके मानस की वह बुनावट है जो द्विवेदी युगीन नैतिक सूत्रों द्वारा ग्रंथित है। उन्होंने उस ऐतिहासिक संस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को सामने नहीं रखा जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन अपने अनेक रूपों में प्रखर से प्रखरतर होता जा रहा था।'[5]

आचार्य शुक्ल के इस कथन का कि छायावाद में नाना अर्थभूमियॉं नहीं हैं, डॉ0 बच्चन सिंह ने प्रतिवाद करते हुये लिखा है– 'शुक्ल जी के मतानुसार छायावाद में नाना अर्थभूमियाँ नहीं हैं, उसमें मुख्यतः प्रेमगान है। पूरा छायावाद काल, जिसे मैं –स्वच्छन्दतावाद काल कहना चाहूँगा, विषयवस्तु, साहित्यिक विधा और भाषा की दृष्टि से इतना वैविध्यपूर्ण है कि आधुनिक काल में उसका जोड़ मिलना कठिन है। कविता के क्षेत्र में भी देश-प्रेम, क्रांतिगीत, मुक्त प्रेम, मानवीय समता, ऐतिहासिक-पौराणिक मिथक, सामंत, साम्राज्यवाद विरोध आदि को समेट लिया गया है। यदि शुक्ल जी ने निराला की कविताओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया होता तो उन्हें अपने नकारात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ता।'[6]

आचार्य शुक्ल की समीक्षा दृष्टि छायावादी काव्य के अनुकूल नहीं थी। फिर भी छायावाद की काव्य शैली की उन्होंने प्रशंसा की है। उनके विवेचन से छायावादी काव्य प्रवृत्ति को समझने में मदद नहीं मिलती, फिर भी उनके विवेचन का ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि छायावाद के वे प्रारंभिक विवेचकों में थे।

उन्होंने छायावाद की प्रकृति सम्बधी कविताओं को पसंद किया है। सुमित्रांदन पंत के काव्य के प्रति उनका विशेष रुझान इसी कारण था।

## मुकुटधर पाण्डेय

स्वच्छन्दतावाद को समझने के लिए मुकुटधर पाण्डेय के विवेचन का विशेष महत्व है। मुकुटधर पाण्डेय छायावाद के आदि व्याख्याता हैं और छायावाद स्वच्छन्दतावाद की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। इस रूप में उनके विवेचन का महत्व बढ़ जाता है। उनका सारा विवेचन छायावाद को लेकर है। वह छायावाद के आदि व्याख्याता ही नहीं छायावाद के प्रारंभिक कवि भी हैं। उनकी अनेक रचनाएं छायावाद के जन्म से एकान्ततः सम्बन्धित हैं। उनकी प्रमुख रचनाएं 'पूजा फूल', 'शैलबाला', 'लच्छमा' 'हृदयगान', 'वीरकाव्य', 'रणाह्वान' आदि हैं। उन्होंने 'श्री शारदा', 'सरस्वती', 'हितकारिणी', 'आर्यमहिला' तथा 'इंदु' जैसी पत्रिकाओं में अपने लेख प्रकाशित करवाये। उस समय शारदा भवन पुस्तकालय, जबलपुर से नर्मदा प्रसाद बी. ए. विशारद के सम्पादकत्व में छपने वाली पत्रिका 'श्री शारदा' में मुकुटधर पाण्डेय ने एक विस्तृत लेखमाला लिखी थी। इसी लेखमाला में छायावाद पर सबसे पहले विधिवत और प्रमाणिक रूप से विवेचन प्रस्तुत किया गया था। यह लेखमाला कवि–स्वातन्त्र्य, छायावाद क्या है, तथा हिन्दी में छायावाद शीर्षक से छपी थी।

'कवि–स्वातंत्र्य' नामक लेख में मुकुटधर पाण्डेय ने कवि के व्यक्तित्व की मौलिकता की अनिवार्यता प्रतिपादित की थी। उनके अनुसार –'मौलिकता का अभाव व्यक्तित्व का बाधक है जो कवि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बिना व्यक्तित्व दिखलाए कवि प्रतिपत्ति किसी को नहीं मिल सकती। वह व्यक्तित्व चाहे भाव में हो, भाषा में हो, छन्द में हो या प्रकाशन रीति में हो, पर कविता में हो जरूर। जिस भी कवि में व्यक्तित्व नहीं, उसे कवि नहीं अनुकरणकारी कहना चाहिये।'

मुकुटधर पाण्डेय ने कवि के लिये जिस मौलिक व्यक्तित्व की अनिवार्यता घोषित की है, उसकी प्राथमिक पहचान अनुभूति की नवीनता से ही हो सकती है। व्यक्तित्व की यह स्वतन्त्रता कवि को रीति से विद्रोह करने पर ही प्राप्त हो सकती है। उन्होंने रीति कवियों की भर्त्सना करते हुये लिखा है– 'एक बात तो जरूर है कि उनके (रीति ग्रंथों के)। फंदे में पड़कर कवि बहुत कुछ परतन्त्र हो बैठता है। उसकी

प्रतिभा स्वतन्त्र उड़ान नहीं ले सकती। वह घेरे से बाहर जाने के लिए पंख फटफटाता है, पर उसके पंखों से लगी हुई रस्सी मानों उसे खींच रखती है।' इस लेख में मुकुटधर जी ने भाषा, छन्द आदि की नवीनता को भी रेखांकित किया है। 'छायावाद क्या है' नामक निबंध में मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद सम्बन्धी स्थिति को ऐतिहासिक परिवेश में समझने का प्रयास किया है। उन्होंने लिखा है– 'अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले सुनते ही समझ जायेगें कि यह शब्द मिस्टिसिज्म के लिये आया है।' छायावाद की अभिव्यंजना–पद्धति के सम्बन्ध में मुकुटधर पाण्डेय की स्पष्ट घोषणा थी कि– 'ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक रूप को खोकर सांकेतिक चिन्ह मात्र ही हुआ करते हैं। यही नहीं यह वक्रता वास्तव में उस असाधारण दृष्टि के साथ अनिवार्य रूप से सम्बद्ध होती है जो छायावादी कवि की संवेदना का मुख्य आधार है। उसकी रचना की संपूर्ण विशेषतायें उसकी दृष्टि पर ही अवलंबित रहती हैं। वह क्षण भर में बिजली की तरह वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है। × × × × × अस्थिरता और क्षीणता के साथ उसमें एक विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है, जिसके कारण वस्तु उसके प्रमुख रूप में नहीं, किन्तु एक अन्य रूप में दीख पड़ती है। × × × × × यथार्थ में छायावाद भाव–राज्य की वस्तु है। उसमें केवल संकेत से ही काम लिया जाता है। भाषा उसमें भाव प्रकाशन का एक गौण साधन मात्र है।' छायावाद के प्रारंभिक दिनों में छायावाद की सूक्ष्म अभिव्यंजना पद्धति जिसका आधार लाक्षणिकता और व्यंजकता थी, नये काव्य के विरोधियों के लिए उसका सबसे दुर्बल पक्ष बनकर आयी थी। मुकुटधर पाण्डेय ने इस विरोध का सामना करने के लिए संतुलित एवं ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दिया। उनके शब्दों में– 'हम यह नहीं चाहते कि वागर्थ प्रतिपत्ति की सरल, सुन्दर, प्रासादिक रचना–प्रणाली को इससे कुछ हानि पहुँचे। × × × × × प्राचीन प्रणाली को किसी तरह की हानि पहुँचाये बिना छायावाद के योग से साहित्य को परिपुष्ट करना ही अभीष्ट होना चाहिये।'

मुकुटधर पाण्डेय ने जब यह लिखा कि 'छायावाद में चित्र दृश्य वस्तु की आत्मा का ही उतारा जाता है', तो वे परम्परागत और स्थापित काव्य–सरणियों की तुलना में छायावाद के क्रान्तिकारी स्वरूप

का उद्घाटन कर रहे थे। कल्पना छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता बनकर आयी थी। सन् 1920 में ही मुकुटधर पाण्डेय ने छायावादी कवियों की कल्पना–प्रियता को पहचान लिया था। उन्होंने लिखा है – 'उनकी (छायावादी कवियों की) कविता देवी की आँखें सदैव ऊपर की ओर ही उठी रहती हैं। मर्त्यलोक से उनका बहुत कम सम्बन्ध रहता है। वह बुद्धि और ज्ञान की सामर्थ्य सीमा का अतिक्रमण करके मन–प्राण के अतीत लोक में ही विचरण करती रहती हैं।' मुकुटधर पाण्डेय ने काव्य में प्रकृति–प्रेम के उपयोग, चित्रकारी और संगीत के अपूर्व एकीकरण आदि पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने अपनी लेखमाला का समापन करते हुए लिखा है– 'छायावाद काव्य–कला का एक अपूर्व निदर्शन है। कवि की लेखनी का चातुर्य और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चमत्कार देखना हो तो छायावाद पढिये। × × × × × छायावाद की आवश्यकता हम इसलिये समझते हैं कि उससे कवियों को भाव प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों, अनेक रीतियों का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।' छायावाद पर मुकुटधर पाण्डेय की लेखमाला वर्ष 1920 में 'श्री शारदा' के अंकों प्रकाशित हई थी।[7]

प्रायः सभी छायावादी कवियों ने छायावाद के सैद्धांतिक पक्ष पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। प्रसाद, निराला, पंत या महादेवी के सामने हिन्दी की छायावादी कविता के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध थे, किन्तु मुकुटधर पाण्डेय छायावाद की प्रारंभिक अवस्था में ही एक प्रकार से छायावाद की जन्म–कुण्डली तैयार कर रहे थे।[8] डॉ0 नामवर सिंह ने मुकुटधर पाण्डेय के निबन्धों के बारे में लिखा है– 'यह छायावाद पर पहला निबंध होने के साथ ही अत्यन्त सूझ–बूझ भरी गंभीर समीक्षा भी है। इस निबंध का ऐतिहासिक महत्व ही नहीं, बल्कि स्थायी महत्व भी है।[9]

## नन्ददुलारे वाजपेयी

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के समर्थ व्याख्याता हैं। उन्होंने रोमांटिक प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की– 'स्वतन्त्रता की लालसा और बन्धनों का त्याग रोमांटिक धारा के मूल में व्याप्त है।'[10] इसी आधार पर वाजपेयी जी ने रोमांटिसिज्म एवं क्लासिज्म (शास्त्रवाद) का भेद भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार 'वह काव्यधारा जो काव्य और कला के व्यक्त सौन्दर्य प्रसाधनों, सुन्दर

शब्दों और आकृतियों आदि का आग्रह करके चलती है, क्लासिज्म की प्रतिनिधि कही जाती है। दूसरी अतिवादी स्थिति तब आती है जब वह निर्माण–सम्बन्धी नियमों से बँध जाती है और स्वतन्त्रता पूर्वक हाथ–पैर भी नहीं हिला सकती। इस प्रकार जो काव्यधारा अत्यन्त अनियमित पद्धति, संयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमांटिक गति की सूचक है। काव्य में भावना के अतिरेक से जो असंयम आता है, नियमों की जो अवहेलना होती है, रोमांटिसिज्म की अति की परिचायक है। एक में (क्लासिज्म अतिवाद में) काव्य के शरीर पक्ष का आग्रह सीमा को पार कर जाता है और दूसरे में (रोमांटिक अति में) शरीर पक्ष या आकृति की पूर्ण उपेक्षा होने लगती है। एक में काव्यगत भाव की उपेक्षा है, दूसरे में भावुकता की अत्यन्त अराजक स्थिति है।'[11]

रोमांटिक विषय–वस्तु के सम्बन्ध में वाजपेयी जी की मान्यता है कि रोमांटिक कवि सर्व साधारण लोगों से लेकर छोटी सी छोटी वस्तुओं तक को अपने काव्य का विषय बना सकता है। उन्होंने लिखा है–'रोमांटिसिज्म की वस्तु का उदात्त होना आवश्यक नहीं। साधारण से साधारण वस्तु में ही काव्यात्मक चित्रण बनने की क्षमता है। यह स्वच्छन्दतावादी मत है।'[12]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य को विशेषकर छायावादी काव्य को कई स्तरों पर जानने पहचानने की चेष्टा की। उन्होंने इस बात का जोरदार खण्डन किया कि स्वच्छन्दतावादी काव्य यूरोपीय रोमांटिक काव्य प्रभाव की उपज है। वाजपेयी जी ने छायावाद के सांस्कृतिक परिवेश को विश्लेषित किया। वाजपेयी जी का मानना था कि प्रत्येक साहित्य आन्दोलन अपने समय और समाज को नजरअंदाज नहीं कर सकता और इसी संदर्भ में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय जीवन की पृष्ठभूमि पर छायावाद की परीक्षा की। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य को भारतीय नवजागरण से जोड़ने के कारण उन्होंने एक साथ कई भ्रान्तियों का निराकरण किया। छायावादी काव्य मूलतः अपने देश की उपज है, इस मान्यता को उन्होंने बार–बार प्रतिपादित किया। वाजपेयी जी ने 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' की विज्ञप्ति में घोषणा की– 'छायावाद युग को चाहे जिस नाम से पुकारिये, इसका एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। राष्ट्रीय इतिहास में जिन अस्पष्ट प्रेरणाओं से यह उत्पन्न हुआ और जिस आवश्यकता की पूर्ति इसने की, उसकी ओर ध्यान न देना आश्चर्य की बात होगी। हिन्दू जाति के नाना भेदों –प्रभेदों के बीच एक संघटित

जतीयता का निर्माण, हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई आदि विभिन्न धर्मानुयायियों में एक अन्तर्व्यापी मानव–सूत्र का अनुसंधान, राष्ट्र–राष्ट्रों के बीच खाईयॉ पाटना आदि महायुद्ध के पश्चात् अपने देश के सामने ये प्रधान प्रश्न थे। देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न भी कुछ कम प्रधान न था, पर वह जातीय और राष्ट्रीय एकसूत्रता के आधार पर ही खड़ा हो सकता था और अन्तर्राष्ट्रीय मानव–साम्य का एक अंग बनकर ही शोभा पा सकता था। यह सम्मिलन और सामंजस्य की भावना भारतीय संस्कृति की चिरकाल की विशेषता रही है, इसलिए महायुद्ध की शान्ति के पश्चात् ये प्रश्न सामने आते ही वह सांस्कृतिक प्रेरणा जाग उठी और तीव्र वेग से तत्कालीन काव्य और कलाओं में अपनी अभिव्यक्ति चाहने लगी।'[13]

छायावाद को राष्ट्रीय जागरण की प्रतिध्वनि कहकर उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के साथ राष्ट्रीय चेतना का सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने स्वीकार किया कि जिस युग में छायावादी काव्य रचा जा रहा था वह मुख्यतः साहित्यिक और सामाजिक परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का युग था। वाजपेयी जी ने छायावाद की विद्रोह की प्रवृत्ति का संकेत करते हुये स्पष्ट किया कि इस विद्रोह का स्वरूप कवि–स्वातन्त्र्य पर आधारित है। उन्होंने लिखा है– 'ऐसी अवस्था में काव्य और साहित्य का स्वरूप व्यक्ति मुखी होने को बाध्य था। × × × × × कविता की वाणी में संगीत है, उल्लास है, विद्रोह है और नव–निर्माण की उत्कट अभिलाषा है, परन्तु जागृति की यह चेतना व्यक्तिनिष्ठ और आदर्शोन्मुख है।'[14]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावादी काव्यान्दोलन का समग्र विवेचन करने का प्रयास किया, उसे परिभाषित करने का प्रयास नहीं किया है। उन्होंने लिखा है– 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।'[15]

## हजारीप्रसाद द्विवेदी

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार महत्वपूर्ण हैं। रोमांटिसिज्म काव्यधारा के कवि के वैयक्तिक पक्ष तथा उसकी भाव प्रवण दृष्टि की विवेचना करते हुए द्विवेदी जी का

कथन है– 'रोमांटिसिज्म साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट निविड़ आवेग की प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड आवेग– ये दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियॉ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की जननी है, परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि ये दोनों एक दूसरे से अलग रहकर काम करती हैं।'[16]

इस प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रोमांटिक साहित्य की रचना के लिये कल्पनाशीलता पर अत्यधिक बल दिया है। उनका मत है कि कल्पना की सहायता से ही आंतरिक अनुभूतियॉ अभिव्यक्ति पाती हैं। रोमांटिक साहित्य वस्तुतः जीवन के उस आवेगमय पहलू पर जोर देने के कारण अपना वह रूप धारण कर सका है जो अन्तर्दृष्टि द्वारा चालित एवं प्रेरित होता है।[17]

अन्य आलोचकों के विपरीत द्विवेदी जी रोमांटिक काव्य के मूल में विद्रोह की भावना नहीं मानते। उनका मत है कि रोमांटिक काव्य में विद्रोह की जो भावना परिलक्षित होती है वह आंतरिक न होकर बाह्य परिस्थिति जन्य होती है। इस प्रसंग में द्विवेदी जी का कथन है कि 'व्यक्ति की स्वतन्त्र अनुभूति तो कल्पना और आवेग के माध्यम से ही प्रकट होती है और जब वह प्रकट होती है तो नीति और सदाचार के परिपाटी विहित मानों से सब समय उसका सामंजस्य नहीं होता। कई बार उसे ऊपरी सदाचार के विरुद्ध विद्रोह करना पडता है। परन्तु यह विद्रोह उसका मूल स्वर नहीं है। × × × × × यह भली–भाँति समझ लेना चाहिये कि यह विद्रोह केवल विशेष प्रकार की वैयक्तिक दृष्टिभंगी के साथ परिपाटी विहित रसास्वादन का सामंजस्य न हो सकने का वाह्य रूप मात्र है।'[18]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रोमांटिक काव्य की वर्ण्य–वस्तु, रोमांटिक कवि की प्रवृत्ति तथा रोमांटिक काव्य की अभिव्यक्ति शैली पर भी विशदता से विचार किया है, इस सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रकट हुए उन्होंने लिखा है– 'रोमांटिक कवियों द्वारा निबद्ध वक्तव्य वस्तु प्रतिपादित सामग्री में निम्नलिखित बातें बतायी जाती हैं–

1. शास्त्र बहिर्भूत कल्पित देशों, मध्ययुग या अतीत युग के शास्त्रीय गौरव के आकर्षक दृश्य तथा मोहक संस्कृति का लोभनीय चित्रण।

2. सामान्य की अपेक्षा विशेष पर जोर, रंगगत सामंजस्य की अपेक्षा उत्तेजक एकांगी रंगों पर बल देना।
3. प्रकृति को व्यक्तिगत और अव्यवहृत प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय समझना और विशेष रूप से उसके उद्धत और उद्दाम वेग वाले रूप पर बल देना।
4. रहस्यवाद और अति प्राकृत तत्व में विश्वास।
5. कालरात्रि, शासन, मकबरा, विनाश, नियति चक्र, प्रलय, झंझा आदि का भूरिशः आक्रमण।
6. स्वप्न लोक, अवचेतन और आवेशावस्था की बातें।

छायावादी काव्य की प्रवृत्तियों का छयावादी कवियों की प्रवृत्तियों से अधिक मेल है। ये प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. अत्यन्त वैयक्तिक दृष्टिकोण।
2. इनके द्वारा निबद्ध नायक या तो वेदना ग्रस्त विरक्त, क्लांत, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति होता है या समाज के विरुद्ध भभकता हुआ विद्रोही। दोनों ही अवस्था में उसका व्यक्तित्व रहस्यमय होता है।
3. वह तर्क की अपेक्षा भावावेग को, यथार्थ की अपेक्षा आदर्शवाद को, परिस्थितियों से समझौता करने की अपेक्षा महत्वाकांक्षा को अधिक गौरव देता है।

जहाँ तक अभिव्यक्ति–शैली (काव्य के साधन) का प्रश्न है, रोमांटिक कवि–

1. नियमों और रुढ़ियों से स्वतन्त्र रहने का दावा करता है।
2. स्वतः प्रत्यक्ष भावावेग पर बल देता है।
3. दिवास्वप्न जैसी अलीक कल्पना या असंलग्न चित्त प्रवाह, अस्पष्टता, युग पद सौन्दर्यानुभूति तथा कलात्मक प्रक्रिया की पौनः पुनिकता की ओर प्रवृत्त होता है।'[19]

आचार्य द्विवेदी छायावाद को एक मानवीय भूमि का काव्य घोषित करते हैं और उनकी मान्यता है कि उसमें जो जीवन व्याप्त है, उसे देखते हुए यह शब्द उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं कर पाता। छायावाद शब्द से जो वायवीयता की व्यंग्य भरी ध्वनि आती है, वह एक प्रकार से इस काव्य के साथ अन्याय है। छायावाद की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है–'छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक

चेतना का परिणाम था जिसमें कवियों की भीतरी आकुलता ने ही नवीन भाष–शैली में अपने को अभिव्यक्त किया। इन सभी उल्लेखनीय कवियों में थोड़ी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी। जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रुढियों के विद्रोह का भाव दिखाया था, उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।'[20]

छायावादी काव्य को भारतीय चिन्ताधारा के स्वाभाविक विकास के रूप में ग्रहण कर द्विवेदी जी उसे गौरव प्रदान करते हैं और कई प्रचलित भ्रान्तियों से मुक्ति दिलाने में हमारी सहायता करते हैं। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद अथवा रोमानी काव्य और छायावादी काव्य में अभेदत्व स्थापित किया। उनका विचार था कि एक ओर छायावादी कवि युग परिचालित था दूसरी ओर उसकी सौन्दर्योन्मुखी चेतना के कारण उसके वैयक्तिक संवेदन भी सक्रिय थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कवि अपनी समग्र मानवीय दृष्टि के बावजूद कल्पना की भूमियों पर भी विचरण करने लगा। वे अतिरिक्त कल्पनाशीलता को छायावादी काव्य की एक दुर्बलता मानते हैं, क्योंकि इससे उसकी एक सीमा रेखा बन गयी।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावाद युग के विभिन्न पक्षों पर अलग–अलग न विचार करके उसे एक साथ देखना चाहा और इसी कारण कवियों के विषय में उनकी विस्तृत समीक्षाएं नहीं मिलती। 'हिन्दी साहित्य' नामक ग्रंथ में उन्होंने छायावादी कवियों पर अपनी समीक्षाएं प्रस्तुत की है। मानवतावाद की दृष्टि से छायावाद के महत्व को उन्होंने रेखंकित किया। उन्होंने स्वीकार किया है कि काव्य का मानवीयता से घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध है। आचार्य द्विवेदी अपने लेखन में बार–बार आग्रह करते रहे हैं कि मानव सत्य सर्वोपरि सत्य है और इसीलिए मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।[21]

आचार्य द्विवेदी की मान्यताओं की अपनी सीमाएं हैं तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि द्विवेदी जी रोमांटिसिज्म की मूल प्रेरणा को पकड़ सके हैं। उनके विवेचन से स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्ति को अधिक स्पष्टता से समझने में सहायता मिली है।

## नगेन्द्र

डॉ0 नगेन्द्र ने स्वच्छन्दतवादी काव्य का विवेचन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। इसके लिए उन्होंने यूरोपीय साहित्य के अपने गहरे अध्ययन का भी उपयोग किया। उन्होंने छायावाद को 'स्थूल से

विमुख होकर, सूक्ष्म के प्रति आग्रह' कहकर सम्बोधित किया। छायावाद की विवेचना करते हुये उन्होंने सर्वप्रथम उसकी सामाजिक पीठिका का संकेत किया। उनका विचार है कि छायावाद की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का कारण यह है कि राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अभिव्यक्ति का अवसर कम था।[22] अन्तर्मुखी भावना, व्यक्तिवादिता श्रृंगारिकता, प्रकृति पर चेतना का आरोप आदि को उन्होंने मुख्य प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। उनका मानना था कि एक ओर यदि छायावादी काव्य में 'आशा के स्वप्न' थे तो दूसरी ओर 'निराशा के छायाचित्र' भी विद्यमान थे और इनकी काव्यगत समष्टि ही छायावाद है। सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप में डॉ0 नगेन्द्र ने प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप जमने वाली यूरोपीय निराशा के विरोध में भारतीय जनमानस की नयी इच्छा–अभिलाषाओं की ओर भी संकेत किया। भारत नये कल्पना–जगत में तैरना चाहता था और उसमें अनेक आशा–आकांक्षाएं जाग रही थीं, पर इस भावना को कार्य रूप में बदल सकना आसान नहीं था। साम्राज्यवादी शिकंजा देश की विद्रोही चेतना को सामाजिक स्तर पर दबा देने के लिए प्रस्तुत था। साथ ही देश के प्रबल नैतिक बन्धन व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन में भी उतनी आजादी देने के लिए प्रस्तुत न थे, जितनी किसी नये रचना–आन्दोलन के लिए अनिवार्य होती है। इसी कारण छायावादी काव्य एक ओर कल्पना की नयी दुनिया बसाता है, तो दूसरी ओर वह भीतर–भीतर कुंठित होता है। डॉ0 नगेन्द्र ने सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप में जो रुख अपनाया, उसे उन्होंने मनोविज्ञान के सहारे भी प्रमाणित करने की चेष्टा की और इस प्रकार छायावाद सम्बधी अपने काव्य–चिंतन को एक तर्किक समापन देने की कोशिश की।

डॉ0 नगेन्द्र ने छायावाद की अन्तर्मुखी दृष्टि और यथार्थ को वायवी अथवा अतीन्द्रिय रूप देने की प्रवृत्ति को उसकी मुख्य बनावट के रूप में प्रतिपादित किया। इसलिये व्यक्तिवाद को उन्होंने छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के शीर्ष पर रखा और अन्य सभी प्रवृत्तियों को भी अन्तर्मुखी दृष्टि के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। छायावादी काव्य की व्यक्तिवादिता, श्रृंगारिकता के लिए डॉ0 नगेन्द्र ने मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए उसे कवि की व्यक्तिगत कुंठाओं से जोड़ दिया। उन्होंने लिखा है– 'छायावाद की कविता प्रधानतः श्रृंगारिक है, क्योंकि उसका जन्म हुआ है, व्यक्तिगत कुंठाओं से, और व्यक्तिगत कुंठाएं प्रायः काम के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं।'[23]

डॉ0 नगेन्द्र ने फ्रायड के मनोविज्ञान को आधार बनाकर काम को मूल प्रवृत्ति मानकर छायावादी काव्य की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि छायावाद का काव्य प्रथम श्रेणी का विश्व–काव्य नहीं है। कुन्ठा की प्रेरणा प्रथम श्रेणी के काव्य को जन्म नहीं दे सकती। आज हम इस स्थिति में हैं कि समस्त रचना की परीक्षा मनोविश्लेषण के सहारे कर सके हैं, पर हमें देखना यह है कि लेखक अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से ऊपर उठ सकने की कितनी सामर्थ्य रखता है और इसी पर रचना का बनना–बिगडना निर्भर करता है।

डॉ0 नगेन्द्र के सामने छायावाद की आध्यात्मिक चेतना विद्यमान थी और इसके विश्लेषण के लिये उनहोंने उसे भारतीय अद्वैतवाद से जोड़ा। उन्होंने यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि आध्यात्मिकता छायावादी काव्य का मूल प्रस्थान बिन्दु नहीं है, वह किन्हीं दबावों के कारण धीरे–धीरे उसमें प्रवेश करती गयी है। इसका एक कारण यह भी है कि कवि की चेतना बहिरंग जीवन से सिमटकर अंतरंग जीवन में प्रवेश कर गयी थी। उन्होंने मध्ययुगीन आध्यात्मिकता और रहस्यवादिता से छायावाद का अन्तर स्पष्ट किया है– 'छायावाद की रहस्योक्तियॉ एक प्रकार से जिज्ञासाऍ हैं, जो छायावाद के उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिक दर्शन के द्वारा और भी पुष्ट हो गयी हैं, परन्तु वे धार्मिक साधना पर आश्रित नहीं है। उनका आधार कहीं भावना, कहीं दर्शन–चिन्तन और आरंभ में कहीं–कहीं मन की छलना भी है।'[24]

डॉ0 नगेन्द्र ने छायावाद के भाव जगत को अनुभूत दुनिया बताया है। वे उसकी अतिशय कल्पनाशीलता की ओर इशारा करते है। उन्हानें छायावाद के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियों का निराकरण करने की चेष्टा भी की। उन्होंने छायावाद, रहस्यवाद में अन्तर स्पष्ट किया। इसी प्रकार यूरोप की रोमानी कविता और छायावादी काव्य में परिस्थितिजन्य अन्तर को भी रेखांकित किया। उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इस भ्रान्ति का भी निराकरण किया कि अभिव्यंजनावाद प्रतीकवाद आदि की भॉति छायावाद शैली का एक प्रकार मात्र है। डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद के सम्बन्ध में लिखा है– 'इस कविता ने जीवन के सूक्ष्मतम मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा द्वारा नवीन सौन्दर्य चेतना जगाकर एक वृहत समाज की अभिरूचि का परिष्कार किया और उसकी समृद्धि की समता हिन्दी का केवल भक्तिकाव्य ही कर सकता है।'[25]

# छायावादी कवियों का काव्य–विवेचन

छायावादी कवियों ने फुटकल निबंधों–लेखों के रूप में, काव्य–संग्रहों की भूमिकाओं में स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

## जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने अपने निबंध–संग्रह 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' में अपनी काव्य सम्बन्धी मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। उन्होंने अपनी इस धारणा को प्रस्तुत करते हुये लिखा है–

'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन–क्रिया जो वांगमय रूप में अभिव्यक्ति होती है, वह निःसंदेह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।'[26]

यहाँ आत्मा कवि के आत्म–सेल्फ के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। संकल्पात्मक अनुभूति से कवि का अभिप्राय उस अनुभूति विशेष से है जो कल्याणमय और लालित्यपूर्ण है जिसे उन्होंने श्रेय और प्रेय से अभिहित किया है। साथ ही, यह अनुभूति विज्ञान या शास्त्र सुलभ विश्लेषण, व्याख्या, विवेचन और तर्क–वितर्क से भी मुक्त होनी चाहिए।

प्रसाद के अनुसार अनुभूति का संकल्पात्मक रूप उस समय व्यक्त होता है जब आत्मा की चिन्तन शक्ति अपनी विशिष्ट अवस्था में सत्य के कल्याणकारी रूप को संपूर्ण सौन्दर्य के साथ ग्रहण कर लेती है। लेकिन यह मनन शक्ति प्रत्येक स्थिति में सत्य के श्रेय पक्ष को उसके मूल सौन्दर्य में ग्रहण नहीं कर पाती। क्षण विशेष में ही, जिसे चिन्तन की विशिष्ट अवस्था माना गया है, सहसा कल्याणमय सत्य के सौन्दर्य की अनुभूति हो जाती है। इसी विशिष्ट अनुभूति को उन्होंने संकल्पात्मक कहा है। संकल्पात्मक विशेषण केवल विकल्पात्मक के विलोम के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया है, अपितु यह एक विशिष्ट अर्थ भी व्यंजित करता है। भावात्मक धरातल पर जब सत्य शिव और सुन्दर के साथ उद्भासित होता है तब इसे संकल्पात्मक अनुभूति कहा जाता है। काव्य इसी की अभिव्यक्ति है। लेकिन यह उद्भासित होना

संयोग विशेष पर निर्भर करता है जिसे प्रसाद जी ने 'असाधारण अवस्था' कहा है। उन्होंने लिखा है– 'संकल्पात्मक मूल अनुभूति कहने से मेरा जो तात्पर्य है, उसे भी समझ लेना होगा। आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में मूल संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।'[27]

असाधारण अवस्था से भी प्रसाद का विशिष्ट अभिप्राय है–'असाधारण अवस्था युगों की समष्टि अनुभूतियों में अन्तर्निहित रहती है, क्योंकि सत्य और श्रेय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं, वह एक शाश्वत चेतनता है या चिन्मयी ज्ञान–धारा है जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है।'[28]

प्रसाद के अनुसार श्रेय और सत्य निजी सम्पत्ति नहीं है, ये चिरन्तन चेतना धारा के रूप में युगों से सृष्टि में प्रवाहित हो रहे हैं। इस प्रकार युग में, समग्र रूप से जो अनुभूति प्रवाहमान होती है, उसी में यह असाधारण अवस्था समाविष्ट रहती है। युग की यह समग्र अनुभूति प्रवाहमान होने के कारण व्यक्ति विशेष में केन्द्रित तो रहती है लेकिन उसके नष्ट हो जाने पर वह सूक्ष्म रूप में स्थित रहती है। अतः प्रसाद के अनुसार चिन्तन के विशिष्ट क्षणों में आत्मा की ऐसी अनुभूति जो सत्य से शिव को सौन्दर्य रूप में ग्रहण करती है, काव्य के सन्दर्भ में संकल्पात्मक अनुभूति कहलाती है। इसे विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से इसलिए भिन्न माना है कि विश्लेषण आदि का सत्य श्रेयस्कर तो होता है लेकिन प्रेयमय नहीं होता है। उनका मानना था कि तर्को की परीक्षा करते–करते शास्त्रों में चारूत्व का अभाव हो जाता है जबकि संकल्पात्मक अनिभूति श्रेय सत्य को प्रेय रूप में ग्रहण करती है।

संकल्पात्मक अनुभूति के कारण ही काव्य को प्रसाद ने श्रेय युक्त प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा माना है। कवि के विचार से कविता ज्ञान की ऐसी सलिला है, जो शास्त्रीय और आलोचनात्मक न होकर रचनात्मक–क्रियेटिव है। प्रमुखतः यह प्रेय अर्थात् रसमय ज्ञान धारा है लेकिन इसमें श्रेय का भी उचित अनुपात में समावेश किया गया। लालित्य को कल्याण से समन्वित कर प्रसाद ने इसे व्यापकता प्रदान की है। काव्य के श्रेय और प्रेय के उस सम्बन्ध की सहजता के विषय में उन्होंने लिखा है–

'काव्य में जो आत्मा की मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है, वही सौन्दर्यमयी और संकल्पात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है। वह आकार वर्णात्मक रचना–विन्यास में कौशल पूर्ण होने के कारण प्रेय भी होता है।'[29]

प्रसाद के अनुसार सौन्दर्यमयी संकल्पात्मक अनुभूति अपनी श्रेय स्थिति में आकर्षक रूप में अभिव्यक्त होने के कारण प्रेय भी हो जाती है। एक अन्य विशिष्ट तथ्य की ओर भी प्रसाद ने संकेत किया है कि केवल अभिव्यक्ति का सौन्दर्य ही अनुभूति को हृदयग्राही नहीं बना पाता, इसके लिए अनुभूति का मर्मस्पर्शी होना अत्यन्त आवश्यक है। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों के सौन्दर्य तत्व मिलकर ही रचना को असाधारण आकर्षण प्रदान करते हैं।

काव्य के सम्बन्ध में अपनी मान्यताओं के बाद प्रसाद जी ने छायावाद पर विचार किया है। उन्होंने हिन्दी के वर्तमान युग की दो प्रधान प्रवृत्तियों की चर्चा की है। ये दो प्रवृत्तियॉ हैं–यथार्थवाद और छायावाद। उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से यथार्थवाद का आरंभ माना। आज हम जिस अर्थ में 'यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसमें सामाजिक यथार्थ और उसके प्रमाणीकरण का आग्रह रहता है। प्रसाद जी ने लिखा है– 'यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है– लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है।'[30] लघुता में वे व्यक्तिगत जीवन के दुख और अभावों का वास्तविक उल्लेख सम्मिलित कर लेते हैं और यह छायावाद का मुख्य प्रस्थान बिन्दु है। प्रसाद ने काव्य में वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियों का काफी प्रयोग किया है। यथार्थवाद को इतिहास की सम्पत्ति मानते हुए वे साहित्य में आदर्शवाद की भी स्थिति स्वीकार करते हैं।

प्रसाद ने छायावादी काव्य को स्वानुभूति का प्रकाशन मानकर यह प्रमाणित किया है कि आरंभ में इसने भारतीय साहित्यिकता का अनुसरण किया। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने आनन्द वर्धन, भवभूति, कुन्तक, अभिनव गुप्त आदि के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने लिखा है–

'प्राचीन साहित्य में छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरंभ हुये तो कुछ लोग चौंके सही, परन्तु विरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस ढंग को ग्रहण करना पड़ा। कहना न होगा कि ये अनुभूतिमय आत्म स्पर्श काव्य–जगत के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। काकु या श्लेष

की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। बाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आंतर की ओर चल पडी थी।' उन्होंने आगे लिखा है– 'जब 'वहति विकल कायो न मुंचति चेतनाम' की विवशता वेदना को चैतन्य के साथ चिर बंधन में बॉध देती है, तब वह आत्म स्पर्श की अनुभूति सूक्ष्म अंतर भाव को व्यक्त करने में समर्थ होती है। ऐसा छायावाद किसी भाषा के लिए शाप नहीं हो सकता। भाषा अपने सांस्कृतिक सुधारों के साथ इस पद की ओर अग्रसर होती है–उच्चतम साहित्य का स्वागत करने के लिए। हिन्दी ने आरंभ के छायावाद में अपनी भारतीय साहित्यिकता का ही अनुसरण किया। कुंतक के शब्दों में, 'अतिक्रांत प्रसिद्ध व्यवहार सरणि' के कारण कुछ लोग इस छायावाद में अस्पष्टतावाद का भी रंग देख पाते हैं। हो सकता है, जहॉ कवि अनुभूति से पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो, वहाँ अभिव्यक्ति विश्रृंखल हो गयी हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो, परन्तु सिद्धांत में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, छाया–मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है, हॉ, मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया का प्रतिविम्ब है, इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धांत भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का अवलंबन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य धारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से संबंध रखने वाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।'[31]

प्रसाद जी ने छायावाद पर निष्कर्षात्मक टिप्पणी करते हुये लिखा है– 'छाया–भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की निवृत्ति छायावाद की विशेषताएं हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आंतर स्पर्श करके समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति–छाया कांतिमयी होती है।'[32]

प्रसाद ने वैयक्तिक अनुभूति के प्रकाशन की विशिष्ट प्रणाली का भी समावेश किया है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के मतानुसार प्रसाद की काव्य–विषयक मान्यता में नवीन उद्‌भावनाएँ हैं।[33] इसी प्रकार डॉ0 सूर्य प्रसाद दीक्षित ने प्रसाद की काव्य विषयक व्याख्याओं को सर्वथा नवीन माना है।[34]

निष्कर्षतः प्रसाद की काव्य–विषयक मान्यताओं से छायावादी काव्य को समझने में मदद मिलती है।

## सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के विद्रोही व्यक्तित्व की छाया उनके चिंतन पर भी विद्यमान है। छायावादी कविता से सहानुभूति न रखने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर निराला ने साहित्यिक व्यंग्य वाण छोडे। 'प्रबन्ध प्रतिमा' के 'साहित्य की नवीन पद्धति' लेख में निराला 'सुधा' नामक पत्र में प्रकाशित उस कविता को उद्धृत करते हैं जिसमें छायावादी कविता की भर्त्सना की गयी है। इस लेख में निराला जी ने लिखा है– 'शुक्ल जी गद्य में लिखें, हम उन्हें उत्तर देने को तैयार हैं, अवश्य पद्य में इस तरह की बकवास करना हम नहीं जानते।'[35] निराला ने छायावाद की जो विवेचना की उससे प्रसाद की छायावाद की विवेचना में कुछ बिन्दु जुड़े। जहॉ प्रसाद ने छायावाद को भारतीय चिन्तनधारा का स्वाभाविक विकास कहकर विवेचित किया था, वहॉ निराला ने उसके सांस्कृतिक संदर्भो की तलाश की और उसे भारतीय नवजागरण से जोड़ा। बंगाल भारतीय नवजागरण की जन्मभूमि रही है। निराला का बंगाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'रवीन्द्र–कविता–कानन' के आरंभ में रवीन्द्रनाथ टैगोर का परिचय देते हुये सर्वप्रथम निराला ने बंगाल के नवजागरण का वर्णन किया और उस प्रशस्त पृष्ठभूमि पर कवि को प्रस्तुत किया, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, हेमचन्द, बंकिम चन्द चटर्जी, नवीन चन्द, माइकेल मधुसूदन दत्त, द्वारकानाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ टैगोर आदि की सामाजिक जागरूकता का उल्लेख किया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ने ब्रह्म समाज के माध्यम से बंगाली जीवन को बहुत प्रभावित किया। 'रवीन्द्र–कविता–कानन' में विवेचित सांस्कृतिक नवजागरण निराला के लिए केवल रवीन्द्रनाथ टैगोर के सृजन की ही भूमिका नहीं है, वह छायावादी काव्य की भी प्रेरणा–भूमि है। निराला बंगाल के नवजागरण के दो प्रमुख स्वर रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द से प्रभवित होते हैं।

छायावादी काव्य को निराला जी ने नवजागरण से सम्बद्ध किया, इसलिये इस काव्य की ऐतिहासिक अनिवार्यता की ओर संकेत किया। निराला जी छायावाद को एक जागरण मानते हैं। 'परिमल' की भूमिका के आरंभ में वे लिखते हैं– 'यह हिन्दी के उद्यान में अभी अभी प्रभातकाल ही की स्वर्णच्छटा फैली है। × × × × × इसलिए अभी जागरण के मनोहर चित्र, आह्लाद–परिचय आदि जीवन

के प्राथमिक चिन्ह ही दीख पड़ते हैं। × × × × × परन्तु ऐसा जान पडता है कि इस जीवन के भीतर से शीघ्र ही एक ऐसा आवर्त उठने वाला है।'[36] भूमिका में निराला जी खड़ीबोली की इस कविता को प्रभात की उज्ज्वल किरणों से प्रकाशित मानकर महामना मदनमोहन मालवीय तथा लोकमान्य तिलक का भी उल्लेख इस स्थल पर करते हैं, जिससे काव्य को सांस्कृतिक जागरण से जोड़ने का उनका आशय स्पष्ट होता है। निराला निश्चय ही अपने वर्तमान से संतुष्ट नहीं है, जैसा कि उनके 'वर्तमान हिन्दू समाज' निबंध से स्पष्ट है। वे सवर्णों को पूर्व सभ्यता का ध्वंसावशेष मात्र मानते हैं और कहते हैं–

'अब जिस जागरण की आशा से पूर्वाकाश अरुण हो रहा है, उसमें सबसे पहले तो वे ही जातियॉ जागेंगी जो पहले की सोयी हुई शूद्र अन्त्यज जातियाँ हैं।'[37]

निराला की सांस्कृतिक दृष्टि में दो नये तत्व सम्मिलित होते हैं– राष्ट्रीय चेतना और प्रगतिशीलता।

निराला ने यह स्थापना की कि काव्य का महान सांस्कृतिक आशय है। उन्होंने काव्य को जीवन संदर्भों से जोड़ा और इस क्षेत्र में उनका चिंतन प्रसाद, पंत दोनों से अधिक प्रगतिशील कहा जायेगा। निराला की सांस्कृतिक दृष्टि जीवन–सापेक्ष है। साहित्य की मुक्ति उनके काव्य में दीख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति प्रयास का पता चलता है। इस दृष्टि से मुक्त छन्द के विषय में दिया गया उनका वक्तव्य ऐतिहासिक बयान है जहॉ वे छन्द को शास्त्र और पिंगल की पण्डिताऊ पोथियों से बाहर निकालकर आधुनिक भारत से जोडते हैं और उसे एक नये अर्थ का वाहक बनाते हैं। वे लिखते हैं–

'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है।'[38]

यहाँ पर निराला स्वच्छन्दतावाद की स्वतन्त्र दृष्टि का संकेत भी करते हैं। उन्होंने मुक्तक काव्य का विवेचन करते हुए लिखा है कि उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है। यही निराला की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि है।

निराला ने काव्य की स्वच्छन्दतावादी चेतना को वैदिक साहित्य से जोड़ा। उन्होंने लिखा है– 'वैदिक साहित्य–काव्य में इस प्रकार की स्वचछन्द सृष्टि को देखकर हम तत्कालीन मनुष्य स्वभाव की

मुक्ति का अंदाज लगा लेते हैं।' वे यह भी कहते हैं कि स्वच्छन्दता की जगह नियन्त्रण और अनुशासन उसके कमजोर होने के लक्षण हैं, जैसे–मकडी अपने ही जाल में फंस कर रह जाती है। आधुनिक परिवेश की चर्चा करते हुये उन्होंने परिमल की भूमिका में लिखा है–

'यही हाल वर्तमान समय में हमारे काव्य–साहित्य का है। इस समय के और पराधीन काल के काव्यानुशासनों को देखकर हम जाति की मानसिक स्थिति को भी देख ले सकते हैं। अनुशासन के समुदाय चारों तरफ से उसे जकड़े हुये हैं। साहित्य के साथ–साथ राज्य, धर्म, समाज, व्यवसाय सभी कुछ पराधीन हो गये हैं।' निराला आगे लिखते हैं– 'अब उसे अपनी मुक्ति के लिए उन तमाम बंधनों को पार करना होगा। × × × × × क्योंकि नियम और अनुशासन भी सीमा के ही परिचायक होते हैं।'[39]

छायावृत्ति की खोज वैदिक साहित्य से करने वाले निराला ने छायावाद को सौन्दर्यवाद के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने छायावाद को भारतीय मनीषा का एक सनातन संस्कार घोषित किया।

## सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य सम्बन्धी विचार 'पल्लव' 'युगवाणी', 'आधुनिक कवि', 'चिदम्बरा' आदि में मिलते हैं। पन्त की काव्य सम्बन्धी मान्यताओं में बराबर परिवर्तन होते रहे हैं। उन्होंने कविता को 'परिपूर्ण क्षणों की वाणी' कहा है। उन्होंने लिखा है–

'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है, हमारे जीवन का पूर्ण रूप, हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द में ही बहने लगता है, उसमें एक प्रकार की संपूर्णता, स्वरैक्य तथा संयम आ जाता है, प्रकृति के प्रत्येक कार्य, रात्रि दिवस की ऑख मिचौनी, षड्ऋतु परिवर्तन, सूर्य राशि का जागरण, शयन, ग्रह–उपग्रहों का अश्रान्त नर्तन, सृजन स्थिति, संहार–सब एक अनन्त छन्द, एक अखण्ड संगीत ही में होता है।'[40]

पंत के अनुसार भाव विशेष मन को इस प्रकार आप्लावित कर लेता है कि उसमें (मन में) समा न सकने के कारण वह (भाव) अनायास ही काव्य के रूप में अभिव्यक्त हो उठता है। ऐसे क्षणों में भावनाओं के सहज उच्छलन को परिपूर्ण क्षणों की वाणी कहा जा सकता है। भावात्मक धरातल पर भाव विशेष की

परिपूर्णता की अभिव्यक्ति को पंत ने कविता माना है। पंत के अनुसार कविता केवल कवि विशेष के हृदय का संगीत न होकर विश्व भर के प्राणियों के अन्तरतम का संगीत होती है। प्राणिमात्र के हृदय की गहनतम भावनाओं को कवि अपने हृदय में अनुभव कर निजी अनुभूति से उसका तादात्म्य स्थापित करता है। इसलिए कविता उसके अपने हृदय का संगीत होते हुये भी विश्व के मानस की भावनाओं को भी व्यक्त करती है। कविता में भावों की अभिव्यक्ति अन्य कलाओं एवं माध्यमों से भिन्न है। भावों का आन्तरिक स्पंदन जितनी सूक्ष्मता और स्पष्टता से संपूर्ण सौन्दर्य को ध्वनित करता हुआ कविता में व्यक्त होता है उतना किसी अन्य कला में नहीं।

पंत ने भाषा को 'संसार का नादमय चित्र' कहकर खडीबोली को काव्य के नये संवेदनों के लिए ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त घोषित किया। उन्होंने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा है–

'खडीबोली आगे की सुवर्णाशा है, उसकी बाल कला में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है, वह हमारे भविष्याकाश की स्वर्गंगा है, जिसके अस्पष्ट ज्योतिपुंज में, न जाने कितने जाज्वल्यमान सूर्य राशि, असंख्य ग्रह–उपग्रह, अमन्द नक्षत्र तथा अनिन्द्य लावण्य लोक अंतर्निहित है ! वह समस्त भारत की हृत्कंपन हैं, देश की शिरोपशिराओं में नवजीवन संचारिणी संजीवनी है, वह हमारे भगीरथ प्रयत्नों से अर्जित, भारत के भाग्यविधाता की वरदान स्वरूप विश्व कवि के हृत्कमण्डलु से निःसृत अमृत स्वरों की जाह्नवी है, जिसने सुप्त देश के कर्ण कुहर में प्रवेश कर उसे जगा दिया।'[41]

पंत ने अपनी रचना 'चिदम्बरा' की भूमिका 'चरण चिन्ह' में छायावाद पर नये सिरे से विचार किया है। उन्होंने लिखा है–

'छायावाद की सार्थकता, मेरी दृष्टि में, उस युग के विशिष्ट भावात्मक दृष्टिकोण तक ही सीमित है, जो भारतीय जागरण को चेतना का सर्वात्मवादमूलक कैशोर का शुभारम्भ भर था, उस युग की कविता में और भी अनेक प्रकार के अभिव्यंजना के तत्व तथा रूप शिल्प की विशेषताओं के व्यापक उदाहरण हैं जो खड़ीबोली के गद्य–पद्य के लिए स्थायी देन के रूप में रहेंगे।'[42] यहॉ पंत ने छायावाद के भावात्मक दृष्टिकोण पर जोर दिया है।

पन्त ने छायावाद में कल्पना–तत्व की महत्वपूर्ण स्थिति स्वीकारते हुये 'आधुनिक कवि' की भूमिका में लिखा है– 'मैं कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य मानता हूँ।' यद्यपि 'ग्राम्या' में यथार्थ का आग्रह है, फिर भी छायावाद के विवेचन में पंत ने भावात्मक सत्ता की महत्वपूर्ण स्थिति स्वीकारी और उसे कोमल संवेदनों से जोडा। पंत प्रकृति की भूमि से होकर स्वच्छन्दतावादी जगत् में आये थे, इसलिए आशा की जाती थी कि उनके चिंतन और काव्य दोनों में मानव–प्रकृति की आपसी निकटता का आग्रह रहेगा। छायावादी काव्य के तत्वों के बारे में पन्त जी 'आधुनिक कविता' की भूमिका में लिखते हैं– 'ह्रास युग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं, स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्ति मिलने लगी, उसमें पलायन का स्वर था।'[43]

छायावाद के अन्य कवियों की तरह पन्त छायावाद की समग्र व्याख्या नहीं कर सके क्योंकि उनकी मान्यताओं में बराबर परिवर्तन आता रहा है। फिर भी उन्होंने वैयक्तिक अनुभव और संवेदनाओं की विशेष स्थिति छायावाद में स्वीकार की। कल्पना तत्व को उन्होंने भावात्मक सौन्दर्य के समान स्थान दिया। पंत की शिल्प सम्बन्धी अवधारणाओं में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। 'पल्लव' की भूमिका में उन्होंने काव्य शिल्प पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने छायावादी कविता के लिये खड़ीबोली हिन्दी को सर्वाधिक उपयुक्त बताया। भाषा को उन्होंने संसार का रागमय चित्र तथा ध्वनिमय स्वरूप बताया है। भाषा और कविता के सम्बन्ध में वे लिखते हैं– 'भाषा का और मुख्यतः कविता की भाषा का प्राण राग है। राग ही के पंखें की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है। राग ध्वनि लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है।'[44]

पंत ने भाव–भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य की आवश्यकता पर जोर दिया। उनके अनुसार कविता में शब्द और अर्थ की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं। इसी प्रकार 'पल्लव' की भूमिका में पंत ने छन्द पर विस्तार से चर्चा की। पंत के अनुसार प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण संगीत के अनुसार होने चाहिए। पंत शिल्प जगत में आजादी की मॉग करते हैं। 'पल्लव' की भूमिका में ही वे मात्रिक छन्दों का समर्थन करते हैं–

'हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है। उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है।'[45]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत के समस्त छायावादी काव्य–चिंतन में समय–समय पर परिवर्तन आता रहा है।

## महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा छायावाद की सर्वाधिक निष्ठावान साधक एवं समर्थ विचारक रही हैं। यही कारण है कि उन्हें छायावाद को जीवन देने का श्रेय प्रदान किया जाता है। उनकी काव्य सम्बन्धी मान्यतायें 'गीत पर्व', 'यामा', 'दीपशिखा' आदि में मिलती हैं। उन्होंने छायावृत्ति को ही वास्तविक काव्य प्रवृत्ति स्वीकार किया है। महादेवी छायावृत्ति का उद्‌गम कल्पना, वेदना और सहानुभूति से मानती हैं, साथ ही इसे सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति का नाम भी देती हैं। उन्होंने वैदिक ऋचाओं और सूत्रो में उसके मूल उत्स परिलक्षित कराये हैं। उनके कथनानुसार बाह्य जगत का सौन्दर्य अन्तर्जगत में प्रतिच्छवित होता है।[46]

काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'व्यापक सत्य पर सीमित जीवन का सुन्दर ताना–बाना बुनने के लिए काव्य ने स्थूल–सूक्ष्म सभी विषयों को अपना उपकरण बनाया है। × × × × × काव्य में कला का उत्कर्ष एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका क्योंकि सत्य काव्य का साध्य है और सौन्दर्य उसका साधन है।'[47] इस वक्तव्य से महादेवी की काव्य सम्बन्धी दृष्टि की व्यापकता का पता चलता है। 'यामा' की भूमिका 'अपनी बात' में महादेवी वर्मा ने अपनी काव्य यात्रा पर विचार करने के साथ छायावाद को परिभाषित करने की चेष्टा की है। उन्होंने छायावाद शब्द को उपयुक्त माना है क्योंकि इसमें मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा और स्वच्छन्द छन्द में उसकी छाया अंकित हुई।[48] उन्होंने छायावाद पर लगे इस आरोप का खण्डन किया कि वह केवल मध्यवर्ग का काव्य है और इसमें संघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन का भाव है। उन्होंने छायावाद को दार्शनिक आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया तथा अपनी रहस्योन्मुख चेतना और करुण भावना से उसकी संगति बैठायी।

महादेवी वर्मा ने छायावाद को इस प्रकार परिभाषित किया है– 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव–भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख–दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी कि जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार सँभाल सकी।'[49]

महादेवी वर्मा के द्वारा दी गयी परिभाषा में छायावाद का जो स्वरूप उभरता है उसमें धर्म निरपेक्ष अध्यात्म, दार्शनिक चिन्तन, सूक्ष्म भाव सौन्दर्य, वैयक्तिक अनुभूति, प्रकृति–सत्ता के अनुभव आदि को प्रमुखता मिली है। उन्होंने अपने काव्य संकलनों की लम्बी भूमिकाएँ लिखकर केवल अपने ही काव्य और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट नहीं किया वरन् सामाजिक, साहित्यिक परिवेश पर भी विचार किया। छायावाद पर पलायनवादी होने का आक्षेप का उन्होंने खण्डन किया। 'दीपशिखा' की 'चिन्तन के कुछ क्षण' नामक शीर्षक से भूमिका में महादेवी वर्मा ने लिखा है– 'छायावाद एक प्रकार से अज्ञात कुलशील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नही मिल सका।'[50]

छायावाद के शिल्प पक्ष की चर्चा करते हुये महादेवी वर्मा ने सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के लिए नये शिल्प–विधान की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने लिखा है–

'छायावाद ने नये छन्द–बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा, वह खडीबोली की साहित्यिक कठोरता नहीं सह सकता था। अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप–तौल और काट–छाँट कर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनओं को कोमलतम कलेवर दिया।'[51]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि छायावाद पर महादेवी वर्मा की काव्य–मान्यताएं छायावादी काव्य को समझने की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।

## मार्क्सवादी विवेचन–प्रगतिवादी विवेचन

स्वच्छन्दतावादी काव्य से मार्क्सवाद की टकराहट स्वाभाविक है क्योंकि मार्क्सवाद में सामाजिक यथार्थ का आग्रह प्रधान रहता है। सामाजिक यथार्थ के नाम पर प्रकृतवाद, यौनवाद, नग्नता आदि का प्रचार रोकने के उद्देश्य से मार्क्सवादी चिंतकों ने समाजवादी यथार्थवाद की विचारधारा को सामने रखा। इसे प्रगतिशील यथार्थवाद भी कहा जाता है। इस समाजवादी यथार्थवाद या प्रगतिशील यथार्थवाद को स्वच्छन्दतावाद के अंग के रूप में देखने की कोशिश हुई है। स्वच्छन्दतावाद को सामाजिक यथार्थवाद का एक हिस्सा माना गया, यहाँ तक कहा गया कि स्वच्छन्दतावाद के कुछ तत्वों के बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेनिन ने समाजवादी समाज के विकास के लिए वैज्ञानिक समाजवाद के साथ सुन्दर कल्पना की चर्चा की है। मैक्सिम गोर्की ने क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद (रिवोल्यूशनरी रोमांटिसिज्म) शब्द का प्रयोग किया है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मार्क्सवाद में स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील पक्ष को जो समर्थन मिलता है वह समाजवादी यथार्थवाद के अन्तर्गत है।[52]

प्रगतिवाद मार्क्सवाद की विचारधारा से ही जुडा है। एक तरह से यह मार्क्सवाद का साहित्यिक स्वरूप है। छायावादी काव्य के निर्माण की ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका को मार्क्सवाद ने पहले ही स्वीकार कर लिया था। इस स्वीकृति के आलोक में हिन्दी की प्रगतिवादी समीक्षा ने छायावाद का समर्थन किया तथा उसके मानवतावादी पक्ष की सराहना की।

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना वर्ष 1935 ई0 में लन्दन में हुई और भारत में इसका प्रथम अधिवेशन प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में वर्ष 1936 ई0 में हुआ।[53] लगभग इसी समय छायावादी काव्य में परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। छायावादी कवि विशेषकर निराला और पंत प्रगतिवाद की तरफ झुक जाते हैं। वर्ष 1938 ई0 में प्रकाशित निराला के काव्य संग्रह 'अनामिका' (द्वितीय) की अनेक रचनाएँ सामाजिक विद्रोह की भावना से युक्त थीं। वनबेला, नये पत्ते आदि कविताएँ सामाजिक व्यंग्य से भरपूर थीं। प्रगतिवादियों ने इन कविताओं की सराहना की। डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला के प्रगतिवादी दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हुए उनकी गद्य रचनाओं के सम्बन्ध में लिखा है–

'उनका यह पक्ष कुल्लीभाट, चतुरी चमार, विल्लेसुर बकरिहा, देवी आदि रचनाओं में विशेष निखर कर आया है। वह छायावाद की भूमि पर भी संघर्षों के कवि रहे × × × × × उन्होंने सामाजिक रुढ़िवाद पर तीव्र प्रहार किया। उन्होंने जनता की राजनीतिक चेतना को प्रखर किया। उन्होंने हिन्दी पाठकों की क्रांतिकारी भावनाओं को उभारा, सँवारा।'[54]

सुमित्रानन्दन पंत ने 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि रचनाओं के द्वारा अपनी प्रगतिवादी चेतना का परिचय दिया। डॉ0 रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान तथा प्रकाश चन्द्र गुप्त आदि ने प्रगतिवादी समीक्षा के शुरुआती दौर में छायावादी काव्य पर विचार किया। बाद के समीक्षकों में डॉ0 नामवर सिंह ने छायावाद पर विस्तृत विचार किया। उन्होंने 'छायावाद' नामक एक स्वतन्त्र समीक्षा पुस्तक भी लिखी। शिवदान सिंह चौहान ने 'प्रगतिवाद' नामक अपनी पुस्तक में स्वीकार किया है कि छायावाद ने सामंती समाज की श्रृंखलाओं और अनैसर्गिक बंधनों, उसकी संकीर्ण सौन्दर्य भावनाओं, कुत्सित सौन्दर्य मूल्यों के प्रति विद्रोह किया। डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार व्यक्ति और समाज के संघर्ष से रोमांटिक कविता का जन्म होता है। यह कथन उनके छायावाद सम्बन्धी विवेचन का प्रस्थान बिन्दु है। उनका मानना है कि छायावाद हिन्दी की नयी परम्परा से सम्बद्ध है जिसने साहित्य को नया विकास दिया। छायावाद पर प्रतिक्रियावादी होने के आरोप का वे पुरजोर खण्डन करते हैं। उन्होंने लिखा है–

'छायावादी काव्यधारा में जो सबसे सबल एवं जन हितैषी तत्व थे उन्हें अपने में समेटकर यह धारा आगे बढ़ने का प्रयास कर रही है। प्रगतिशील कविता छायावाद की ही परिणति है। उसका विद्रोह पुरानी सीमाओं से निकलकर आज एक विशद सामाजिक रूप धारण कर रहा है।'[55]

डॉ0 रामविलास शर्मा ने स्वच्छन्दतावादी काव्य की व्यापक भावभूमि को स्वीकार किया। उन्होंने माना कि छायावादी काव्य में प्रगतिवादी काव्य के बीज विद्यमान हैं। वह स्वच्छन्दतावाद को अधिकाधिक वस्तून्मुखी देखने के पक्षधर हैं, क्योंकि वे रचना की सामाजिकता के हिमायती हैं। इस कारण निराला उनके सर्वप्रिय कवि हैं। उन्होंने लिखा है– 'निराला जी छायावादी काव्य में सबसे अधिक प्रगतिशील रहे हैं।'

हिन्दी की प्रगतिवादी समीक्षा छायावाद को राष्ट्रीय, सांस्कृतिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की चेष्टा करती है। उसकी मान्यता है कि मध्यवर्ग की विद्रोही चेतना से इसका जन्म हुआ। प्रगतिवाद के प्रथम दौर के बाद जब हिन्दी में सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए रचना को समझने की परम्परा विकसित हुई, तब नामवर सिंह ने अपने ग्रंथ 'छायावाद' में सामाजिक सत्य के उद्‌घाटन का प्रयत्न किया। उन्होंने छायावाद के काव्य–सौन्दर्य का विवेचन करते हुए लिखा है–

'छायावाद के काव्य–सौन्दर्य के विवेचन से स्पष्ट है कि यह सारा सौन्दर्य व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न हुआ है और वह स्वाधीनता भी व्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण समाज की स्वाधीनता की अभिव्यक्ति है। परन्तु इस काव्यगत स्वाधीनता को तत्कालीन स्वाधीनता संग्राम के साथ मिलाकर देखने से पता चलता है कि छायावाद में स्वाधीनता संग्राम के कुछ पहलू छूट गये हैं और कहीं–कहीं छाया भी बहुत धुँधली और मूल से दूर चली गयी है।' डॉ० नामवर सिंह आगे लिखते हैं– 'फिर भी छायावाद की कविता से राष्ट्रीय जागरण का पर्याप्त आभास मिलता है। इस राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप संपूर्ण भारत में रोमांटिक काव्य की लहर छोड गयी थी, जिसका एक अंग हिन्दी का छायावाद भी है। छायावाद में जो सार्वभौम और शाश्वत तत्व दिखाई पडते हैं, वे सौन्दर्यशास्त्र के किसी अलौकिक नियम से नहीं आये हैं, बल्कि उसके ऐतिहासिक कार्यों के पुरस्कार हैं।'[56]

डॉ० नामवर सिंह ने छायावाद के सांस्कृतिक परिवेश की चर्चा करते हुये उसे मध्य वर्ग की रागात्मक अभिव्यक्ति कहा है। उन्होंने माना कि छायावाद में आन्तरिक और बाह्य बंधनों से मुक्ति की चेष्टा है। छायावाद को हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण कड़ी स्वीकार करते हुये उन्होंने लिखा है– 'छायावाद हिन्दी साहित्य की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कडी है। इसका जन्म हमारे साहित्य की विशेष सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों में हुआ।[57] × × × × × इस तरह छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और जन आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रुढ़ियों से मुक्त किया उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट कल्पना, प्रकृति–साहचर्य, मानव–प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय

स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिन्दी जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप विन्यास को पुरानी संकीर्ण कड़ियों से मुक्त करके उसने नवीन अभिव्यंजना प्रणाली के लिए द्वार खोल दिया है।'[58]

प्रगतिवादी समीक्षको में गजानन माधव मुक्तिबोध के विचार भी महत्वपूर्ण हैं। उनकी समीक्षा में समाजशास्त्रीय आग्रह प्रबल है। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' नामक समीक्षा कृति इस मान्यता को लेकर लिखी गयी है कि युग तथा साहित्य के परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। इस समीक्षा कृति में मुक्तिबोध कई बार व्यक्तिवाद का उल्लेख करते हैं, जिसे प्रकारान्तर से वे छायावाद की प्रभावी प्रकृति के रूप में स्वीकार करते हैं। वे व्यक्तिवादी छायावादी भावुकता तथा छायावादी व्यक्तिवाद जैसे मुहावरों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि वे काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानकर रचना के सामाजीकरण पर बल देते हैं, इसलिए छायावाद की रोमानी प्रवृत्ति उन्हें जीवन यथार्थ के साथ न्याय करती नहीं दिखायी देती, छायावाद की रोमानी तबीयत से उन्हें लगाव नहीं था। उन्हें छायावादी काव्य और नयी कविता की आधुनिकतावादी प्रवृत्ति में नये–पुराने का झगड़ा मालूम होता है। 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में 'छायावाद और नयी कविता' शीर्षक से उनके दो निबंध संकलित हैं, जिनमें दोनों काव्यान्दोलनों पर तुलनात्मक दृष्टि डाली गयी है। मुक्तिबोध छायावाद को आदर्शवादी, व्यक्तिवादी, भावुकता प्रधान, कल्पनाप्रिय मानकर यह घोषित करते हैं कि 'नयी कविता के यथार्थवादी व्यक्तिवाद ने इसके विरुद्ध बगावत की।'[59]

इतना ही नहीं, मुक्तिबोध ने प्रकारान्तर से छायावाद पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लगाये गये आरोपों से अपनी सहमति व्यक्त की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वयं को छायावादी काव्य से पूरी तरह जोड़ पाने में असमर्थ सा अनुभव किया था और इसीलिए किसी सीमा पर नैतिक आधार पर उसकी आलोचना की, जबकि मुक्तिबोध ने यथार्थवादी की दृष्टि से छायावाद पर आक्रमण किया। छायावाद के सम्बन्ध में उनकी आपत्ति इसी यथार्थवादी आग्रह से जुड़ी हुई है और वे उसे जीवन के व्यापक अनुभवों से पलायन कर जाने वाला काव्य आन्दोलन मानते हैं।

मुक्तिबोध की तरह ही रमेश कुंतल मेघ की समीक्षा भी प्रगतिवाद और नयी कविता के सम्मिलित व्यक्तित्व से निर्मित दिखायी देती है। 'मिथक और स्वप्नः कामायनी की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका' के आमुख में वह छायावाद की मूल वृत्ति अन्तर्मुखी, व्यक्तिवादी और लिरिकल स्वीकार करते हैं। इसीलिए वे कामयानी पर आरोप लगाते हैं कि उसमें एक समुचित जीवित दर्शन के बजाय दार्शनिक मध्यकालीनतावादी पलायनमार्गी विश्रान्ति है। वे यह भी लिखते हैं कि अपनी मानसिक वैयक्तिकताओं (मेण्टल प्राइवेसीज) को वैयक्तिक कामनाओं के धरातल पर अभिव्यक्त करने की विराट प्रतीकात्मक चेष्टाएं तो छायावादी कवियों ने ही शुरू की। उन्होंने छायावाद में सामाजिक प्रतिबद्धता का अभाव पाया तथा उसे यूटोपिया प्रधान कहा।[60]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतिवादी समीक्षकों ने छायावाद की कल्पनाशीलता का विरोध किया।

## स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी विवेचना

प्रगतिवादी समीक्षकों ने छायावाद की कल्पनाशीलता और रोमानी प्रवृत्ति का विरोध किया, उसे पलायनवादी कहा, फिर भी उन्होंने प्रगतिशील स्वच्छन्दतावाद जैसे नाम देकर छायावादी काव्य के महत्व को स्वीकार किया। किन्तु छायावाद पर सबसे तीखा आक्रमण प्रयोगवाद और नयी कविता ने किया। डॉ0 देवराज ने सन् 1947 ई0 में 'छायावाद का पतन' नामक निबंध लिखा। उसमें उन्होंने शब्द–चित्र तथा कल्पनाशीलता को लेकर छायावादी काव्य पर प्रहार किया। छायावाद को लेकर उनकी सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि उसकी चेतना आधुनिक नहीं है। उन्होंने छायावाद की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का विरोध किया। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या' में अज्ञेय को गैर रोमैंटिक कविता की संभावना के रूप में पेश किया है। डा0 चतुर्वेदी छायावाद के रोमानी मिजाज और नये काव्य की बदली हुई स्थितियों का जायजा लेते हुए कहते हैं–

'आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास एक स्तर पर रोमांटिसिज्म के स्थापन और विघटन का इतिहास है। श्रीधर पाठक से लेकर अज्ञेय और परवर्ती नयी कविता तक रोमांटिसिज्म का उतार–चढ़ाव

कई रूपों में मिलता है। स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, आधुनिक कविता के इन विविध उत्थानों में रोमांटिसिज्म का उदय, स्थापन, संघर्ष और विघटन देखा जा सकता है।'[61]

'अज्ञेय' ने एक ओर छायावाद को अपने ढंग से जानने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर उसके विरोध की अगुवाई भी की। 'पुष्कारिणी' की भूमिका में उन्होंने छायावाद की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए कहा कि विदेशी शिक्षा के प्रभाव में पुराने भारतीय मूल्य लडखडाने लगे थे और जो नैतिकता ईश्वर के इर्द–गिर्द घूमती थी, उसका स्थान एक मानवपरक नैतिकता ने ले लिया था। महायुद्ध के बाद की स्थितियों ने भारतीय जीवन को और भी निराश किया और कवि के मन में एक गहरा अन्तर्द्वन्द उपस्थित हुआ। इसे 'अज्ञेय' ने 'आध्यात्मिक व्याकुलता' नाम दिया। वे छायावाद को इसी की अभिव्यक्ति का प्रयत्न मानते हैं। उन्होंने इसे इतिवृत्त काव्य के विरोध में उठने वाला विषय प्रधान अथवा सूक्ष्म के विद्रोह का काव्यान्दोलन कहा। 'पुष्कारिणी' की भूमिका में उन्होंने छायावाद की व्यक्तिपरकता के विषय में लिखा है–'छायावाद पश्चिम से प्रभावित नयी व्यक्तिपरक दृष्टि का परिणाम था, जिसने भाव, भाषा, छन्द, और शिल्प सभी को नया संस्कार दिया, छन्द, अलंकार, रस, ताल आदि की गतानुगतिकता से उभारा, नयी प्रतीक योजना स्थापित की।'[62]

'सामयिक भारतीय साहित्य' में आधुनिक हिन्दी काव्य के विषय में लिखते हुए उन्होंने छायावाद को वैयक्तिक विद्रोह करार दिया। उनकी दृष्टि में प्रसाद जैसे कवि मौलिकता का दावा नहीं कर सकते और छायावाद को भारतीय स्वच्छन्दतावाद नाम से अभिहित करते हुये उन्होंने उसे ज्यादा अहमियत नहीं दी।

छायावाद अपने समय की मॉग पूरा करता हुआ आया और वह कुछ ऐतिहासिक, सामाजिक दबावों का स्वाभाविक परिणाम है। छायावाद के प्रदेय और उसकी सीमाओं पर विचार करना इसी संदर्भ में उचित होगा। छायावाद का एक चरण निराला के प्रगति शील काव्य तक जाता है जो इस बात का प्रमाण है कि रोमानी काव्य खुद अपनी सीमाओं को तोड़ सकता है। छायावाद के लिए स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग इसी दृष्टि से सार्थक प्रतीत होता है।

# सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ– 408–409

2. वही, पृष्ठ–439

3 वही, पृष्ठ–442

4. वही, पृष्ठ–443

5. डॉ० बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–332

6. वही, पृष्ठ–332

7. डॉ० कान्ति कुमार जैन–रोमैण्टिक मिजाज : मुकुटधर पाण्डेय से मुक्तिबोध तक, पृष्ठ –15

8 वही, पृष्ठ–17

9 डॉ. नामवर सिंह– छायावाद, पृष्ठ–12

10 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य (स्वच्छन्दता और परम्परा–निबंध), पृष्ठ–415

11 वही, पृष्ठ –416

12 वही, पृष्ठ –419

13 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी (विज्ञप्ति), पृष्ठ–12

14 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ –148

15 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी–हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ–163

16 डॉ० देवराज उपाध्याय–रोमांटिक साहित्यशास्त्र (भूमिका– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी), पृष्ठ –2

17 वही, पृष्ठ –1

18 वही, पृष्ठ –3

19 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–छायावादी कविता की प्रेरणा भूमि–जनवरी 1954 ई० में 'अवन्तिका' (काव्यालोचनांक) में प्रकाशित निबंध, पृष्ठ –212

20 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य, पृष्ठ–450

21 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल (मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है–निबंध)

22 डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ– 9

23 डॉ0 नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ –230

24 डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–13

25 वही, पृष्ठ – 16

26 जयशंकर प्रसाद–काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृष्ठ–25

27 वही, पृष्ठ–25–26

28 वही, पृष्ठ– 26

29 वही, पृष्ठ– 29

30 वही, पृष्ठ– 75

31 वही, पृष्ठ–80–81

32 वही, पृष्ठ –81

33 डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त – आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत, पृष्ठ–407

34 डा0 सूर्य प्रसाद दीक्षित – छायावादी कवियों का गद्य साहित्य, पृष्ठ– 424

35 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – प्रबन्ध प्रतिमा (साहित्य की नवीन पद्धति), पृष्ठ–160

36 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – परिमल (भूमिका), पृष्ठ– 6–8

37 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – प्रबन्ध प्रतिमा, पृष्ठ–180

38 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – परिमल, पृष्ठ–12

39 डॉ0 प्रेम शंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –80

40 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव (भूमिका), पृष्ठ –33

41 वही, पृष्ठ– 25–26

42 सुमित्रानन्दन पन्त – चिदम्बरा (चरण चिन्ह), पृष्ठ– 9

43 सुमित्रानन्दन पन्त – आधुनिक कवि (भूमिका), पृष्ठ–18

44 सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–27–28

45 वही, पृष्ठ–34–35

46 महादेवी वर्मा – सप्तपर्णा की भूमिका, पृष्ठ –20

47 महादेवी वर्मा – गीत पर्व (वैचारिकी), पृष्ठ– 8–6

48 महादेवी वर्मा – यामा (अपनी बात), पृष्ठ–11

49 महादेवी वर्मा – गीत पर्व (वैचारिकी), पृष्ठ –13–14

50 महादेवी वर्मा – चिन्तन के कुछ क्षण, पृष्ठ–53

51 महादेवी वर्मा – गीत पर्व (वैचारिकी), पृष्ठ–16

52 डॉ0 प्रेम शंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–96–97

53 वही, पृष्ठ–98

54 डॉ0 रामविलास शर्मा – निराला, पृष्ठ–207

55 डॉ0 रामविलास शर्मा – संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ–5

56 डॉ0 नामवर सिंह – छायावाद , पृष्ठ–6

57 वही, पृष्ठ–150

58 वही, पृष्ठ–151–152

59 गजानन माधव मुक्तिबोध – नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ–33

60 रमेश कुंतल मेघ – मिथक और स्वप्न: कामायनी की मन: सौन्दर्य सामाजिक भूमिका

61 डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ–3

62 सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय – पुष्कारिणी (भूमिका)

# अध्याय-4

# प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य

## अध्याय–4

# प्रारम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का उद्भव आधुनिक युग में होता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही स्वच्छन्दवादिता के आभास मिलने लगते हैं। हिन्दी कविता को रीतिकालीन संस्कारों से मुक्त कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसे लोकजीवन के राजपथ पर लाकर खड़ा किया। मानव जीवन के विविध पक्षों को कविता का विषय बनाया गया, उसे वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यक्ति के माध्यम से ऊपर उठाकर संपूर्ण मानवता से जोड़ने के प्रयास किये गये। किन्तु भारतेन्दु में रोमांटिक तत्व उभरकर नहीं आ सके। उन्होंने रीतिकालीन ब्रजभाषा को काव्य भाषा के माध्यम के रूप में प्रयोग करना जारी रखा।

भारतेन्दु तथा उनके मंडल के लेखकों के व्यक्तित्व में रीतिवाद और स्वच्छन्दता दोनों का मेल था। गद्य में तो स्वच्छन्द शैली का प्रभाव है। परन्तु कविताओं की भाषा ब्रज तथा शैली रीतिवादी बनी रही। विषय वस्तु में विविधता, अभिव्यक्ति की शैली तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण में स्वच्छन्दतावाद के दर्शन नहीं हुये। श्रीधर पाठक पहले कवि हैं जिनकी कविता में प्रकृति का संश्लिष्ट और स्वच्छन्द चित्रण, गॉव की साधारण वस्तुओं का वर्णन और जगह–जगह परोक्ष सत्ता के रहस्य संकेत भी हैं। अपने अनुवादों तथा अपनी मौलिक कृतियों के माध्यम से उन्होंने भाषा, भाव और छन्द का नूतन विधान सामने लाया। संवेदनशील प्रकृति चित्रण से उन्होंने स्वच्छन्दवादिता को और पुष्ट किया। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें सच्चे स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक माना है। इस धारा के प्रारम्भिक कवियों में श्रीधर पाठक के अतिरिक्त राम नरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं।

# श्रीधर पाठक

## स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक कवि

श्रीधर पाठक हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के प्रारंभिक दौर के कवि हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उन्हें सच्चे स्वच्छंदतावाद (ट्रू रोमैंटिसिज्म) का प्रवर्तक माना है। उन्होंने लिखा है–

'हरिश्चन्द्र के सहयोगियों में काव्य धारा को नये–नये विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गयी और पद्य के ढॉचों, अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छन्दता के दर्शन न हुये। इस प्रकार की स्वच्छंदता का आभास पहले पहल श्रीधर पाठक ने ही दिया। उन्होंने प्रकृति के रुढ़िबद्ध रूपों तक ही न रहकर अपनी आँखों से भी उसके रूपों को देखा। 'गुनवंत हेमंत' में वे गॉव में उपजने वाली मूली, मटर ऐसी वस्तुओं को भी प्रेम से सामने लाये जो परंपरागत ऋतु वर्णनों के भीतर नहीं दिखाई पड़ती थी। इसके लिए उन्हें पं0 माधव प्रसाद मिश्र की बौछार भी सहनी पड़ी थी। उन्होंने खड़ीबोली पद्य के लिए सुंदर लय और चढ़ाव उतार के कई नये ढॉचे भी निकाले और इस बात का ध्यान रखा कि छंदों का सुंदर लय से पढ़ना एक बात है, राग रागिनी गाना दूसरी बात। ख्याल या लावनी की लय पर जैसे 'एकांतवासी योगी' लिखा गया वैसे ही सुथरे साइयों के सधुक्कड़ी ढंग पर 'जगत सचाई सार' जिसमें कहा गया है कि 'जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा ? इसका भेद।' 'स्वर्गीय वीणा' में उन्होंने उस परोक्ष दिव्य संगीत की ओर रहस्यपूर्ण संकेत किया जिसके तालसुर पर यह सारा विश्व नाच रहा है। इन सब बातों का विचार करने पर पं0 श्रीधर पाठक ही सच्चे स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के प्रवर्तक ठहरते हैं।'[1]

## अनूदित साहित्य : स्वच्छन्दतावाद का द्वार

श्रीधर पाठक के समस्त कृतित्व को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक के अन्तर्गत उनके द्वारा अनूदित कृतियाँ आती हैं और दूसरे के अन्तर्गत उनकी मौलिक रचनाएँ आती हैं। ग्रे की कृति 'शेफर्ड एण्ड फिलॉसफर' का अनुवाद 'गड़ेरिये और दार्शनिक शास्त्री' (गड़ेरिया और आलिम) नाम से

किया। गोल्ड स्मिथ के तीन काव्यों 'हरमिट', 'ट्रेवलर' और दि 'डेजर्टेड विलेज' के अनुवाद किये। 'हरमिट' का अनुवाद 'एकान्तवासी योगी' नाम से खड़ीबोली में, 'ट्रेवलर' का अनुवाद 'श्रान्त पथिक' नाम से खड़ीबोली में तथा 'दि डेजर्टेड विलेज' का अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' नाम से ब्रजभाषा में किया। कालिदास के 'ऋतु संहार' के प्रथम तीन सर्गों का अनुवाद ब्रजभाषा में किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी कवि कीट्स की 'इजाबेला' का अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

श्रीधर पाठक ने 'दि हरमिट' का अनुवाद पहले 'एडविन और एनजेलिना' के नाम से भी किया था।[2] बालकृष्ण भट्ट ने मई 1889 ई. के 'प्रदीप' में इस काव्य के विषय में लिखा था कि 'जहाँ ग्रंथकार ने अपनी ओर से मिलाया, वह भाग अधिक रसीला और माधुर्यपूर्ण है।' इसी अनुवाद से हिन्दी में स्वच्छंदतावादी तत्व का प्रवेश हुआ। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, निर्विकार प्रेम और यथार्थ जीवन की झाँकी इसके गुण हैं। मूल काव्य में चालीस पदों को पाठक जी ने उनसठ लावनी छन्दों में रूपान्तरित किया और उसे भारतीय वातावरण से संयुक्त कर दिया।

श्रीधर पाठक ने वर्ष 1770 ई0 में प्रकाशित गोल्डस्मिथ के 'दि डिजर्टेड विलेज' का अनुवाद ब्रजभाषा में 'ऊजड़ ग्राम' के नाम से सन् 1889 ई0 में किया। इसमें वैयक्तिक अनुभूति से युक्त यथार्थ का चित्रण था। मूल काव्य की 430 पंक्तियों का अनुवाद पाठक जी ने 514 पंक्तियों में किया था। इसमें भारतीय वातावरण, भारतीय ग्राम्य दर्शन और स्वच्छंदतावादी धारा को आगे बढाया गया था।[3]

श्रीधर पाठक के अनुवाद साहित्य का हिन्दी काव्य–साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा। अंग्रेजी काव्य का वस्तु–चयन, शब्दों की कमी के साथ मातृभूमि का प्रेम, पदार्थों, मनुष्यों आदि का यथार्थ वर्णन और मानवीयता के लक्षण इन रचनाओं से हिन्दी साहित्यकारों को देखने को मिले। अंग्रेजी की रचनाओं, विशेषकर देशभक्ति पूर्ण रचनाओं का हिन्दी साहित्य पर बड़ा प्रभाव पड़ा। भारतेन्दु काल में श्रीधर पाठक रीतिकालीन परम्परा को तोड़कर स्वच्छन्द परम्परा को अपनाने वाले एक तरह से क्रांतिकारी कवि थे। इस रूप में वह नयी चेतना के प्रतीक थे। उनके अनुवादों ने स्वच्छन्दतावाद का द्वार खोल दिया।

## मौलिक साहित्य : छायावाद का पूर्व रूप

श्रीधर पाठक की मौलिक कृतियाँ इस प्रकार हैं– जगत–सचाई सार, कश्मीर सुषमा, भारतगीत, मनोविनोद, धन विजय, गुनवन्त हेमन्त, वनाष्टक, देहरादून, गोखले गुणाष्टक, गोखले प्रशस्ति, गोपिका गीत, स्वर्गीय वीणा, तिलस्माती सुन्दरी आदि।

श्रीधर पाठक की प्रथम मौलिक कृति 'जगत–सचाई सार' है। इसकी रचना सन् 1887 ई0 में हुई थी। इसकी भावभूमि किंचित दार्शनिक है। यह इक्यावन पदों में लिखी गयी लम्बी कविता है। इस रचना का माध्यम खड़ी बोली है और छन्द सधुक्कड़ी धुन के हैं। इस रचना के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– '× × × × × सुथरे साइयों के सधुक्कड़ी ढंग पर 'जगत–सचाई सार' जिसमें कहा गया है कि 'जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा ? इसका भेद।'[4]

श्रीधर पाठक की दूसरी प्रसिद्ध मौलिक रचना 'कश्मीर सुषमा' है। इसका प्रकाशन वर्ष 1904 ई0 में हुआ था। इसमें प्रकृति निरीक्षण की एक नूतन दृष्टि का परिचय मिलता है। कवि ने प्रकृति को आलम्बन रूप में ग्रहण करके परम्परागत रूढ़ प्रकार के वर्णनों से आगे बढ़कर प्राकृतिक छटा का उन्मुक्त चित्रण किया है और प्रकृति जन्य आनंद की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

श्रीधर पाठक की तीसरी महत्वपूर्ण कृति 'भारत गीत' है। इसका प्रकाशन 1918 ई0 में हुआ था। यह लोक प्रचलित धुनों में गाये जाने योग्य फुटकल गीतों का संग्रह है।

श्रीधर पाठक प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वदेश प्रेम तथा समाज सुधार की भावनाओं के कवि थे। छायावादी काव्य का पूर्व रूप उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रकृति–वर्णन में उन्होंने अपनी स्वच्छन्द प्रतिभा का परिचय दिया, जिसे रोमांटिक परम्परा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। डॉ0 बच्चन सिंह ने उनके प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध में लिखा है–

'सबसे महत्वपूर्ण है पाठक जी का प्रकृति –प्रेम चित्रण। अभी तक सामान्यतः प्रकृति को उद्दीपन के कठघरे में रखा जाता था, किन्तु पाठक जी उसे कठघरे से बाहर मैदान में ले आये। दूसरे शब्दों में

प्रकृति को रीति के बंधन से मुक्त कर स्वतन्त्र बनाया। प्रकृति का सापेक्षिक स्वतन्त्र वर्णन आगे चलकर छायावाद काव्य का एक वैशिष्ट्य माना गया।'[5]

श्रीधर पाठक से पूर्व भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने भी प्रकृति–वर्णन किया था, किन्तु उनके वर्णन परम्परागत रुढ़ियों से आगे न बढ़ पाये और उनके काव्यों में प्रकृति या तो अलंकरण की वस्तु बनी रही या उद्दीपन की पृष्ठभूमि, श्रीधर पाठक ने प्रकृति को उसके समग्र–सुन्दर रूप में वर्णन का मुख्य विषय बनाकर प्रस्तुत किया। 'कश्मीर–सुषमा' में प्रकृति का एक चित्र देखने योग्य है–

'प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति,
पल–पल पलटति भेस छनकि छवि छिन छिन धारति।
विमल अम्बु–सर मुकुरन महँ मुख बिम्ब निहारति,
अपनी छवि पर मोहि आप ही तन मन वारति।'

प्रकृति के स्वच्छन्दतावादी चित्रण के अतिरिक्त उन्होंने अपनी कविता में राष्ट्रवादिता का परिचय दिया। एक ओर तो उन्होंने भारत की आरती उतारी, स्वदेश के गौरव का गान किया और दूसरी ओर विधवाओं की व्यथा एवं शिक्षा–प्रसार जैसे सामाजिक विषय भी उनकी लेखनी के माध्यम बने।

श्रीधर पाठक ने अपनी काव्य–रचना के लिए ब्रजभाषा और खडीबोली दोनों का प्रयोग किया है। उनकी खड़ी बोली की कविताएँ ऐतिहासिक महत्व की वस्तु हैं। उन कविताओं से आधुनिक हिन्दी कविता का शुभारम्भ मानना चाहिये। काव्य–भाषा के लिए खड़ीबोली का प्रयोग पहली बार मुक्त रूप से श्रीधर पाठक ने ही किया।

इस प्रकार अपनी अनूदित तथा मौलिक कृतियों द्वारा श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली हिन्दी कविता का पथ निर्मित और प्रशस्त किया। उन्होंने परम्परागत काव्य पद्धतियों को त्याग कर वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर काव्य क्षेत्र में नया प्रयोग करते हुये स्वच्छन्दतावादी पद्धति को जन्म दिया।'[6] स्वच्छन्दतावाद के दर्शन उनकी रचनाओं में पहली बार हुये। खड़ीबोली काव्य के साथ–साथ उन्होंने छायावाद के लिए भी जमीन तैयार की।

# अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

## खड़ीबोली काव्य निर्माता कवि

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का महत्वपूर्ण स्थान है। खड़ीबोली को काव्य–भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में 'हरिऔध' का नाम आदर से लिया जाता है। आरम्भ में उन्होंने नाटक और उपन्यास लिखे, किन्तु उनकी प्रतिभा का विकास वस्तुतः कवि–रूप में हुआ। उन्हें खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य की रचना का श्रेय प्राप्त है। उनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं–

प्रेम प्रपंच, प्रेमाम्बु प्रश्रवण, उद्‌बोधन, रसिक रहस्य, प्रेमाम्बु वारिधि, प्रेमाम्बु प्रवाह, प्रेम पुष्पहार, काव्योपवन, प्रिय प्रवास, कर्मवीर, ऋतु मुकुर, पद्‌म प्रसून, परम प्रमोद, चोखे चौपदे, वैदेही बनवास, चुभते चौपदे, रश कलश आदि।

'हरिऔध' ने पन्द्रह से ऊपर काव्य ग्रंथों की रचना की है। कवि रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि उन्हें अपने प्रबंध काव्य 'प्रिय प्रवास' के कारण मिली।

## प्रिय प्रवास : खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य

'प्रिय प्रवास' सत्रह सर्गों में श्री हरिऔध द्वारा रचित खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसका प्रकाशन 1914 ई0 में हुआ। इसे कवि ने पहले 'ब्रजांगना विलाप' नाम दिया था, किन्तु बाद में इसका नामकरण 'प्रिय प्रवास' किया। इसमें कृष्ण के अलौकिक चरित्र को लौकिक रूप में चित्रित किया गया है। कवि ने कृष्ण सम्बन्धी चित्रण में युगानुरूप परिवर्तन कर दिया है।

'प्रिय प्रवास' का आरम्भ प्रकृति वर्णन से होता है–

'दिवस का अवसान समीप था,  
गगन था कुछ लोहित हो चला।  
तरु शिखा पर थी अवराजती,  
कमलिनी कुल–वल्लभ की प्रभा।'[7]

इसी समय कृष्ण गोचारण के उपरान्त सखाओं सहित ब्रज में लौट आते हैं। द्वितीय सर्ग में कृष्ण को कंस के धनुष–यज्ञ में ले जाने के लिए अक्रूर के आगमन की सूचना दी जाती है। इस समाचार से ब्रजवासी दुखी और चिन्तित होते हैं। तृतीय सर्ग में कृष्ण की विदाई का करुणापूर्ण वर्णन है। इसमें यशोदा का ममत्वमय वात्सल्य भी व्यंजित हुआ है। कृष्ण के रथ के आगे प्रेम विह्वल नर–नारी लेटते जाते हैं। यशोदा की विकलता को देख कर तो :

'रजनी भी करती अनुताप थी,
निपट नीरव ही मिस ओस के नयन से गिरता बहु वारि था।'

चतुर्थ सर्ग में राधा–कृष्ण की बाललीला, राधा की दुर्वह वेदना और कृष्ण के वियोग में पशु–पक्षियों तक का दुखी होना दिखाया गया है। राधा का विरह वर्णन मार्मिक बन पड़ा है–

'हृदय चरण में तो बढ़ा ही चुकी हूँ,
सविधि वरण की थी कामना और मेरी।
पर सफल हमें सो है न होती दिखाती,
वह कब टलता है भाल में जो लिखा है।'

पाँचवे सर्ग में बलराम और कृष्ण की सुधि लेने के लिए नन्द बाबा का मथुरा–गमन, ब्रजवासियों का करुण–क्रन्दन और यशोदा का शोकार्त स्वरूप सफलता पूर्वक अभिव्यंजित हुआ है। छठे सर्ग में कृष्ण के लौट आने के विषय में ब्रजवासियों की पूर्ण उत्कन्ठा दिखाई गयी है। राही, बटोही और कौओं तक से पूछताछ की जाती है। यशोदा शोक–सिन्धु में डूब जाती हैं। राधा के पास पवन दूत कृष्ण का संदेश लाता है। ब्रजवासी पेड़ों पर चढ़कर कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। राधा पवन को दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना संदेश भेजती हैं। सातवें सर्ग में नन्द श्रीकृष्ण को मथुरा में छोड़कर अकेले मर्माहत अवस्था में लौटते हैं। उस समय यशोदा ने अतिशय करुण विलाप किया है–

'प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है,
दुख जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है।
अब तक जिसको मैं देख के जी सकी हूँ,

वह हृदय हमारा प्रेम तारा कहाँ है।'[8]

आठवें सर्ग में कृष्ण के लौटने की सूचना न मिलने पर यशोदा पुत्र–वियोग में पागल सी हो उठती हैं। उन्हें नन्द बाबा कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करते हुए प्रकृतिस्थ करते हैं। परन्तु यशोदा के दुख, निराशा और प्रेम का आधिक्य उमडता रहता है। नवम सर्ग में कृष्ण को ब्रज का स्मरण आता है और वे उद्धव को ब्रज में भेजते हैं। दसवें सर्ग में ब्रजवासी जन उद्धव को घेरकर अपनी–अपनी व्यथा–कथा का वर्णन करते हैं। माता यशोदा उद्धव के सम्मुख कृष्ण की बाल–लीलाओं का वर्णन करती हैं। दसवॉ सर्ग उनके मातृत्व की व्यंजना से आपूर्ण है। ग्यारहवें सर्ग में उद्धव की ओर संकेत करके एक गोप कालीनाग के दलन तथा दावानल से गौ–गोपों की रक्षा का वृत्त सुनाता है। बारहवें सर्ग में इन्द्र के कोप से वर्षा के समय कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण करने की कथा है। तेरहवें सर्ग में कृष्ण का समाजसेवी रूप चित्रित हुआ है। चौदहवें सर्ग में गोपिकाओं का विरह–निवेदन है। भ्रमरगीत की परम्परा का यहॉ निर्वाह दिखाई देता है। यहीं पर उद्धव–गोपी संवाद के रूप में निर्गुण और सगुण ब्रह्म की बुद्धिवादी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। पन्द्रहवें सर्ग में एक ब्रजबाला को पुष्पों के माध्यम से विरह–निवेदन करते हुये और व्यंग्य उपालम्भ देते हुए तथा भ्रमर से वार्तालाप करते हुए छिपे–छिपे उद्धव देखते हैं। सोलहवें सर्ग में उद्धव और राधा का संवाद है, जिसमें राधा का विश्व प्रेम, नवधा भक्ति, सत्यनिष्ठा, सगुण–निर्गुण का स्वरूप, कृष्ण के प्रति सन्देश और उद्धव का राधा की चरण–रज लेकर मथुरा लौटना वर्णित है। सत्रहवें सर्ग में कृष्ण का जरासन्ध के अत्याचारों से द्वारिका वासियों को मुक्त कराने के लिए द्वारिका–गमन, दीन–हीनों की सेवा में राधा का समय–यापन, यशोदा का दुख और राधा द्वारा उन्हें धैर्य बॅधाना आदि चित्रित है। अन्त में कवि का यह कथन है–

'सच्चे सनेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय हृदया विश्व–प्रेमानुरक्ता।
हे विश्वात्मा, भरतभुव के अंक में और आवे,
ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु कोई न होवे।'

इस प्रकार सत्रह सर्गों में रचित यह महाकाव्य कई वर्णनों से सज्जित है। इसमें श्रीकृष्ण, राधा, नन्द, यशोदा और उद्धव पॉच प्रमुख पात्र हैं तथा बाल–वृद्ध, गोप–गोपियाँ, कंस आदि गौण रूप में चित्रित हैं। कृष्ण के चरित्र में मानवता के चरम विकास की झॉकी अंकित की गयी है। कृष्ण कर्तव्य पालन में अग्रणी और नेतृत्व करने में पूरे कर्मवीर हैं। उनके जीवन का लक्ष्य है लोकहित। हरिऔध ने कृष्ण के रूप में शक्ति, शील और सौन्दर्य से सम्पन्न, मानवतादर्श का प्रतीक और लोक–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत व्यक्तित्व रचा है। राधा लोक–सेविका हैं। विरह–विदग्ध रूपों में चित्रित कृष्ण की वह अनन्य उपासिका, ब्रज की आराध्य देवी हैं। हरिऔध ने राधा को मध्ययुगीन चहारदीवारी से निकालकर आधुनिक युग की सजग और लोकहित से समन्वित नारी के रूप में गढ़ा है। नन्द समष्टि–हित पर न्यौछावर होते रहे हैं। यशोदा वात्सल्य की साकार मूर्ति और ममता तथा करुणा की सजीव प्रतिमा हैं। उद्धव की सृष्टि  लोक सेवा तथा त्याग, तपस्या और विश्व प्रेम का उपदेश देने के लिए की गयी है।

प्रकृति का चित्रण, आलम्बन, उद्दीपन, संवेदनात्मक, वातावरण–प्रधान, उपदेशात्मक, प्रतीकात्मक, अलंकृत और दूत्यादूती के रूप में हुआ है। यहॉ प्रकृति वर्णन में नव्यता पायी जाती है।

प्रिय प्रवास में युग–विशेष की परिस्थितियों, मान्यताओं और आन्दोलनों का समावेश किया गया है। विप्रलम्भ श्रृंगार इसका प्रमुख रस है।

प्रिय प्रवास के सम्बन्ध में डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है– 'न केवल यह आधुनिक काल का प्रथम महाकाव्य है  वरन् इसमें एक नयी और आधुनिक दृष्टि का उपोद्घात मिलता है। मनुष्य और परमतत्व के बदलते हुए रिश्तों की समीक्षा के क्रम में हमने लक्षित किया था कि आधुनिक काल में मनुष्य संपूर्ण रचना और चिंतन के केन्द्र में है। ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं। इस दृष्टिकोण की पहली सशक्त उद्घोषणा 'प्रियप्रवास' के रचना विधान में तो मिलती ही है, कृति की लंबी भूमिका में भी कवि ने इसका निर्भान्त आख्यान किया है। 'ग्रंथ का विषय' शीर्षक के अन्तर्गत हरिऔध लिखते हैं कि मैंने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रंथ में एक महापुरुष की भॉति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं। इस रूप में हिन्दी मानस अब विचार के साथ–साथ संस्कार में भी आधुनिक ऐहिकता की ओर

अग्रसर दिखता है। पुराण–कथा के प्रति कवि की दृष्टि में यह पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन है, जिसका प्रभाव रचना के समूचे विधान में परिलक्षित होता है। राधा अब 'प्रियप्रवास' संपूर्णतः विरहिणी ही नहीं है। वे अपने इस निजी दुख को सारे समाज के दुख में विलीन कर देती हैं, और समाज–सेवा का व्रत लेती हैं। शताब्दियों से चले आ रहे राधा के चरित्र में यह सर्वथा नई भंगिमा हरिऔध ने उकेरी है।'[9]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रिय प्रवास में प्रेम की अनेक अन्तर्दशाओं की व्यंजना तो मानी, किन्तु कथा की क्षीणता या घटनाओं के अभाव के कारण महाकाव्य नहीं माना। उन्होंने लिखा है– 'यह काव्य अधिकतर भाव व्यंजनात्मक और वर्णनात्मक है। कृष्ण के चले जाने पर ब्रज की दशा का वर्णन बहुत अच्छा है। विरह वेदना से क्षुब्ध वचनावली प्रेम की अनेक अंतर्दशाओं की व्यंजना करती बहुत दूर तक चलती है। जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबंध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है। अतः प्रबंध काव्य के सब अवयव इसमें कहॉ आ सकते हैं ? किसी के वियोग में कैसी कैसी बातें मन में उठती हैं और क्या क्या कहकर लोग रोते हैं, इसका जहाँ तक विस्तार हो सका है, किया गया है। परंपरा पालन के लिए जो दृश्य वर्णन हैं वे किसी बगीचे में लगे पेड़ पौधों के नाम गिनने के समान हैं।'[10]

आचार्य शुक्ल ने 'प्रिय प्रवास' में लोक संग्रह, संस्कृत पद–विन्यास तथा संस्कृत वर्ण वृत्तों के प्रयोग की प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है– 'नव शिक्षितों के संसर्ग से उपाध्याय जी ने लोक संग्रह का भाव अधिक ग्रहण किया है। उक्त काव्य में श्रीकृष्ण ब्रज के रक्षक नेता के रूप में अंकित किये गये हैं। खड़ीबोली में इतना बड़ा काव्य अभी तक नहीं निकला है। बड़ी भारी विशेषता इस काव्य की यह है कि यह सारा संस्कृत के वर्ण वृत्तों में है जिसमें अधिक परिमाण में रचना करना कठिन काम है। उपाध्याय जी का संस्कृत पद–विन्यास अनेक उपसर्गों से लदा तथा 'मंजु', मंजुल, 'पेशल' आदि के बीच में जटित अर्थात् चुना हुआ होता है। द्विवेदी जी और उनके अनुयायी कवि वर्ग की रचनाओं से उपाध्याय जी की रचना इस बात में साफ अलग दिखाई पड़ती है।'[11]

प्रबन्ध काव्य–सम्बन्धी कुछ थोड़ी–सी रुढ़ियों को छोड़ दिया जाय तो इस काव्य में प्रबन्धत्व का दर्शन आसानी से किया जा सकता है। यह सच है कि ऊपर से देखने पर इसका कथानक प्रवास–प्रसंग

तक ही सीमित है, किन्तु हरिऔध ने अपने कल्पना–कौशल द्वारा इसी सीमित क्षेत्र में श्रीकृष्ण के जीवन की व्यापक झाँकियाँ प्रस्तुत करने के अवसर ढूँढ़ निकाले हैं। इस काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसके नायक श्रीकृष्ण शुद्ध मानव रूप में प्रस्तुत किये गये हैं वे लोक संरक्षण तथा विश्व कल्याण की भावना से परिपूर्ण मनुष्य अधिक हैं और अवतार अथवा ईश्वर नाम मात्र के।

'प्रिय प्रवास' के बाद की कृतियों में 'चोखे चौपदे' तथा 'वैदेही बनवास' उल्लेखनीय हैं। 'चोखे चौपदे' लोक भाषा के प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'प्रिय प्रवास' की रचना संस्कृत की कोमलकांत पदावली में हुई है और उसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। 'चोखे चौपदे' में मुहावरों के बाहुल्य तथा लोक भाषा के बाहुल्य द्वारा कवि ने यह सिद्ध किया कि वह अपनी सीधी–सादी जबान को भूले नहीं हैं। 'वैदेही वनवास' की रचना द्वारा एक और प्रबन्ध की सृष्टि का प्रयत्न किया गया है। आकार में बड़ा होते हुए भी इसमें 'प्रियप्रवास' जैसी ताजगी और काव्यत्व का अभाव है। 'रस कलश' ब्रज भाषा में रचित काव्य–संग्रह है। इसमें हरिऔध की आरंभिक स्फुट कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएं श्रृंगारिक हैं और काव्य–सिद्धांत निरुपण की दृष्टि से लिखी गयी हैं।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' खड़ी बोली काव्य के निर्माताओं में आते हैं। इन्होंने अपने कवि कर्म का शुभारम्भ ब्रज भाषा से किया। 'रस कलश' की कविताओं से पता चलता है कि इस भाषा पर इनका अधिकार था, किन्तु इन्होंने समय की गति शीघ्र ही पहचान ली और खडी बोली में काव्य–रचना करने लगे। काव्य–भाषा के रूप में इन्होंने खडीबोली का परिमार्जन और संस्कार किया। 'प्रिय प्रवास' की रचना करके इन्होंने संस्कृत गर्भित कोमलकान्त पदावली– संयुक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया। 'चोखे चौपदे' तथा 'चुभते चैपदे' द्वारा खडी बोली के मुहावरा सौन्दर्य एवं उसके लौकिक स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत की। छन्दों की दृष्टि से हरिऔध ने संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू सभी प्रकार के छन्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया। हरिऔध प्रतिभा सम्पन्न मानवतावादी कवि थे। इन्होंने 'प्रिय प्रवास' में श्रीकृष्ण के जिस मानवीय रूप की प्रतिष्ठा की, उससे इनके आधुनिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

# राम नरेश त्रिपाठी

## राष्ट्रीय भावनाओं के गायक कवि

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का नाम महत्वपूर्ण है। वह स्वच्छन्दतावादी भावधारा के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद को जन्म दिया था, रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं द्वारा उक्त परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश–प्रेम तथा राष्ट्रीयता की अनुभूतियॉ उनकी रचनाओं का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मंच पर वे राष्ट्रीय भावनाओं के गायक के रूप में बहुत लोकप्रिय हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रामनरेश त्रिपाठी के बारे में लिखा है–

'कार्य क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छंदता (रोमैंटिसिज्म) का आभास पं0 श्रीधर पाठक ने दिया था, उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी ही दिखाई पडे। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न'' नामक इनके तीनों खण्ड काव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्म पथ पर चलती है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः ढलता आया है। ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं के भीतर न बॅधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छंद संचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है। कल्पित आख्यानों की ओर यह विशेष झुकाव स्वच्छंद मार्ग का अभिलाष सूचित करता है। इन प्रबंधों में नर जीवन जिन रूपों में ढालकर सामने लाया गया है, वे मनुष्य मात्र का मर्मस्पर्श करने वाले हैं तथा प्रकृति के स्वच्छंद और रमणीय प्रसार के बीच अवस्थित होने के कारण शेष सृष्टि से विच्छिन्न नहीं प्रतीत होते।'[12]

रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सृजित साहित्य वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने काव्य, नाटक, कहानी, जीवनी, बाल साहित्य, आलोचना तथा कोश सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी प्रमुख काव्य कृतियॉ इस प्रकार है–मिलन, पथिक, मानसी, स्वप्न। 'मानसी' फुटकर कविताओं का संग्रह है और शेष तीनों कृतियॉ प्रेमाख्यानक खण्ड काव्य हैं।

## मिलन–पथिक–स्वप्न : देशोद्धार का आह्वान

'मिलन' खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् 1917 ई0 में हुआ। काव्य–सौन्दर्य की दृष्टि से यह लेखक की उत्कृष्टतम रचना है। कथावस्तु काल्पनिक है और पॉच सर्गों में विभक्त है। सन् 1914 ई0 से 1918 ई0 तक हमारे देश पर भी प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव पडा था। सन् 1916 ई0 में महात्मा गॉधी का देश की सक्रिय राजनीति में प्रवेश, खिलाफत आन्दोलन और अंग्रेजों से देश की आजादी की मॉग को जोरदार बनाने का प्रयास शुरू हुआ था। 'मिलन' इन्हीं प्रयासों का प्रतिरूप है :

'पर–पद–दलित स्वदेश भूमि का
चलो करें उद्धार।'[13]

क्योंकि

'किया जिन्होंने स्वर्ण भूमि को कौडी का मुहताज।'[14]

उनको

'प्रतिफल देना उन्हें उचित है धर विकराल कृपाण।'[15]

यही सोचकर विजय, जो इस कथा का नायक है और जो अपनी प्रिया विजया के प्रेम बन्धन में अभी तक बँधा था, जनता को संगठित कर देश का उद्धार करने का निश्चय करता है–

'अस्थिचर्म–मय कंकालों में
जो कुछ बल है शेष,
संचय कर रिपु रहित करूँगा
अपना प्यारा देश।'[16]

विजया पुरुष वेश में विजय के साथ अपनी कुटीर को छोड़कर नाव में बैठ नदी पार करने जाती है, परन्तु तूफान में नाव उलट जाती है और दोनों डूब जाते हैं। प्रथम सर्ग में संयोग की वियोग में परिणति होती है–

'मुख चुम्बन कर देख एकटक
फिर दृग पट कर बन्द,

धारण कर प्रिय मूर्ति हृदय में

पाकर परमानन्द।'[17]

सूर्योदय के प्रकृति–चित्रण से दूसरे सर्ग का आरम्भ होता है–

'गगन नीलिमा में हीरे का तेजपुंज अभिराम,

एक पुष्प आलोकित करता था जल–थल–नभ–धाम।

वरछी सी उसकी किरनों से खाकर गहरी चोट,

अन्धकार हो क्षीण छिपा था तरु–पत्तों की ओट।'

इस सर्ग में विजया को एक मुनि द्वारा नदी से वेसुध दशा में निकालना, उसकी मूर्च्छा का टूटना, उसका अपने प्रिय के वियोग में प्रलाप करना, प्रेम की महत्ता प्रकट करना, साधु का उसके पति की खोज में जाना और पुनः विजया द्वारा जल में कूदकर प्राण देने का प्रयत्न करना और फिर बचकर जल से बाहर आना और आत्महत्या जैसे पाप के कारण मन में विरक्ति पैदा होना एवं पति के उद्‌देश्य को पूरा करने का उसका दृढ़ संकल्प दिखाया गया है। यह सर्ग मूलतः वियोग श्रृंगार के लिए द्रष्टव्य है–

'विजया हुई विरह से व्याकुल, श्रांन्त, क्लान्त, उद्‌भ्रान्त।'[18]

× × × × ×

'प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक,

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक'।[19]

प्रेम ही सुखी और स्वच्छन्द होता है। उससे सारी सृष्टि प्रेममय होती है–

'जन–जन में प्रेमी को दिखती है प्रियतम की कान्ति,

इससे उसे लोक–सेवा में मिलती है अति शान्ति।'[20]

वह सोचती है कि मरना ठीक नहीं है, प्रिय के अधूरे कार्य को पूरा करना उसका उद्‌देश्य हो जाता है–

'जिस प्रकार से अब स्वदेश का होगा पुनरूत्थान,

वही करूंगी यत्न अहर्निश देकर तन–मन–प्रान।'[21]

तीसरे सर्ग में साधु को जल में बहती हुई युवक की देह मिल जाती है। विजय भी डूबने से बच जाती है। अपनी कुटी में लाकर साधु उसका उपचार करता है। युवा शरीर को देखकर और उसके देशभक्ति के विचार से परिचित होकर उस साधु ने युवक को विजया का पता नहीं बताया। युवक ने अपने पिता, ग्राम आदि का पता दिया तथा अपने पिता के अन्यायी शासक से पीड़ित होने की बात कही। पिता ने उसे क्यों एक साधु को सौंपा उसने यह भी बताया। उसने देशभक्त बनने की अपनी अन्तिम इच्छा जो पिता ने प्रकट की थी, बतायी। साधु की पुत्री के साथ अपने बचपन के सुन्दर दिनों का और उसके प्रणय और परिचय का रहस्योद्घाटन किया तथा अपना यह दृढ़ निश्चय दोहराया–

'जब तक देश स्वतंत्र न होगा मिटकर अत्याचार,
तब तक मैं संयमी रहूँगा ब्रह्मचर्य–व्रत धार'।[22]

मुनि ने उस युवक को सामाजिक तथा जातीय अवनति की अवस्था समझायी। उसने बताया कि देश में दुख, रोग, भूख और कुतन्त्र फैला हुआ है। साधु युवक को बाधाओं में भी बढ़ते जाने का संदेश देता है। वह मानता है कि–

'जो रहती है जाति जगत में मरने को तैयार,
वही अमरता का पाती है, ईश्वर से अधिकार।'[23]

वह साधु उस बलिष्ठ और सुन्दर युवक को देश–सेवा का मंत्र देता है। यह कहकर वह बाहर चला जाता है कि वह ठीक समय पर लौटेगा।

चौथे सर्ग में घटना चक्र तेजी से घूमता है। विजया प्रेम में पागल होकर अपने प्रिय को खोजती फिरती है। वह एक दिन गांव के एक किसान–परिवार को दीन दशा में देखती है। वह किसान दरिद्र है। राज कर्मचारियों ने उसे झूठी गवाही देने से इन्कार करने पर सताया और उसके अन्न, वस्त्र और बर्तन बिकवा दिये। ऐसे गरीब अधपेटे सोने वाले किसान की सेवा करने का व्रत लेकर विजया सच्चे सेवा धर्म के नाते गाँव –गाँव में इन कंकाल रूप किसानों को जगाने लगी। ऐसे किसान लोक–सेवा के केन्द्र बन गये। वह सेवा व्रत लेकर गांवों में गयी। उन्हीं गांवों में वह युवक भी गया। देश प्रेम का ज्वार उठा। लोग देश को स्वतंत्र करने के लिए अपना बलिदान करने को तैयार हो गये। विजया का गीत स्वतंत्रता

का बीज मंत्र बन गया। साधु ने भी युवक के पिता के मिलन नगर नामक गाँव में व्याख्यान दिया। स्वतन्त्रता के लिए प्रजा को उत्सुक देखकर शासकों ने बडे अत्याचार किये।

चारों तरफ विद्रोह फैल गया। युवक ने लोगों को लडने के लिए तैयार किया। जनता और शासकों के बीच युद्ध छिड़ गया–

'बढे कुचलने को बैरी गण मानो मत्त पंतग,
झपटे लोग सिंह सम, तब तो पलट गया सब ढंग,
लोहू गर्म हुआ वीरों का धड़क उठे सब अंग।'[24]

× × × × ×

'धडक उठे सब सिंहनाद से झपटे शस्त्र सँभाल,
टिक न सके बैरी कुछ पिछ्डे, सह आक्रमण कराल,
विजया भी भैरवी भेस में आयी धर करवाल।'[25]

युवक पर पड़ने वाले तलवार के वार को मुनि ने झेल लिया। युवक ने शत्रु का सिर काट लिया और –

'विजया ने दूसरी ओर से कर भैरव हुंकार,
मार भगाया शत्रु वृन्द को करके कठिन प्रहार।'

देश स्वतंत्र हुआ। मुनि युवक का पिता था, यह रहस्य स्वयं मुनि ने अपनी मृत्यु से पूर्व उद्‌घाटित कर दिया।

पांचवे सर्ग में विजया का युवक से पुनर्मिलन हुआ है। इस सर्ग में केवल तीन छन्द हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के दूसरे खण्ड काव्य 'पथिक' का प्रकाशन सन् 1920 ई0 में हुआ। इस काव्य में प्रकृति और प्रेम का मणिकांचन योग है। इसकी पृष्ठभूमि की कथा बड़ी रोचक है। त्रिपाठी जी ने लिखा है– '1920 में मैं रामेश्वरम की यात्रा पर गया हुआ था। वहाँ पहली बार समुद्र देखा, उसकी छवि देखकर आत्मविभोर हो उठा। मारे प्रसन्नता के दोनों पैर सागर के पानी में कर एक शिला पर बैठ गया और मुँह से अपने आप 'पथिक' का प्रथम पद निकरल गया है।'[26]

'पथिक' काव्य की कथा पांच सर्गों में विभक्त है। कथा का आरंभ सूर्योदय की अरूणिमा बेला से होता है। एक पथिक समुद्र तट पर प्रातः काल की मनोहर छटा देख रहा है। एक स्वर्गीय किरण सी बाला जो उसकी पत्नी है, उसे इस प्रकृति –प्रणय की मूर्च्छा से जगाती है। वह उसे घर लौट चलने का आग्रह करती है और बच्चे की याद दिलाती है। परन्तु प्रकृति–सौन्दर्य के आनन्द में डूबा हुआ पथिक प्रलाप करने लगा। उसकी सुन्दर प्रिया पति–वियोग में अपने प्राण देने के लिए समुद्र तट पर गयी थी, पर पति को देखकर वह खिल उठी। पथिक ने मनुष्य जगत के दुखों को गिनाकर लौट चलने में अपनी अनिच्छा प्रकट की। इस मानवीय जगत से अधिक मोहक उसे अब प्रकृति प्रतीत हो रही थी। वह अपनी सुन्दर पत्नी को समुद्र तट पर ही छोड़कर वन में कहीं जाकर विलुप्त हो गया।

दूसरे सर्ग में पथिक साधु द्वारा अपने देश और जाति की सेवा करते हुए लोक हित, विश्व कल्याण, देशभक्ति, जनसेवा और मानव सेवा की साधना के लिए प्रेरित किया गया। उद्‌बोधन के इन पदों में मानवीय गुणों की महत्ता, देश एवं जाति के प्रति व्यक्ति का कर्तव्य और त्यागमयी लोक–भावना की सुन्दर रूप रेखा खींची गयी है।

तीसरे सर्ग में पथिक जब देश सेवा के लिए जाता है, तब वह समाज की दरिद्रता, किसानों की दुर्दशा, फूट, दम्भ, विश्वासघात, छल आदि का साम्राज्य देखता है। इसका कारण है, राजा की निरंकुशता और दुर्नीति। प्रजा में कुछ लोग सद्‌विचार वाले हैं, जो सत्यनिष्ठा, निर्भयता, साहस आदि उपदेश तो देते हैं, पर स्वयं उसका पालन नहीं करते। कुछ ने तो देश भक्ति को जीविका का साधन बना रखा है। कुछ राजा से द्वेष रखने के कारण और कुछ स्वार्थवश प्रजा के साथ हैं। पथिक ने देश भर का भ्रमण किया। उसने प्रजा के कष्ट पहचाने। अपने देशानुराग और सहिष्णुता के कारण वह प्रजा का नेता बन गया। उस पथिक ने एक दिन राजा को प्रजा के कष्ट बताये और उन कष्टों के निवारण की याचना की। राजा ने उसे राजसभा से निकलवा दिया। कई बार के प्रयत्नों का भी कुछ फल नहीं निकला। तब पथिक ने प्रजा को राजा का साथ छोड़ने और उससे सभी प्रकार के सम्बन्ध तोड़ लेने का सन्देश दिया। इस सर्ग में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की 1920 ई0 के आस–पास की झॉकी साफ दिखाई देती है। निरंकुश शासन के विरूद्ध जो आवाज तिलक और गॉधी ने उठायी थी और लाल–बाल–पाल ने जो मन्त्र फूंका

था तथा असहयोग की जो रूप रेखा अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध निश्चित हुई थी, उसकी अभिव्यक्ति इस सर्ग में देखी जा सकती है। प्रजा अपने देशसेवक पथिक को तन–मन से चाहती थी, पर पथिक के प्रति राजा का कोप बढ़ रहा था।

चौथे सर्ग में कथावस्तु की चरमावस्था है। पथिक की प्रिया का विरह वर्णन, पथिक के वध की सूचना पाकर प्रिया का करागार में जाना और पथिक के सामने रखे विष के कटोरे को उठाकर विषपान करना और अबोध बालक का अपनी माता के शव से दुलार की याचना करना, पथिक को तडपा–तड़पा कर मारना, उसके पुत्र का वध होना, युवकों का विद्रोह करना, वधिकों का घिराव होना, गाँधीवादी अहिंसक उपदेश के रूप में पथिक का सन्देश देना, नेता का लक्षण और साधु का आशीष, दीन–दरिद्रों में ईश्वर की उपस्थिति का आभास होना और अन्त में साधु का समाधि लेकर स्वर्ग सिधारना तथा पथिक का सुत और नारी सहित वध होना–ये सभी घटनाएँ चौथे सर्ग में तेजी से घटित होती हैं।

पाँचवे सर्ग में जनता की उदासी, विरक्ति और राजा से घृणा दिखाई गयी है। सारे देश में स्तब्धता छा जाती है। राजा ने क्रोध में आकर पथिक के घर को मटियामेट करने की आज्ञा दे दी थी। प्रजा का राजा के प्रति आक्रोश बढ़ता गया। राज कर्मचारी, दास–दासी, सिपाही आदि सभी ने राजा का काम करना छोड़ दिया। उसे कोई पानी देने वाला भी न रहा। प्रजा की शक्ति को दिखाते हुए राज्य से राजा को निष्कासित किया गया। पथिक, साध्वी, सुत और साधु के वध–स्थल पर एक मंदिर बनवाया गया। पथिक की प्रतिमा स्थापित की गयी। शेष बलिदानियों की प्रतिमाएँ भी उसी के पास बैठायी गयीं। वहाँ मेला लगने लगा और लोग पथिक को 'पूज्य देश के पिता' के रूप में प्रणाम करने लगे, क्योंकि–

'एक शुद्ध सच्चे प्रेमी ने आत्म शक्ति साधन से,
मुक्त कर दिया एक देश को नरक–तुल्य शासन से।'

'पथिक' की कथावस्तु सुश्रृंखलित है। उसमें कहीं भी कोई बिखराव या ढीलापन नहीं दिखाई देता। यह सुविन्यस्त खण्ड काव्य है।

रामनरेश त्रिपाठी का तीसरा खण्ड काव्य 'स्वप्न' है। इसकी रचना उन्होंने सन् 1928 ई0 में की थी। यह खण्ड काव्य उनकी उत्तरी यात्रा का स्मृति चिन्ह है।

'स्वप्न' खण्डकाव्य की कथा पॉच सर्गों में सँजोई गयी है। कथा का प्रारंभ नायक वसन्त के दुविधामय चित्रण से होता है। उसको एक ओर तो देश के दुख–दैन्य का मानसिक कष्ट है और दूसरी ओर प्रेयसी सुमना का यौवनमय सौन्दर्य तथा प्रकृति की मनोरम छटा का आकर्षण है।

दूसरा सर्ग प्रकृति की सुखद गोद में बैठे बसन्त की मधुर कल्पनाओं से आरम्भ होता है। उसकी पत्नी सुमना उसकी मानसिक स्थिति को समझती है और कहती है कि चिन्ता करने से आयु क्षीण होती है और युवावस्था का रस शरीर रूपी तरकश से तीर की तरह निकल जाता है। अतः या तो गृहस्थ जीवन का सुख भोगो अथवा गृहस्थ जीवन को छोडकर संसार की सेवा में लग जाओ। पत्नी की बातों से वह बहुत प्रभावित होता है।

तीसरे सर्ग में कथा को गतिशील बनाया गया है। सुख–समृद्धि वाले बसन्त के देश पर शत्रु का आक्रमण होता है। देशवासी स्वदेश की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में भी बसन्त अपनी नायिका के केशपाश सुलझाने में व्यस्त है। पति की ऐसी स्थिति को देखकर सुमना का हृदय ग्लानि और लज्जा से भर जाता है और अपने को ही वह इस कायरता के लिये उत्तरदायी मानती है। एक रात्रि को पुरुष वेश में वह घर से निकल जाती है।

चौथे सर्ग का आरम्भ विरही बसन्त की मार्मिक उक्तियों से होता है। वह वन की डगर–डगर पर सुमना को खोजता फिरता है। एक बलिष्ठ युवक आकर बसन्त से स्वदेश प्रेम की याचना करता है और उसे सूचित करता है कि देश की स्वतन्त्रता का यह अंतिम युद्ध होगा। वह यह भी बतलाता है कि सुमना नाम की एक नारी भी इस पुनीत कार्य में लगी है। बसन्त का खोया हुआ पौरुष जाग उठता है और वह युद्ध भूमि में उतर जाता है।

पॉचवे सर्ग में बसन्त वीरों में एक नयी स्फूर्ति लेकर आता है। परिणामतः उन्हें विजयश्री मिलती है बसन्त की कीर्ति का मंगलगान होता है और एक बड़े भारी उत्सव का आयोजन किया जाता है। उस उत्सव में बसंत की दृष्टि उस युवक को खोजती है जिसने उसे युद्ध भूमि में लाकर खड़ा किया था और जो छाया की तरह युद्ध में उसके साथ रहा था। सुअवसर पाकर सुमना उसे विजयमाला अर्पित करती है

और धीरे से कान में कहती है कि जिस युवक को आप खोज रहे हैं वह मैं ही थी। इस प्रकार दोनों का मिलन होता है।

## नवीन प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह

रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य में परम्पराओं के निर्वाह की अपेक्षा नवीन प्रवृत्तियों को अपनाने के प्रति अधिक आग्रह दिखाया है। उनमें इसी कारण मंगलाचरण का अभाव है। अपने काव्यों का प्रारंभ उन्होंने प्रकृति के मंगलमय उल्लासमय वातावरण के वर्णन से किया है। कथावस्तु के नियोजन में भी त्रिपाठी जी ने स्वतन्त्र मार्ग ग्रहण किया है। त्रिपाठी जी अपने समकालीनों से पृथक्, इतिहास से दूर, अपनी कल्पना के बल पर कथावस्तु का निर्माण कर उसमें समय की गतिविधियों को समेटने का प्रयत्न कर रहे थे। कल्पना–प्रसूत कथा में कवि को अपना मन्तव्य स्पष्ट करने में अधिक स्वतन्त्रता एवं सुविधा रहती है। खण्ड काव्य की कथा का इतिहास सम्मत होना अनिवार्य नहीं है, आवश्यकता इस बात की रहती है कि कथावस्तु निरुद्देश्य कल्पना के लोक में विचरण करने वाली न होकर यथार्थता से संपृक्त हो।

त्रिपाठी जी ने अपने काव्यों के लिए रुचिकर कथाओं का ही चयन किया है। उनकी पृष्ठभूमि तथा वातावरण, औत्सुक्य और जिज्ञासा का सृजन करते हैं। उसमें एकान्विति का सूत्र विद्यमान रहता है। कथावस्तु में जीवन का जो पक्ष अपनाया गया है, उसका निर्वाह कवि ने बड़े कौशल से किया है। प्रेम की पीठिका देकर राष्ट्रीय चेतना का जो मार्मिक उद्घाटन किया गया है, वह मानवीय आदर्शों को समेटकर मर्म को स्पर्श करने वाला बन जाता है। तीनों खण्ड काव्यों की मूलभूत चेतना यही है। प्रथम प्रेम का वासनामय आकर्षण, नायक की द्विधा, नायिका द्वारा वासना का परिष्कार और अन्त में मातृभूमि के लिए सर्वस्व त्याग– यही मूल भावसूत्र तीनों खण्ड काव्यों में दृष्टिगत होता है। अवान्तर कथाओं का नितान्त अभाव है, इसलिए कथावस्तु का प्रवाह अवाध गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता दिखाई पड़ता है।

त्रिपाठी जी ने अपने काव्यों में सीमित पात्रों का प्रयोग किया है। गिने–चुने पात्रों के माध्यम से कवि अपने उद्देश्य को भली प्रकार स्पष्ट करने में सफल हुआ है। इसमें कथा सूत्र की निरन्तरता की रक्षा भी हुई है। मुख्य रूप से नायक और नायिका दो ही पात्र अपनाये गये हैं। काव्य की सारी गतिविधि

इन्हीं दो बिन्दुओं पर केन्द्रीभूत है। एक–दो अन्य पात्र केवल उन्हें प्रेरणा देने के लिए अथवा कथा–विकास के लिए ही काव्य–मंच पर आते दिखाई पड़ते हैं। 'मिलन' में संन्यासी की उपस्थिति इसी प्रयोजन के लिए है। पात्रों का चरित्र–चित्रण स्वाभाविक भूमिका पर हुआ है। साधारण मानवीय धरातल से उठकर आदर्श के आसन पर उनका प्रतिष्ठापन आकस्मिक एवं अस्वाभाविक न होकर मनोवृत्तियों के अनुकूल सहज और नैसर्गिक है। नायक प्रथम एक साधारण मनुष्य ही है। युवावस्था के प्रेममय स्वप्न और राष्ट्रीय हीन दशा–जनित सेवा का अदम्य उत्साह–यह द्विधा त्रिपाठी जी के नायकों का प्रमुख गुण है। उनका प्रेम पथ पर अग्रसर होना मनोवैज्ञानिक है, किन्तु उद्‌बोधन द्वारा राष्ट्रीय चेतना का जागरण कर देश के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने का प्रबल उत्साह, उनके जीवन का प्रमुख आधार एवं चरित्र का पुष्टतम अंग बन जाना भी कम मनोवैज्ञानिक नहीं है। अन्त में पहुँचते–पहुँचते वे धीरोदात्त नायक की स्थिति ग्रहण कर लेते हैं और परम्परित काव्य–नियमों के अधीन नायक के महत्व और गौरव की सिद्धि का पालन स्वयमेव हो जाता है। प्रेमी, किन्तु संयमी आनन्द कुमार, सहनशील और त्याग पुंज स्वरूप पथिक और रोमांटिक, किन्तु सद्‌वृत्तिमय बसंत के चरित्र–चित्रण बडे उज्ज्वल एवं मनोवैज्ञानिक बन पडे हैं। उनके बाह्य व्यक्तित्व का अंकन भी कवि ने किसी महापुरुष की आभा युक्त गौरव शालिनी शक्ति–सम्पन्न रुपरेखा से कम सुन्दर नहीं किया। संन्यासी के शब्दों में आनन्द कुमार के व्यक्तित्व की पराकाष्ठा द्रष्टव्य है–

'सिकुड़न रहित ललाट ललित अति,
उन्नत कला विधान।
पौरुष पूर्ण विशद वक्षस्थल,
वृषभ–कन्ध बलवान।
परिध समान प्रलम्ब युगल भुज,
पृथुल कठिन भुजदण्ड।
अंग–अंग से छलक रही थी।
शोभा शक्ति प्रचण्ड।'[27]

नायिकाओं का चरित्र–चित्रण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनका गौरव भी नायक के समान ही है। कहीं–कहीं तो उनके चरित्र की रेखाएँ नायकों से अधिक उज्ज्वल हो उठी हैं। 'स्वप्न' में बसन्त का चरित्र उतना सम्पन्न नहीं जितना सुमना का। भटके हुए पति को सन्मार्ग पर अग्रसर करना उसका ही काम है। देश प्रेम का पारावार उसके मन में हिलोरे ले रहा है। घर बैठे पति की कायरता पर उसे खेद है। सुमना पति को चेताती है–

'तुम हो वीर पिता–माता के,
वीर पुत्र मेरे जीवन–धन।
तुम से आशायें कितनी हैं,
जन्म भूमि की हे अरिमर्दन।

× × × × ×

शस्त्र ग्रहण कर रण में जाकर,
विजय प्राप्त कर वीर अरिन्दम।'[28]

कवि का चरित्र–चित्रण सफल बन पड़ा है। पात्रों की चरित्र–रेखायें अपने इंगित मात्र से उसके गौरव और आदर्श को झलका देने में समर्थ हैं। चित्रण–कौशल विस्तृत भूमिका पर न होकर उसका महत्व अपनी सीमा में सांकेतिक किन्तु सुस्पष्ट होने में निहित है। इने–गिने पात्रों के जीवन की रेखाएं एक बिन्दु से उद्भासित होकर वातावरण को ज्योतिर्मयी करती हुई आदर्श के क्षितिज पर विश्राम पाती हैं। प्रेम–स्वरूपिणी विजया देश प्रेम से परिपूर्ण सुमना और पति भक्त पथिक–पत्नी के चरित्र अपने आप में पूर्ण स्पष्ट एवं आदर्श की ज्योति से दैदीप्यमान हैं।

त्रिपाठी जी के काव्य के रति, उत्साह और शोक तीन मूल भाव हैं। विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन कवि ने संयोग श्रृंगार की अपेक्षा अधिक किया है। हिन्दी काव्य में विरहिणी नारियों की अन्तर्दशाओं का चित्रण पर्याप्त हुआ है, किन्तु विरही पुरुषों की दशा की अभिव्यक्ति का अभाव है। ऐसा लगता है कि मानो कवियों ने यह मान लिया हो कि विरह का दुख स्त्रियों को ही होना चाहिये, पुरुषों को नहीं, पुरुष तो विरह वेदना का कारण मात्र बन सकते हैं, संभवतः यह कल्पना इसलिए की गयी हो कि नारी

कोमल–हृदय होती है और पुरुष का हृदय तनिक कठोर होता है। पुरुष हृदय कठोर अवश्य होता है पर उसको पत्थर तो नहीं माना जा सकता, अतएव प्रिय वियोग का विरह उसके हृदय में अवश्य होता है। त्रिपाठी जी ने इस तथ्य को स्वीकार कर अपने 'स्वप्न' काव्य में विरही बसन्त के हृदय का भी चित्रण किया है। अपनी पत्नी के वियोग में वह चीत्कार उठता है–

'प्रेम–पद्मिनी! प्रेमलता हे! प्राण–बल्लभे! हे प्राणेश्वरि!
मेरी प्रिय पद्मिनी, कहाँ हो ? हे मेरे जीवन की सहचरि!'[29]

कवि का प्रतिपाद्य राष्ट्रीयता है। अतः काव्य में रति के पश्चात् प्रधानभाव उत्साह है। त्रिपाठी जी की नायिकाएँ एवं नायक देश की विपन्नता पर आँसू नहीं बहाते वरन् इससे उनकी उत्साह भावना को और बल मिलता है और वे जन–संगठन के कार्य में जुट जाते हैं–

'देखा उसने उसी भाँति के अगणित नर कंकाल,
चिपके पेट रीढ़ के जिनके चुचके–पुचके जाल।
विजया ने प्रकिया सुदृढ़ होकर प्रयत्न भरपूर,
तन–मन से इस दीन देश का कष्ट करूँगी दूर।'[30]

यहाँ देश की कारुणिक अवस्था पर आधारित उत्साह व्यर्थ नहीं है। फिर भी अपने देशवासियों के दुख से दुखी होकर रोना जितना स्वाभाविक है, उतना गर्जना नहीं। इसीलिए वीर भावना पूर्णतः उद्दीप्त नहीं होती।

त्रिपाठी जी के काव्य में शोक भाव की अभिव्यक्ति सशक्त बन पड़ी है। शोक भाव कविता में मुख्यतया दो रूपों में आता है। प्रथम, अपनी विपत्ति अथवा कष्ट से। इस प्रकार के वर्णन का त्रिपाठी जी के काव्य में पूर्णतया अभाव है। दूसरे, प्रिय वस्तु अथवा इष्ट जन के विनाश से। पथिक का अन्त भी बड़ा दुखद है। यहाँ शोक भाव के दर्शन होते हैं। पथिक की मृत्यु पर देश में करुणा का सागर बहता है–

'रोये वृद्ध कहाँ है जीवन का अनमोल सहारा,
रोकर गिरे अचेत युवक, है साथी कहाँ हमारा।
कलप उठे आबाल हमारा रक्षक मित्र कहाँ हैं ?

रोये दीन किसान हमारा पुण्य पवित्र कहाँ है ?

× × × × ×

लेकर नाम पथिक का प्यारा देश रो उठा सारा।'[31]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि इन काव्यों में जीवन का जो पक्ष अपनाया गया है, उसकी व्याख्या अपने आप में पूर्ण है। प्रेम और राष्ट्रीय भावना को प्रकृति की पृष्ठभूमि देकर मानवीय आदर्शों के साँचे में उज्ज्वल रूप दिया गया है। अवान्तर प्रसंगों के सर्वथा निषेध के कारण कथा की एकान्विति में कोई बाधा नहीं है। कथावस्तु के बीच–बीच में आने वाले वर्णन कथातन्तु को क्षण भर के लिए पाठक की आँखों से ओझल कर देते हैं, किन्तु खण्डकाव्यत्व की दृष्टि से वे अनिवार्य जान पडते हैं। मन में उठने वाले बवंडर के प्रभाव–युक्त चित्रण के लिए विषद व्याख्या की योजना साभिप्राय प्रतीत होती है।

त्रिपाठी जी के तीनों खण्ड काव्यों की मूलभूत चेतना एक ही है। कवि एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिए तीन विभिन्न मार्ग ग्रहण करता है।

श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद का मार्ग सुझाया, उस पर चलने वाले कवियों में रामनरेश त्रिपाठी महत्वपूर्ण हैं। कई स्थलों पर त्रिपाठी जी पर श्रीधर पाठक का प्रभाव पड़ा है। 'जगत सचाई सार' में कर्म का महत्व 'स्वप्न' में मुनि के कर्म पथ के उपदेश के समान विचारणीय है। श्रीधर पाठक में भाषा की सरलता तथा अभिव्यक्ति की अभिधामय स्पष्टता है, जबकि त्रिपाठी जी में अप्रस्तुत विधान द्वारा तथा भाषा के सुन्दर प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति का सौष्ठव अपूर्व बन पड़ा है। श्रीधर पाठक जिस स्वच्छन्दवादिता की शुरुआत अनूदित काव्यों के सहारे करते हैं, त्रिपाठी जी उस स्वच्छवादिता को मौलिक काव्यों के सहारे प्रतिष्ठित करते हैं। इस रूप में स्वच्छन्दतावादी काव्य के विकास में रामनरेश त्रिपाठी का महत्वपूर्ण स्थान है।

# मैथिलीशरण गुप्त

## राष्ट्रकवि

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का प्रमुख स्थान है। गुप्त जी में राष्ट्रीय स्वर प्रधान था। उन्होंने अपने समसामयिक नैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आकांक्षाओं को वाणी देकर खडीबोली को युगीन चेतना से जोड़ा। इसी अर्थ में वे राष्ट्रकवि हैं।

गुप्त जी जिस राष्ट्रीय चेतना को लेकर काव्य–क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, उसमें पुराने मूल्यों में अटूट आस्था होने के बावजूद वर्तमान की समस्याओं के प्रति पूर्ण जागरूकता थी।

गुप्त जी के प्रमुख काव्य–ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

रंग में भंग, जयद्रथ वध, भारत भारती, पंचवटी, झंकार, साकेत, यशोधरा, द्वापर, जय भारत, विष्णु प्रिया (मौलिक)।

प्लासी का युद्ध, मेघनाद वध (अनूदित)।

## भारत भारती : राष्ट्रीय चेतना का उद्‌बोध

गुप्त जी का पहला महत्वपूर्ण काव्य 'भारत भारती' है। इसका प्रकाशन 1913 ई0 में हुआ। हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र में इतने व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना जगाने का जो काम अकेले 'भारत भारती' ने किया, उतना अन्य पुस्तकों ने मिलकर भी नहीं किया।[32] एक समय था जब 'भारत–भारती' के पद्य प्रत्येक हिन्दी भाषी के कन्ठ पर थे। गुप्त जी का प्रिय हरिगीतिका छन्द इस कृति में प्रयुक्त हुआ है। भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति में इस पुस्तक का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यह काव्य तीन खण्डों में विभक्त है– 1–अतीत खण्ड, 2–वर्तमान खण्ड, 3–भविष्यत् खण्ड।

अतीत खण्ड में भारत वर्ष के प्राचीन गौरव का बडे मनोयोग से बखान किया गया है। भरतीयों की वीरता, आदर्श विद्या–बुद्धि, कला–कौशल, सभ्यता–संस्कृति, साहित्य–दर्शन, स्त्री–पुरुषों आदि का गुणगान किया गया है। वर्तमान खण्ड में भारत की वर्तमान अधोगति का चित्रण है। इस खण्ड में कवि ने साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र में होने वाली अवनति, रईसों और उनके सपूतों के कारनामें,

तीर्थ तथा मंदिरों की दुर्गति तथा स्त्रियों की दुर्दशा आदि का अंकन किया है। भविष्यत् खण्ड में भारतीयों को उद्‌बोधित किया गया है तथा देश के मंगल की कामना की गयी है।

काव्य की दृष्टि से 'भारत–भारती' उच्च कोटि की कृति नहीं है, परन्तु रमणीयता का एकदम अभाव भी नहीं है–भारतीयों की अवनति एवं हीनता का करुण चित्रण अत्यधिक प्रभावक्षम है। लाक्षणिक प्रयोग यद्यपि कम हैं, प्रायः अभिधा का ही आश्रय लिया गया है, किन्तु शैली का प्रवाह एवं भाषगत ओज प्रस्तुत काव्य को दीप्ति प्रदान करते हैं और भावनाओं को उद्वेलित करने की अद्‌भुत शक्ति तो इसमें है ही। इसीलिए स्वतन्त्रता के पुजारी देश–सेवक इसका गान करते हुए सत्याग्रह–आन्दोलनों में भाग लेते थे।

गुप्त जी के दूसरे प्रसिद्ध काव्य 'जयद्रथ वध' की रचना 'भारत भारती' से पहले हुई थी। हरिगीतिका छन्द में रचित यह एक खण्ड काव्य है। कथा का आधार महाभारत है। एक दिन युद्ध–निरत अर्जुन के दूर निकल जाने पर द्रोणाचार्यकृत चक्रव्यूह–भेदन के निमित्त शस्त्रास्त्र–सज्जित अभिमन्यु उसमें प्रविष्ट हुआ। अप्रतिम वीर अभिमन्यु के समक्ष एकाकी ठहर सकने में असमर्थ योद्धाओं में से सात रथियों ने षड्‌यन्त्र द्वारा उसकी हत्या की। इसमें जयद्रथ का विशेष हाथ था। अतः अर्जुन ने अगले दिन सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध न कर सकने पर स्वयं चिता में जल मरने की प्रतिज्ञा की। आचार्य विरचित चक्रव्यूह में रक्षित जयद्रथ का वध कौन्तेय सूर्यास्त तक न कर सके। फलतः अर्जुन स्वयं जल मरने को तैयार हुए। अपने शत्रु को जलता हुआ देखने के लिए जयद्रथ सामने आ गया। तब श्रीकृष्ण ने 'अस्ताचल के निकट घन–मुक्त मार्तण्ड' के दर्शन करा अर्जुन को शर–संधान का आदेश दिया। जयद्रथ अर्जुन द्वारा मारा गया।

काव्य की दृष्टि से जयद्रथ वध गुप्त जी की आरंभिक रचनाओं में है। खड़ीबोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से इस काव्य का महत्व है।

## साकेत : नारी चरित्र की महान व्याख्या

गुप्त जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'साकेत' महाकाव्य है। सन् 1913–14 ई0 से इसकी रचना आरंभ की गयी थी, किन्तु पुस्तकाकार रूप में यह रचना 1931 ई0 में प्रकाशित हुई। इसमें बारह सर्ग हैं।

'साकेत' का प्रणयन मूलतः उर्मिला के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए किया गया था। 'साकेत' के नायक लक्ष्मण तथा नायिका उर्मिला हैं। प्रथम सर्ग में सरस्वती वन्दना से समारम्भ करके साकेत नगरी का वर्णन और लक्ष्मण–उर्मिला के प्रेमालाप तथा वाग्विनोद का चित्रण हुआ है। सर्गान्त में राम के राज्याभिषेक की सूचना दी गयी है। उर्मिला का राम के अभिषेक–चित्र को अंकित करना, लक्ष्मण का चित्र बनाते–बनाते उर्मिला को आलिंगनपाश में बाँधना वर्णित हुआ है। उर्मिला का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि का कथन है–

'स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही उर्मिला।
शील सौरभ की तरंगे आ रहीं,
दिव्य भाव भवाब्धि में हैं ला रही।
सौंध सिंह द्वार पर अब भी वही,
बाँसुरी रस–रागिनी में बज रही।
अनुकरण करता उसी का कीर है,
पंजर स्थित जो सुरम्य शरीर है।'[33]

द्वितीय सर्ग में मंथरा–कैकेयी का वर्णन हुआ है। मंथरा ने राम के अभिषेक को एक सुनियोजित षड्यन्त्र कहा है– 'नहीं तो यह सीधा षड्यन्त्र रचा क्यों जाता यहाँ स्वतन्त्र ?' और यह व्यंग्य किया है–

'शेष है अब भी क्या कुछ हाल ?
सरलता भी ऐसी है व्यर्थ,
समझ जो सके न अर्थानर्थ।
भरत को करके घर से त्याज्य,
राम को देते हैं नृप राज्य।
भरत–से सुत पर भी संदेह
बुलाया तक न उन्हें जो गेह।'[34]

मंथरा का वचन कैकेयी के मर्मस्थल को बेध गया। कैकेयी ने क्रोधावेश में दशरथ को वर देने के लिए विवश किया और राम के लिए वनवास तथा भरत के लिए राज्य मॉग लिया। राजा दशरथ ने वर तो दे दिया, परन्तु तब– 'रहे बस अर्ध जीवित, अर्धमृत से वे।'

तीसरे सर्ग में राम और लक्ष्मण कैकेयी के महल में बुलाये जाते हैं। दशरथ अर्ध चेतनावस्था में कहते हैं कि 'विश्वास ने मुझको ठगाया।' कैकेयी को वे क्रोध में कहते हैं कि 'मरूँगा मैं तथा पछताएगी तू। दशरथ की मूर्च्छा, लक्ष्मण का क्रोध और वन गमन की तैयारी का भी इसी सर्ग में वर्णन हुआ है। चतुर्थ सर्ग में कौशल्या को वनगमन का समाचार मिलता है। कौशल्या दुखी होकर कहती हैं कि– 'मुझे राम की भीख मिले।' सुमित्रा द्वारा क्षत्राणियों के अनुरूप अन्याय न सहने की गर्जना, कौशल्या द्वारा राम को वन जाने की अनुमति, सीता की राम के साथ वन जाने की तैयारी, उर्मिला को अयोध्या में छोड़ जाने का लक्ष्मण का संकल्प, सीता का वल्कल–वस्त्र–ग्रहण, उर्मिला की मूर्च्छा और राम, लक्ष्मण तथा सीता के वनवास हेतु विदा होने का वर्णन चौथे सर्ग में हुआ है।

पॉचवे सर्ग में वन मार्ग में ग्रामीण नर–नारी से भेंट, प्रजा का विलाप, रथ के आगे लेट जाने वाले प्रजाजन, राम का जन्मभूमि को प्रणाम, तमसा और गोमती पार कर निषादराज से मिलन, गंगा पार पहुॅच कर भरद्वाज मुनि के आश्रम में प्रवेश तथा चित्रकूट–पवास आदि प्रसंगों का वर्णन हुआ है।

छठवें सर्ग में उर्मिला की मूर्च्छा, कौशल्या द्वारा दशरथ को समझाने का प्रयास, सुमन्त्र का अकेले लौटना, दशरथ मरण और भरत को लाने के लिए दूतों को भेजा जाना निरुपित हुआ है। दशरथ के अंतिम उद्‌गार अत्यन्त मार्मिक हैं–

'मेरे कर युग हैं टूट चुके,
कटि टूट चुकी, सुख छूट चुके।
ऑखों की पुतली निकल पड़ी,
वह यहीं कहीं है विकल पड़ी।
खाकर भी बार–बार झटके–
क्यों प्राण अभी तक हैं अटके ?

हे जीव चलो अब दिन बीते,

हा राम, राम, लक्ष्मण, सीते।'[35]

सातवें सर्ग में भरत–शत्रुघ्न का आगमन, भरत की ग्लानि और दुख, शत्रुघ्न का क्रोध, कौशल्या के पास जाकर दुखी भरत का कथन कि 'आ गया मैं गृह कलह का मूल, दण्ड दो, वह दो पदों की धूल', कौशल्या द्वारा भरत को धैर्य बँधाना, दशरथ का दाह–संस्कार घटनात्मक पद्धति में वर्णित हैं।

आठवें सर्ग में भरत का चित्रकूट आगमन, कैकेयी का राम को लौट चलने का आग्रह तथा भरत को गले लगाकर यह कहना–

'उसके आशय की थाह मिलेगी किसको,

जनकर जननी भी जान न पायी जिसको।'

कैकेयी की शोक–संतप्त वाणी का हृदय को चीर देने वाला प्रसंग आता है–

'यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को,

× × × × ×

यह सच है तो अब लौट चलो तुम भैया,

अपराधिन मैं हूँ तात तुम्हारी मैया,

यदि मैं उकसाई गयी भरत से होऊँ,

तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।

× × × × ×

युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी,

रघुकुल में थी एक अभागी रानी,

निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा,

धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'[36]

अन्त मे, भरत राम की चरण पादुका प्राप्त करने में सफल होते हैं। यहीं पर लक्ष्मण का क्षीणकाया उर्मिला–रेखा से मिलन होता है और उर्मिला कहती है कि–

'मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी,
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी।
गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया–पद–तल में,
वह भीग उठी प्रिय–चरण धरे दृग–जल में।'[37]

नवम् सर्ग में उर्मिला–वियोग प्रगीत और मुक्तक शैली में वर्णित है। दसवें सर्ग में उर्मिला की बाल्यकाल की स्मृतियॉ, जनक गृह में सीता और उर्मिला की झांकियाँ और उर्मिला का विरह–वर्णन अभिव्यंजित है।

ग्यारहवें सर्ग में अयोध्या के बाहर भरत की कुटी, उनकी तपस्या, माण्डवी और उर्मिला के दुख, राम के चित्रकूट प्रस्थान से लेकर सूर्पणखा के नाक–कान काटे जाने और खर–दूषण वध तक की घटनाओं की सूचना आदि का वर्णन है। भरत द्वारा संजीवनी प्राप्ति हेतु आकाश–मार्ग से जाते हुए हनुमान को बाण मारकर नीचे उतारना, संजीवनी देना और हनुमान से सीता हरण, जटायु संस्कार, कबन्धासुर का वध, शबरी का आतिथ्य, सुग्रीव–मिलन, बालि–बध, अशोक वाटिका में सीता के दर्शन, लंका–दहन, विभीषण की शरणागति, राम–रावण का युद्ध, कुम्भकर्ण वध और लक्ष्मण को शक्ति लगने तक का विवरण दिया गया है। अन्त में हनुमान संजीवनी लेकर आकाश मार्ग से लंका लौट जाते हैं।

द्वादश सर्ग में भरत–शत्रुघ्न युद्ध स्थल में लंका की ओर प्रस्थान की तैयारी करते हैं। उर्मिला भी जाना चाहती है, परन्तु वशिष्ठ द्वारा सबको शान्त कर मन्त्र बल से लंका का युद्ध देखने की दिव्य दृष्टि दे दी जाती है। लक्ष्मण की मूर्च्छा टूटना, पुनः युद्ध, मेघनाद वध और अन्त में रावण का वध होता है। राम का अयोध्या लौटना, उर्मिला की प्रसन्नता और लक्ष्मण उर्मिला का मिलन इसी सर्ग का वर्ण्य विषय है।

साकेत की कथावस्तु का कोमल ताना–बाना प्रधान पात्र उर्मिला को सम्बद्ध करते हुए और सभी घटनाओं को साकेत में केन्द्रित करते हुए बुना गया है। 'राम का चरित' इस प्रबन्ध काव्य का आधार

फलक है। इसकी नव्यता यह है कि यह राम और सीता के स्थान पर परम्परा से हटकर उर्मिला और लक्ष्मण की प्रेम कथा है। नारी के चरित्र की महान व्याख्या करना साकेत का लक्ष्य रहा है।

'साकेत' एक कलात्मक कृति है। इसमें कवि ने व्याकरण सम्मत एवं संस्कृत की तत्सम–शब्द–प्रधान विशुद्ध खडीबोली का प्रयोग किया है। 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त की खडीबोली काव्योपयुक्तता एवं लोकप्रियता के सोपान पर चढ़ती हुई दिखाई देती है। 'साकेत' खडीबोली का समर्थ एवं मौलिक महाकाव्य है, जो भाषिक उत्कर्ष की महत्ता प्रतिपादित करने में कदापि पीछे नहीं है, क्योंकि इसमें भाषा की शुद्धि एवं शक्ति समाविष्ट है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है– 'साकेत की खड़ीबोली अधिक स्वतन्त्र है। उस पर संस्कृत का अनावश्यक भार नहीं है और न ही इसके छन्दों और समास आदि में संस्कृत की पद्धति स्वीकार की गयी है। × × × × × साकेत के भाषोत्कर्ष पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साकेत ने आशा और विश्वास के साथ खडीबोली के उस महत्वपूर्ण अध्याय की सुखान्त समाप्ति कर दी, जिसे अनेक व्यक्ति अनिश्चितता, आशंका, निराशा, अविश्वास तथा साथ ही हर्ष एवं विश्वास के साथ देख रहे थे।'[38]

खड़ीबोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के पीछे मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय भावना थी। उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक है। उन्होंने प्राचीन भारत का गौरव गान अत्यन्त ओजस्वी वाणी में किया तथा उसे आधुनिक संदर्भों से जोड़ा। उनके काव्यों में मानवता की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है।

# सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–410

2. पूनम चन्द्र तिवारी – द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ–247

3. वही, पृष्ठ–248

4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ –410

5. डॉ0 बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–319–320

6. डॉ0 रामचन्द्र मिश्र – श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –260

7. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' – प्रियप्रवास–सर्ग–1, पद–1

8. वही, सर्ग –7, पद–11

9. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ–113

10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–413

11. वही, पृष्ठ–413

12. वही, पृष्ठ–426

13. रामनरेश त्रिपाठी – मिलन (खण्ड काव्य), पृष्ठ–9

14. वही, प्रथम सर्ग, पृष्ठ–4

15. वही, पृष्ठ–5

16. वही, पृष्ठ–5

17. वही, पृष्ठ–16

18. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ–22

19. वही, पृष्ठ–23

20. वही, पृष्ठ–25

21. वही, पृष्ठ–31

22. रामनरेश त्रिपाठी – मिलन (खण्ड काव्य–तृतीय सर्ग), पृष्ठ–48

23. वही, पृष्ठ–52

24. वही, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ–69

25. वही, पृष्ठ–70

26. सम्मेलन पत्रिका (श्रद्धांजलि विशेषांक), पृष्ठ–254–255

27. रामनरेश त्रिपाठी – मिलन–सर्ग–3, पद–7

28. रामनरेश त्रिपाठी – स्वप्न–सर्ग–3, पद–32–33

29. वही, सर्ग–4, पद–1

30. रामनरेश त्रिपाठी – मिलन, चौथा सर्ग, पद–18

31. रामनरेश त्रिपाठी– पथिक, पृष्ठ–66

32. डॉ0 बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ–313

33. मैथिलीशरण गुप्त – साकेत– प्रथम सर्ग, पृष्ठ–7

34. वही, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ–17

35. वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ–91

36. वही, अष्ठम सर्ग, पृष्ठ–131–132–133

37. वही, पृष्ठ–141

38. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ–42, 96

# अध्याय–5

# छायावादी काव्य

अध्याय–5

# छायावादी काव्य

छायावादी काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावाद आन्दोलन की सर्वोत्तम निष्पत्ति है। इस काव्यधारा का समय 1920 ई0 से 1938 ई0 तक माना जा सकता है। यद्यपि 1920 ई0 से पहले ही छायावादी काव्य रचनायें होने लगी थीं। 1920 ई0 में मुकुटधर पाण्डेय द्वारा छायावाद नामकरण किया गया। इसके बाद इस तरह की रचनाओं को छायावादी रचनाएँ कहा जाने लगा। छायावाद मुख्यतः जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत तथा महादेवी वर्मा के काव्यों का प्रमुख स्वर रहा।

## जयशंकर प्रसाद

### विकासमान व्यक्तित्व के कवि

छायावाद के प्रमुख कवियों में पहला नाम जयशंकर प्रसाद का आता है। जयशंकर प्रसाद शब्द की सभी छायाओं में छायावाद के वरिष्ठ कवि हैं।[1] वह विकासमान व्यक्तित्व के रचनाकार हैं। साहित्येतिहास के क्रम में उनकी रचनाएँ छायावाद की आरंभिक सूचना देती प्रतीत होती हैं। 'झरना' संग्रह को उनकी प्रथम छायावादी रचना माना जाता है। किन्तु प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के संकेत इससे पहले भी मिलने लगते हैं। 'चित्राधार' से 'कामायनी' तक की यात्रा प्रसाद की स्वच्छदतावादी वृत्ति के विकास की सूचक है।

अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत प्रसाद ने 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में सवैया, कवित्त, धनाक्षरी लिखकर की। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित कविता 'भारतेन्दु' पत्र में जुलाई, 1906 ई0 में 'कलाधर' उपनाम से छपी थी। जीवन के आरंभ में प्रसाद को एक वैभवशाली सामंती परिवेश मिला था। इससे उनके अभिजात्य संस्कार निर्मित हुये थे। इन्हीं संस्कारों के कारण प्रसाद की भाषा में संस्कृत बहुलता आयी। इसी को लक्ष्य करके मुक्तिबाधे ने 'कामायनी : एक पुनर्विचार' में प्रसाद के सामन्ती परिवेश और मनु की देव विलासी जीवन स्मृति में समानताएँ खोजने की कोशिश की। उन्होंने लिखा है– 'प्रसाद जी

की यह देव सभ्यता निश्चित ही वह सामन्ती सभ्यता है' जिसका अब जीर्णोद्धार नहीं हो सकता। वे सम्बन्ध गये। वह प्राचुर्य गया। वह विकास गया। अब केवल उसकी स्मृतियाँ शेष हैं। वह जमाना गुजर गया।'[2]

प्रसाद का पारिवारिक परिवेश उन्हें विद्वानों, कलाकारों के संपर्क में ले आता है और विद्यालयों की शिक्षा के अभाव की क्षतिपूर्ति हो जाती है। अपनी आरंभिक कृतियों में उन्होंने पुराण ग्रन्थों तथा वाल्मीकि, कालिदास जैसी श्रेष्ठ प्रतिभाओं से अपनी काव्य सामग्री प्राप्त की। निराला ने अपने एक पत्र में इस पर व्यंग्य भी किया है– 'पर मैंने सुना है, आप उपनिषदों से नीचे उतरना पसंद नहीं करते। फिर भी प्रयत्न करूँगा, यदि आपको नीचे उतार सकूँ।'[3] प्रसाद ने क्रमशः अपने अध्ययन क्रम का विकास किया और पुराणों के मिथकीय संसार से आगे बढ़कर इतिहास की जटिलताओं में प्रवेश किया। उस समय देश में राष्ट्रीय भावना तीव्रतर होती जा रही थी। बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास को एक प्रकार पुनर्जीवन प्रदान करना चाहता था। भारतीय मनीषा के सक्रिय योगदान के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी में नवजागरण आया। प्राचीन परम्परओं को नये सिरे से देखने की चेष्टा की गयी। प्रसाद का नाट्य साहित्य इसका उदाहरण है। प्रसाद की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक थी। वह भारत को आर्यों का आदि देश तथा जन्मभूमि घोषित करते हैं।

प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी चेतना की बुनावट में वैयक्तिक जीवन–प्रसंग, पारिवारिक परिवेश, सामाजिक परिस्थितियाँ, सभी अपने–अपने स्तर पर प्रभाव डालते हैं। प्रसाद जीवन में गहरे अन्तर्द्वन्द्व से गुजरते हैं। ये अन्तर्द्वन्द्व प्रेरणा स्रोत का काम करते हैं और उनके रचनाकार व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। प्रसाद की इतिहास सम्बन्धी दृष्टि में भी समय–समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। 'कल्याणी परिणय' (1912 ई0) से लेकर 'ध्रुवस्वामिनी' (1932 ई0) तक लगभग दो दशकों के बीच आधुनिक इतिहास ने कई उतार–चढ़ाव देखे। प्रथम विश्वयुद्ध और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम जैसी घटनाएँ हुईं। प्रसाद के अधिकांश नाटक राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न हैं। अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि के कारण उन्होंने नाटकों में कहीं–कहीं इतिहास का अतिक्रमण भी किया है।

## काव्य–यात्रा के प्रारम्भिक सोपान

प्रसाद ने अपने कवि जीवन की शुरुआत ब्रजभाषा में काव्य–रचना द्वारा की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक गद्य की भाषा खडीबोली स्वीकार हो चुकी थी, परन्तु काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही बनी हुई थी। इस कारण खडीबोली का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया था। खडीबोली में काव्य–रचना की सार्थक शुरुआत स्वच्छन्दतावादियों ने की। प्रसाद की प्रारंभिक कवितायें अम्बिकाप्रसाद गुप्त द्वारा संचालित 'इन्दु' पत्रिका में छपीं। इस पत्रिका का प्रथम अंक वर्ष 1909 ई0 में छपा। इस अंक की प्रस्तावना में साहित्य के स्वरूप के विषय में दी गयी स्थापना का ऐतिहासिक महत्व है –

'साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। वह किसी की परतन्त्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतन्त्र आन्दोलन में उसकी सत्ता देखी जा सकती है।'[4]

प्रसाद आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को रचना कर्म के लिए आवश्यक मानते हैं, पर वे उसे अराजक स्थिति में पहुँचा देने के पक्षधर नहीं हैं। वे परम्परा से प्राप्त सत्य का प्रयोग जीवन के कुछ अभीष्ट संदर्भों से जुडने के लिए करते है। हृदय के संवेग अथवा भावनामयता को काव्य का एक महत्वपूर्ण उपादान स्वीकार करके प्रसाद काव्य की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति की ओर संकेत करते हैं। डॉ0 रामरतन भटनागर के अनुसार इन शब्दों में स्वच्छन्दतावाद का बिगुल सुनायी पडता है।[5] ब्रजभाषा काव्य के माध्यम से वे केवल परम्परा का निर्वाह नहीं करना चाहते थे, वरन् अभिव्यक्ति की नयी संभावनायें भी तलाश रहे थे। ब्रजभाषा में प्रारंभिक रचनाओं के सृजन के बाद प्रसाद खड़ीबोली में काव्य–सृजन करने लगते हैं। उनकी रचनाओं का क्रम उनके व्यक्तित्व के विकास का सूचक है।

## चित्राधार

चित्राधार प्रसाद की प्रारंभिक कृतियों का संकलन है, जिसमें गद्य एवं पद्य दोनों प्रकार की रचनायें हैं। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1918 ई0 में हुआ। इसमें कुल दस रचनायें संकलित थीं जो इस प्रकार हैं –

1. कानन कुसुम– कविता–संग्रह

2. प्रेम पथिक –काव्य कथा (कथा काव्य)

3. महाराणा का महत्व–कथा काव्य

4. सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य–ऐतिहासिक शोध निबंध

5. छाया–कहानी

6. उर्वशी–चम्पू

7. राज्यश्री–नाटक

8. प्रायश्चित् –गीतिनाट्य

9. करुणालय–गीति नाट्य

10. कल्याणी परिणय–नाटक

उपरोक्त रचनाओं में कुछ ब्रजभाषा में थीं, कुछ खड़ी बोली में। आगे चलकर दस वर्ष बाद सन् 1928 ई0 में 'चित्राधार' का दूसरा संकलन प्रकाशित हुआ, जिसमें निम्नलिखित रचनाओ को संकलित किया गया–

1. चम्पू–(दो)–उर्वशी, वभ्रुवाहन

2. आख्यानक कवितायें (कथा काव्य–तीन) –अयोध्या का उद्धार, वनमिलन, प्रेम राज्य

3. पौराणिक कथा–(दो)– ब्रह्मर्षि, पंचायत

4. निबंध–(तीन)–भक्ति, प्रकृति–सौन्दर्य, सरोज

5. मुक्तक कविता–संग्रह–(दो)–पराग, मकरन्द बिन्दु

'चित्राधार' में संकलित रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि कवि की चेतना पर कई प्रकार के प्रभाव पड़े हैं। पुराण–प्रसंग, इतिहास की घटनाओं, प्रकृति और मानवीय भावनाओं–इन सबको प्रसाद अपनी अनुभूति–सम्पत्ति बनाते हुए अपनी सृजन–यात्रा में अग्रसर होते हैं। कवि ने गद्य–पद्य मिश्रित (चम्पू) 'उर्वशी' में उर्वशी–पुरुरवा तथा 'वभ्रुवाहन' में चित्रांगदा–अर्जुन के प्रेमभाव को उजागर किया है।

यहाँ प्रसाद ने रोमानी वातावरण के निर्माण के लिए प्रकृति का भरपूर उपयोग किया है, जिससे उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के क्रमिक विकास का आभास मिलता है।

'चित्राधार' मे प्रसाद ने पौराणिक आख्यानों के साथ इतिहास के भी प्रसंग लिए है। 'प्रेमराज्य' दो खण्डों में विभाजित कविता है। इसका कथानक विजय नगर तथा अहमदाबाद राज्यो के बीच हुए सोलहवीं शताब्दी के तालीकोट युद्ध से जुड़ा है। यहाँ प्रसाद सामन्ती रजवाडों के संघर्ष को न उभार कर कथा काव्य के अंत में चन्द्रकेतु और ललिता के विवाह–प्रसंग से कथा का रोमानी समापन करते हैं।

'पराग' और 'मकरन्द बिन्दु' जैसे संग्रहों में कवि की प्रारंभिक कविताएँ हैं, जिनमें उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति पूरी तरह खुलकर सामने नहीं आ पायी है। फिर भी प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के क्रमशः विकास की सूचना देने वाली इन कविताओं का अवश्य महत्व अवश्य है।

## कानन कुसुम

प्रसाद का दूसरा काव्य संकलन 'कानन कुसुम' है। यह प्रसाद की खड़ीबोली कविताओं का प्रथम संकलन है। इसकी प्रमुख कविताएँ इस प्रकार हैं– 'चित्रकूट', 'भरत', 'शिल्प–सौन्दर्य', 'कुरुक्षेत्र', 'वीर बालक', 'श्रीकृष्ण जयंती', 'रजनीगन्धा', 'सरोज', 'खंजन', 'कोकिल', 'मर्मकथा', 'हृदय वेदना', 'सौन्दर्य', 'रमणी हृदय', 'नमस्कार', 'विनय', 'याचना', 'पतित पावन', 'तुलसी दास' आदि।

'कानन कुसुम' की कविताएं खड़ीबोली का आधार ग्रहण करने के कारण सहज ही परम्परामुक्त हैं। यहाँ प्रसाद अपनी पारिवारिक भक्तिभावना को केवल वैयक्तिक मोक्ष कामना तक सीमित नहीं रखना चाहते। वे ईश्वर से मानव कल्याण की कामना करते हैं। भक्तिभावना को मात्र तन्मयता और संपूर्ण समर्पण के भावाकुल जगत से बाहर निकाल कर उसे अधिक समाजोपयोगी बनाना प्रसाद के विकासमान व्यक्तित्व का परिचायक है। इस संग्रह की 'नमस्कार' कविता की प्रस्तुत पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

'जिस मंदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है,<br>
जिस मंदिर में रंक नरेश समान रहा है,<br>
जिसके हैं आराम प्रकृति कानन ही सारे,<br>
जिस मंदिर के दीप इन्दु दिनकर और तारे,

उस मदिर के नाथ को, निरुपम निरमय स्वस्थ को,

नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गृहस्थ को।'

'कानन कुसुम' में कवि ने प्रकृति विषयक रचनाओं में प्रकृति से मानवीय भावनाओं की समीपता स्थापित की, पृष्ठभूमि तथा वातावरण को उजागर करने के लिए उसका इस्तेमाल किया, प्रकृति के प्रति प्रसाद का जिज्ञासा भाव तथा मानवीय भावों से संवाद आगे चलकर और भी विकसित होता है।

## प्रेम पथिक

'चित्राधार' एवं 'कानन कुसुम' की कविताओं में व्यक्त प्रसाद की प्रेम भावना का विकास 'प्रेम पथिक' में प्राप्त होता है। यहॉ कवि कल्पना के सहारे एक जीवन–दर्शन का प्रतिपादन करना चाहता है, जिसका सम्बध प्रेम भावना से है। 'प्रेम पथिक' में एक रोमानी दुनिया की झलक भी मिलती है, प्रेम की एक आदर्शवादी व्याख्या भी मिलती है जो त्याग और आत्मविस्तार की भावना लिये हुए है।

'प्रेम पथिक' का प्रकाशन सर्वप्रथम ब्रज भाषा में हुआ था। बाद में प्रसाद ने इसका खडीबोली संस्करण प्रस्तुत किया। खड़ीबोली संस्करण ब्रजभाषा संस्करण की अपेक्षा अधिक विकसित तथा प्रौढ है। यहॉ कवि प्रेम की भावमूलक व्याख्या नहीं करता वरन् कथा को समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर प्रस्तुत करता है। कथा का आरंभ वियोग में दुखी होकर भटकते हुए पथिक से होता है। उसकी भेंट एक युवती तापसी से होती है जो उस अपरिचित पथिक की प्रेमकथा सुनकर दुखी होती है। तापसी अनेक प्रकार से प्रेम की व्याख्या करती है। कथा से ज्ञात होता है कि पथिक की एक प्रिया थी जो किसी और से व्याह दी गयी। काव्य के अंत में नाटकीय ढंग से यह रहस्य खुल जाता है कि तापसी (चमेली) ही पथिक की प्रिया है। इस प्रकार अन्त में दोनों का सुखद मिलन होता है। समीक्षकों ने इस कथा की तुलना अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' से की है, जिसका अनुवाद श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' नाम से किया है।[6]

'प्रेम पथिक' में व्यक्त प्रसाद का प्रेम–दर्शन उनके भाव–जगत के विकास का द्योतक है। यहाँ प्रसाद एक विस्तृत मानवीय धरातल पर अंतर्बाह्य जीवन और जगत, भावना व चिंतन में समन्वय स्थापित करते हैं । यहॉ कवि विश्व के कण–कण में सौन्दर्य देखता है और प्रत्येक मानव हृदय में प्रेम की कल्पना

करता है। इस रूप मे कवि ने प्रेम की दार्शनिक व्याख्या की है तथा एक स्वच्छन्दतावादी भावना को आध्यात्मिक भूमिका पर प्रस्तुत करना चाहा है। प्रेम की यह चरम परिणति ही आनन्दवाद है, जो सुख–दुख से परे है। 'प्रेम पथिक' में कवि का उद्देश्य प्रेम की विस्तृत भाव–भूमि को प्रस्तुत करना था। इसमें कवि चित्रण की अपेक्षा चिन्तन में अधिक रमा रहा। प्रेम का मानवीकरण करके उसके स्वरूप को स्पष्ट करना निश्चित ही प्रसाद का एक नया प्रयोग है। प्रस्तुत पंक्तियॉ दृष्टव्य हैं –

'प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्ति मात्र में बना रहे
क्यों कि यही प्रभु का स्वरूप है जहॉ कि सबको समता है
इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं......।'

भाव और शिल्प की दृष्टि से 'प्रेम–पथिक' में प्रसाद की शैलीगत नवीनता एवं चिंतन की मौलिकता के दर्शन होते हैं। यहाँ कवि एक समन्वय को लेकर चला है। चिन्तन एवं दर्शन को नवीन रूप में प्रस्तुत करने वाली भाषा सरल एवं स्वाभाविक है। कथा का आधार लेकर तथा विविध मनोवैज्ञानिक प्रसंगो के चित्रण द्वारा कवि ने इसे सरस काव्य बनाया है। 'प्रेम पथिक' की इन्हीं विशिष्टताओं के कारण विद्वानों ने इसे भावों के विकास और विचारों की पवित्रता की दृष्टि से एक श्रेष्ठतम काव्य माना है।"[7]

## करुणालय

प्रसाद ने 'करुणालय' की रचना गीति–नाट्य के रूप में की है। गीति नाट्य होते हुए भी इसमें न तो गीतात्मकता है, न ही पर्याप्त नाटकीयता। संभवतः इसीलिए कुछ विद्वानों ने इसे भावनाट्य की संज्ञा दी है।[8] करुणालय की कथा पौराणिक है जो ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होती है, यद्यपि इसके कुछ संकेत ऋग्वेद में भी मिल जाते हैं। इसकी कथावस्तु पॉच छोटे–छोटे दृश्यों में विभक्त है। राजा हरिश्चन्द्र को आकाशवाणी से सूचना मिलती है कि उसने वरुण देव को यज्ञ में बलि देने का वचन दिया था, जिसे अब वह भूल गया है। दूसरे दृश्य में रोहिताश्व का अन्तः संघर्ष है और तृतीय दृश्य में अजीगर्त से उसका शुनःशेफ को पा लेना है। चतुर्थ दृश्य में वशिष्ठ द्वारा इस तर्क का समर्थन है कि रोहिताश्व के बदले

शुनःशेफ की बलि दी जा सकती है। पॅाचवे दृश्य में सहसा विश्वामित्र का आगमन होता है। शुनःशेफ उनकी गधर्व–विवाहिता पत्नी सुव्रता का ही पुत्र है। विश्वामित्र का अपनी पत्नी और पुत्र से मिलन होता है। बिना नरबलि के ही वरुण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार शुनःशेफ की मुक्ति से काव्य का सुखद समापन होता है।

इसमें प्रसाद ने पौराणिक कथावस्तु का उपयोग एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करने के लिए किया है। उनके विचार से वैदिक युग में एक समय ऐसा आया जब यज्ञों में बलि–प्रथा का उपयोग होने लगा और स्थिति यहॉ तक आ पहुॅची कि पशुबलि के स्थान पर नरबलि तक दी जाने लगी। प्रसाद ने कथा का आधार करुणा दर्शन की स्थापना करनी चाही है, इसलिए काव्य मे प्रकृति के दृश्य भी पर्याप्त मात्रा में आ गये हैं, जिनके माध्यम से कवि ईश्वर की सत्ता का प्रकाशन करना चाहता है –

'शान्ति! प्रेममय शान्ति भरी है विश्व में
सुन्दर है अनुकूल पवन, आनन्द में
झूम–झूमकर धीरे–धीरे चल रहा
पिये ! प्रेम–मदिरा विह्वल सा हो रहा
कर्णधार हो स्वयं चलाता नाव को।'

## महाराणा का महत्व

यह एक ऐतिहासिक कथा काव्य है। इसकी रचना प्रसाद ने भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित होकर की है। इसकी कथा महाराणा प्रताप और अब्दुर्रहीम खानखाना से सम्बन्ध रखती है। काव्य के आरंभ में खानखाना की बेगम राणा प्रताप के सैनिकों द्वारा पकड़ ली जाती हैं। राणा प्रताप बेगम को तुरन्त छोड़ देते हैं। बेगम लौटकर खानखाना से प्रताप के देश–प्रेम और स्वाभिमान की प्रशंसा करती हैं। खानखाना मुगल सम्राट अकबर से निवेदन करते हैं कि राणा प्रताप से युद्ध बन्द कर दिया जाय, जिसे वे स्वीकार कर लेते हैं।

'महाराणा का महत्व' कई दृष्टियों से प्रसाद के व्यक्तित्व के विकास की सूचना देने वाली रचना है। यहॉ प्रसाद पुराणों के मिथकीय जगत से इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे थे। यद्यपि प्रसाद

इतिहास के द्वन्द्वात्मक स्तर को न ग्रहण कर उसके प्रति एक रोमानी दृष्टि रखते है। इस काव्य में प्रसाद की आधुनिकता उनके राष्ट्रीय बोध में दिखाई देती है। महाराणा प्रताप के माध्यम से वे एक ऐसा जातीय चरित्र खडा करना चाहते हैं, जो परतन्त्र राष्ट्र की मुक्ति का स्वप्न देखता है।

## झरना : छायावाद का उद्घोष

यह प्रसाद की लघु–मुक्तक कविताओं का संग्रह है। इसका प्रथम प्रकाशन 1918 ई0 में हुआ। 'झरना' को छायावादी काव्य का प्रथम संग्रह स्वीकार किया जाता है। इसके प्रकाशकीय वक्तव्य में घोषणा है कि जिस शैली की कविता को हिन्दी साहित्य में आज दिन छायावाद का नाम मिल रहा है, उसका प्रारंभ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ। यद्यपि 'झरना' संग्रह से पूर्व की रचनाओं में भी छायावादी काव्य–प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं, किन्तु यहॉ आकर कवि पूर्ण अन्तर्मुखी बन गया। प्रायः सभी कविताऍ उसके मनोभावों का प्रकाशन करती हैं। अनुभूतियॉ उसकी अपनी हैं जिन्हें व्यक्त करने के लिए कवि ने एक नयी शैली का निर्माण करना चाहा है। संभवतः इसीलिए कहा जाता है कि 'झरना' छायावादी काव्य का प्रथम उद्घोष है।

झरना की कविताओं का भाव जगत सौन्दर्य और प्रेम की सम्मिलित अनुभूतियों से बना है और कवि ने अपनी वैयक्तिक प्रेमानुभूतियों का अधिकाधिक प्रयोग किया है। इस संग्रह की प्रथम कविता 'झरना' में ही कवि की इस भावना का संकेत मिलता है। यहाँ कवि जलधारा को देखकर उपदेश नहीं देने लगता है और न वह तटस्थ वस्तु–वर्णन करता है, वरन् उसकी भावनाएँ उद्दीप्त हो उठती हैं और वह कहता है–

'कर गई प्लावित तन–मन सारा<br>
एक दिन तब अपांग की धारा<br>
हृदय से झरना<br>
वह चला जैसे दृग जल ढरना<br>
प्रणय वन्या ने किया पसारा<br>
कर गयी प्लावित तन–मन सारा...।'

'झरना' की अधिकांश कविताएं प्रेमानुभूति के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्ति देती हैं। अनेक रूपो मे कवि स्वयं को व्यंजित करना चाहता है अर्थात् वह अधिक उन्मुक्त भावभूमि पर है। 'झरना' की भावनाओं का एक सीमित संसार है फिर भी कवि उनका क्रियान्वयन पूरी सक्षमता से करता है। प्रकृति के साथ मानवीय भावों के सामीप्य की जो प्रक्रिया आरंभ हुई थी, उसे यहॉ एक गति मिलती है और वे एक दूसरे में घुल–मिल जाते हैं, इससे भावनाओं के संसार को गहराई मिलती है। 'झरना' में वेदना, करुणा का जो वातावरण बना है वह आदर्शीकरण अथवा व्यर्थ की आरोपित आध्यात्मिकता से आच्छादित नहीं है। कवि ने इतना साहस जुटा लिया है कि वह अपनी पीड़ा को व्यक्त कर सके। 'विषाद' कविता की पंक्तियाँ हैं–

'किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौडाओ
करुणा का विश्रान्त चरण है।'

'झरना' की कविताओं में स्वच्छन्दतावाद का जो रूप उभरता है उसकी पहली पहचान यही है कि कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रकाशन करने में अधिक निःसंकोच भाव से काम लेता है। प्रसाद ने अपनी वैयक्तिक वेदनानुभूति में प्रकृति को मुख्य सहचरी के रूप में स्वीकारा और इस दिशा में सचेष्ट रहे कि यह वेदना उनकी नितान्त व्यक्तिगत कुंठा बनकर न रह जाय और वृहत्तर मानवीय अनुभूति से उसका मेल हो। यह मानवीय संवेदना प्रसाद के काव्य को महत्तम ऊँचाइयों पर ले जाती है।

'झरना' की कविताओं की मूल प्रवृत्ति गीतात्मक है। यहॉ कवि की प्रेम भावना गीतों के रूप में प्रस्फुटित हुई है। गीतों की प्रेरणा कवि का स्वयं का व्यक्तित्व है। कवि की भावना अन्तर्मुखी है । कवि की अंतरानुभूति सहज रूप में व्यक्त हुई है। इसलिए 'झरना' के गीत सफल कहे जा सकते हैं विद्वानों ने 'झरना' को गीतों की प्रयोगशाला कहा है।[9] क्योंकि यहाँ कवि कई प्रकार के प्रयोग करना चाहता है, उसकी अनुभूतियॉ नये रास्ते खोजना चाहती हैं ताकि जीवन और जगत की अधिक संश्लिष्ट भावनाओं की अभिव्यक्ति की जा सके। कुल मिलाकर 'झरना' छायावादी काव्य के आगमन की सूचना देता है।

## आँसू : व्यक्तित्व का प्रकाशन

छायावादी रचनाओं में 'ऑसू' का विशिष्ट स्थान है। प्रसाद की इस रचना का प्रथम प्रकाशन 1925 ई0 में श्री मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य–सदन, चिरगाँव, झाँसी से हुआ था। इसमें कुल 126 छंद थे। वेदनानुभूति एवं करुणा की तीव्रता होने के कारण इसमें कवि की भावना एकरूपता लिये हुए है। प्रायः सभी छंदों में वेदना का प्रसार है। इस दृष्टि से इसे विरह काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। आरंभ में मिलन के भी कुछ चित्र हैं किन्तु उनकी अनुभूति क्षणिक है और सारा काव्य विरह की वेदना से आपूरित है। वियोगावस्था के मर्मिक चित्र यहाँ अंकित हैं। अंत में, सुख और दुख, मिलन तथा वियोग को चिरंतन सत्य मानता हुआ कवि अपनी दार्शनिक उद्भावना व्यक्त करता है–

'चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा,
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।'

'आँसू' के अधिकांश छंद अपने में स्वतत्र हैं, जिनके कारण भावों को एकसूत्रता नहीं मिल पाती, साथ ही उनमें क्रमबद्धता न होने के कारण अन्विति का अभाव है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आक्षेप किया था कि 'वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता।'[10] साथ ही 'आँसू' की अनूठी उक्तियों ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि उसकी प्रशंसा में उन्होंने लिखा– 'पर अलग–अलग लेने पर उक्तियों के भीतर बड़ी ही रंजनकारिणी कल्पना व्यंजक चित्रों का बडा ही अनूठा विन्यास भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है।'[11]

'ऑसू' का द्वितीय संस्करण 1933 ई0 में प्रकाशित हुआ। इसमें 190 छंद थे। इस परिवर्द्धित संस्करण में कवि ने अपने व्यक्तित्व को नयी दिशा दी है। इस संस्करण के मुक्त छंदों में भी एक क्रमबद्धता मिलती है जिससे कथा का आभास मिलता है। इसमें प्रसाद के सजग एवं विकासमान व्यक्तित्व की सूचना मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम संस्करण के समय कवि पर वेदना की छाया बहुत अधिक थी और वह एक प्रकार से भावाभिभूत था। यही कारण है कि यहाँ पीड़ा की अनुभूति बहुत तीव्र है

और एक प्रकार की भावाकुलता इस अवसर पर देखी जा सकती है। दूसरे संस्करण तक आते–आते आठ–नौ वर्षों मे कवि अपने बहुत से उच्छ्वासों को निःशेष कर देता है। जीवन के अन्य दृश्यों की ओर भी उसकी दृष्टि जाती है । यह कवि–व्यक्तित्व का विस्तार है। जगत के अन्य दृश्यों से अपना सम्बन्ध स्थापित करने में उसे अधिक सफलता मिली है। इस संस्करण का वेदना–दर्शन विशेष द्रष्टव्य है। प्रथम संस्करण में कवि की वेदना व्यक्तिगत अधिक है, इसीलिए वह निराशा के साथ समाप्त होता है। यह संस्करण जीवन के दृश्यों से जुड़ा अधिक है।

'ऑसू' प्रसाद के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाशन है और व्यक्तित्व भी ऐसा, जहॉ कवि अपनी नितान्त निजी और वैयक्तिक प्रेमानुभूति को साहस के साथ व्यक्त कर सकता है। कोई भी अनुभव जब जीवन–सन्दर्भों से गहरे रूप में जुडने की ताकत रखता है, तभी वह रचना में अधिक सार्थक होकर आता है। 'आँसू' में प्रसाद स्वयं को स्वतंत्र भूमि पर छोडते हैं, निःसंकोच भाव से अपनी बात कहते हैं। इतना कर सकने के लिए आत्माभिव्यक्ति के जिस साहस की अपेक्षा होती है, वह कवि ने संचित कर लिया है।

'ऑसू' के भाव–जगत का मूलाधार कवि की आत्म–स्वीकृति है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह नये मोड़ की सूचना है, क्योंकि जब अन्य द्विवेदी युगीन कवि श्रृंगार का नाम लेने से भी घबड़ाते थे, तब प्रसाद ने अपनी प्रेम कथा सुना सकने का साहस किया। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की स्थापना और उसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति की दिशा में यह मील का पत्थर है।

'ऑसू' एक गीतात्मक काव्य है, जिसमें कवि ने नितान्त वैयक्तिक जीवन प्रसंगों को व्यक्त करना चाहा है। आरम्भ में कवि की विषाद–डूबी चेतना है, जहॉ वह स्वयं को लगभग वेदना से अभिभूत स्थिति में पाता है। प्रिय की असंख्य स्मृतियों से गुजरता हुआ वह यह महसूस करता है कि उसका प्रिय उससे अपृथक् है। वह उसके व्यक्तित्व का एक अश है। प्रिय का आकर्षक आगमन और उसका सहसा चले जाना, इन दोनों बिन्दुओं के बीच सुख का जो संसार विद्यमान है, वह भुलाया नहीं जा सकता। प्रिय की अनेक छवियॉ कवि बार–बार स्मरण करता है और अपने प्रिय का एक संश्लिष्ट चित्र बनाना चाहता है। आँसू का यह सौन्दर्यांकन, रुपांकन किसी सीमा तक अशरीरी भी कहा जा सकता है कवि में उसे शारीरिक इकाई तक सीमित नहीं रखा है–

'विकसित सरसिज वन वैभव
मधु ऊषा के अंचल मे
उपहास करावे अपना
जो हॅसी दे पल में।'

× × × × ×

'चंचला स्नान कर आवे
चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी।'

'ऑसू' में सौन्दर्यांकन में कुछ रुढ़ उपमानों का प्रयोग किया गया है पर कवि की रोमानी प्रवृत्तियॉ सौन्दर्य के विषय में अपनी मानसिक प्रतिक्रिया भी व्यक्त करती हैं। यहॉ कवि उस सौन्दर्य का उपभोक्ता है, वह तटस्थ नहीं है, 'ऑंसू' में विगत और वर्तमान का एक ऐसा समन्वित रूप है कि उसमें फ्लैश बैक पद्धति तक का प्रयोग दिखाई देता है। जब कवि प्रिय के साथ विताये गये क्षणों का स्मरण करता है, ऐसे अवसर पर भावाकुल क्षणों का आ जाना भी प्रसाद जैसे स्वच्छन्दतावादी कवि के लिए स्वाभाविक है, पर उन्हें बराबर अपने व्यक्तित्व का एहसास है जिसके कारण वे ऐसे क्षणों से बाहर आने की शक्ति भी स्वयं में संचित कर लेते हैं। 'ऑसू' में प्रतिपादित वेदना सम्बन्धी व्याख्या कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों पर उसके रचनाकार की विजय है। प्रसाद अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से बाहर निकलते हैं और बाह्य जीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जिस वेदना को वे अब तक अकेले भोग रहे थे, उसमें प्रकृति भी सम्मिलित होती है। वेदना जैसे संश्लिष्ट, गम्भीर, अमूर्त भाव का मूर्तिकरण करना सरल नहीं है, इसलिए आरंभ में यह तश्वीर धुॅधली है पर काव्य के अन्त में जो दृश्य आये हैं, वे कवि के उठते हुए व्यक्तित्व का प्रमाण है–

'मुॅह सिये झेलती अपनी
अभिशाप ताप ज्वालायें

देखी अतीत के युग से
चिर मौन शैल मालाएँ
जिन पर न वनस्पति कोई
श्यामल उगने पाती है
जो जनपद परस तिरस्कृत
अभिशप्त कही जाती है।'

'आँसू' यह संकेत करता है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य वैयक्तिक अनुभूतियों का सक्षम प्रयोग करता हुआ जीवन की अन्य दिशाओं का समावेश भी स्वयं में कर सकता है। एक प्रकार से प्रसाद यहाँ स्वयं को ठीक–ठीक पहचानते हैं। 'आँसू' में मानवीय भावनाओं की समर्थ अभिव्यक्ति है–

'जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे।'

कवि इन विषमताओं के बीच जीवन का लक्ष्य पा लेना चाहता है। उसकी चेतना वरदान बनकर उसे लक्ष्य तक पहुँचाती है। यहाँ कवि की पीड़ा निराशाजन्य न होकर जीवनदायी है। उसका काव्य वैयक्तिक भावनाओं से ओत–प्रोत होते हुए भी सामाजिक भूमिका पर निर्मित है। 'ऑसू' में वह सुख–दुख की व्याख्या करता हुआ दुख को भी जीवन में अनिवार्य मानता है। यहॉ कवि ऐसे तात्विक निष्कर्ष पर पहुँचता है जिसके आगे अधिक शंकाएँ नहीं रह जातीं। इसीलिए 'आँसू' कवि की मानवतावादी दृष्टि का पोषक है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसे एक प्रकार से एक 'मानवीय विरह काव्य' माना है। इस दृष्टि से 'ऑसू' एक श्रेष्ठ रचना है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'आँसू' जिस मोड़ की सूचना है, उससे स्वच्छन्दतावादी काव्य की संभावनाओं के द्वार खुलते हैं।

## लहर : प्रेम–यौवन–सौन्दर्य का स्वर

'लहर' प्रसाद जी की प्रौढ रचनाओं का संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1933 ई0 में हुआ था। इसमें कवि की ओर से कोई भूमिका नहीं है। इसमें कुल 33 कविताएँ संग्रहीत हैं। आरंभिक भाग की कविताएँ गीत हैं, दूसरे भाग की कविताएँ गीत न होकर वर्णनात्मक, कथात्मक हैं। 'लहर' की सर्वाधिक कविताएँ प्रेम और यौवन से सम्बद्ध हैं। उन्हें प्रणय–गीत कहा जा सकता है। कुछ कविताएँ एतिहासिक हैं। कुछ में बौद्ध दर्शन की छाप है। कुछ कविताएँ प्रमुखतः प्रकृति से सम्बन्धित हैं। कुल मिलाकर प्रेम, यौवन और सौन्दर्य के स्वर ही मुखरित हुए हैं।

'लहर' संग्रह तक पहुँच कर कवि अपने सीमित अनुभवों को गहरा सकने में पूर्ण समर्थ होता है और वृहत्तर जीवन सन्दर्भो से गहरे जुड सकने की शक्ति पा लेता है। यहाँ आकर कवि के व्यक्तित्व को एक समाकलन मिल जाता है। भावनाओं का केन्द्रित होना, विचारों की परिपक्वता और अभिव्यक्ति की शक्ति 'लहर' में सहज दृष्टव्य है। 'लहर' के गीतों में वैयक्तिक प्रेमानुभूतियों के प्रकाशन में गंभीरता मिलती है। कवि ने स्वयं को अभिव्यक्ति मोह से मुक्तकर लिया है। 'लहर' एक गहरी अन्तर्यात्रा में सम्मिलित होने को बाध्य करती है। । यहाँ कवि ने जो अनुभव सम्पत्ति प्राप्त की है वह उन सब का संयोजन मानवीय सदाशयता से प्रेरित होकर करना चाहता है।

व्यक्ति–मन का क्रमशः अधिक वस्तून्मुखी तथा निर्वैयक्तिक होने का प्रयत्न 'लहर' की रचनाओ का प्रेरक है। यह तटस्था कवि की प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में भी देखी जा सकती है। 'मुझको न मिला रे कभी प्यार !' जैसी पंक्तियाँ, दमित इच्छाओं की पूर्ति का संकेत नहीं हैं, बल्कि एक अधिक यथार्थ दृष्टि की परिचायक हैं।

'लहर' की एक बड़ी प्रसिद्ध रचना है– 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे।' कुछ लोगों के अनुसार यह रहस्यवादी कविता है और कवि अपने नाविक (मन या गुरु) से ब्रह्म तक पहुँचाने को कहता है। कुछ लोगों के अनुसार यह पलायनवादी कविता है। कवि इस संसार के कटु सत्यों से परेशान होकर इसे छोड़कर भागना चाहता है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी ध्वनि कविता से निकलती है। 'छोटी–सी कुटिया में रच दूँ नयी व्यथा साथिन को' जैसी पंक्तियों को, या करुणा तथा दुख से सम्बन्धित

अधिक लिखने को, कुछ लोग इसी बात का प्रमाण मानते हैं कि प्रसाद का स्वर पलायनवादी है। वस्तुतः किसी एक कविता या दो–चार पंक्तियों के आधार पर किसी कवि का मूल्यांकन उचित नही कहा जा सकता। जिस प्रसाद ने आनन्दवादी दृष्टिकोण अपनाकर सुख–दुख, विरह–मिलन, हृदय–मस्तिष्क के समन्वय द्वारा स्वस्थ जीवन के उपभोग का संदेश अनेक स्थलों पर दिया, उसे निराशावादी और पलायनवादी नहीं कहा जा सकता। इस कविता को दो संदर्भों में देखा जा सकता है– या तो उनके किसी विशेष क्षण की वह रचना हो जब किसी कारणवश वे संसार से ऊब गए हों। यदि ऐसा ठीक है तो एक क्षण के भाव को पूरी दृष्टि पर थोपना गलत ही होगा। या फिर कवि इस कविता में अपने मस्तिष्क के आदर्श संसार का चित्र भी खींच रहा है जिसमें सुख और शांति का साम्राज्य हो। डॉ0 प्रेमशंकर ने इस गीत के सम्बन्ध में लिखा है– 'ले चल मुझे भुलावा देकर जैसे गीतों में प्रसाद जिस मानवीय सदाशयता के स्वप्न से परिचालित हैं, उसमें कल्पना के अतिरिक्त क्षण हो सकते हैं, पर कुल मिलाकर उसके पीछे एक बेहतर दुनिया पाने की मनोकामना है।'[12]

'लहर' की एक लम्बी कविता 'प्रलय की छाया' है। यह एक ऐतिहासिक कविता है। इसमें श्रृंगार की प्रधानता है, किन्तु साथ ही यौवन, रूप, वासना, आत्मग्लानि आदि को लेकर नारी हृदय में उठने वाले संघर्ष और उसके घात–प्रतिघात, क्रिया–प्रतिक्रिया तथा उनके मन की चंचलता एवं बाहरी शान शौकत पर आकर्षित होने आदि का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। तत्वतः इसमें ऐतिहासिकता का थोडा सा आधार मात्र है। उसके सहारे कवि का मुख्य ध्येय नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना है। अलाउद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की थी और विजयी होकर वहॉ की सुप्रसिद्ध सुन्दरी रानी कमलावती को पत्नी रूप में ग्रहण किया था। कमला ने पद्मिनी की भाँति जौहर नहीं किया। यह सोचकर उसे आत्मग्लानि होती है। इसी प्रसंग ने अपने विगत् जीवन की अन्य बातें भी उसे याद आती हैं। इन्हीं बातों का इस रचना में वर्णन है। भावों की सहजता, भावानुकूल अभिव्यक्ति, अलंकारों के सुन्दर और अत्यन्त सार्थक प्रयोग तथा आवेगपूर्ण प्रवाह आदि सभी दृष्टियों से यह रचना बड़ी ही प्रौढ़ है।

## कामायनी : प्रौढ़तम कृति

'कामायनी' प्रसाद की प्रौढ़तम कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1935 ई0 में हुआ था। यह कृति प्रसाद की सारी साधना एवं चिन्तन का निचोड है। हिन्दी के परम्परागत महाकाव्य वर्णन प्रधान रहे हैं, किन्तु 'कामायनी' में प्रसाद ने एक अलग पथ बनाया है। उसमें मानव–मनोवेगों के विश्लेषण और सांकेतिकता पर बल है। इसीलिए महाकाव्य होते हुए भी इसे किसी लम्बे–चौडे कथानक की आवश्यकता नहीं पडी। 'कामायनी' में कुल 15 सर्ग हैं – चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य, आनन्द। 'कामायनी' की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है–

देवताओं के निर्बाध विलास के कारण प्रलय हो चुकी है। सम्पूर्ण देव सृष्टि नष्ट हो चुकी है। केवल मनु शेष हैं। किसी महा मत्स्य का एक चपेटा खाकर उनकी नौका उत्तर गिरि से आ टकराती है और वे इसी स्थान पर उतर पड़ते हैं। वहीं बैठे मनु देवों के अतीत वैभव, प्रलय की भयानक विभीषिका तथा जीवन की नश्वरता आदि का ध्यान करके चिन्ता में लीन हैं। धीरे–धीरे पानी सूख रहा है। प्रलय–निशा का अन्त हो रहा है और सुनहरा प्रभात झाँक रहा है।

प्रभात नई आशा लेकर आता है। प्रकृति धीरे–धीरे फिर से मुस्कराने लगती है। यह देखकर चिन्ताग्रस्त मनु में भी नई आशा का संचार होता है। वे स्वस्थ चित्त होकर एक पर्वत गुफा में अपना निवास बनाते हैं। शालियॉ चुनकर पाक यज्ञ करते हैं तथा यह सोचकर कि शायद कोई और भी प्रलय की ज्वाला से बचा हो, अवशिष्ट अग्निहोत्र कुछ दूर पर रख देते हैं। एकान्त जीवन उनको खलता है।

काम–गोत्रजा श्रद्धा कभी उधर आती है और मनु के रखे अवशिष्ट अग्निहोत्र से वह अनुमान लगाती है कि इधर कोई व्यक्ति है। आगे बढने पर वह मनु को पाती है। मनु का पौरुष उसे आकर्षित करता है और उसका सौन्दर्य मनु को। एक दूसरे को जानने का प्रयास होता है। प्रलय की छाया से मनु अब भी विपन्न हैं। श्रद्धा उन्हें जीवन की सार्थकता बताकर कर्म में लीन होने और जीवन पथ पर आगे बढ़ने को उत्साहित करती है। उसके प्रेम और ममता का सहारा पाकर मनु की विरक्ति कुछ दूर हो जाती है।

श्रद्धा के आगमन से मनु के एकान्त जीवन मे विरसता समाप्त होती है। जीवन के प्रति एक नवीन आकर्षण का उदय होता है। धीरे–धीरे अन्जाने ही उनके हृदय में काम का स्फुरण होता है। प्रकृति का मोहक रूप उसे और भी दीप्त करता है। श्रद्धा और मनु और भी निकट होते जाते हैं और अन्त में दोनों एक दूसरे पर अत्यधिक आकर्षित होकर एक–दूसरे को समर्पण करते हैं और उनमें वासना का भाव जगता है।

वासना आने पर नारी में लज्जा का आना स्वाभाविक है। श्रद्धा के हृदय में लज्जा का भाव जगता है। नारीत्व पूर्णरूपेण उभर आता है। लज्जा नारी का सबसे बडा आभूषण है। इस सर्ग में लज्जा और श्रद्धा में बातचीत के माध्यम से नारी का आदर्श, उसके जीवन का उद्देश्य आदि बातें बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गयी हैं।

प्रलय का दारुण दृश्य मनु को विस्मृत हो गया है। श्रद्धा ने उनके जीवन में आकर एक नवल और मादक आकर्षण पैदा कर दिया है। वे कर्म की ओर झुकते हैं। सोम पान की इच्छा भी उनके मन में जगती है। मनु की भॉति ही प्रलय से दो असुर पुरोहित 'किलात' और 'आकुलि' भी बचे रह गये थे। वे जब श्रद्धा द्वारा पालित स्वस्थ–सुन्दर पशुओं को देखते हैं तो उनकी आमिष–लोलुप रसना खाने को ललचा उठती है। दोनों आपस में परामर्श करके मनु के पास पहुचते हैं और उन्हें यज्ञ करने को उत्साहित करते हैं, साथ ही स्वयं पुरोहित बनने को तैयार हो जाते हैं। मनु यज्ञ करते हैं और उसमें पशुओं की बलि दते हैं। आग धधक रही है। चारों ओर खून के छीटें पड़े हैं, हड्डियॉ बिखरी हैं। श्रद्धा को वह वीभत्स और भयंकर दृश्य बहुत बुरा लगता है। वह रूठी हुई अलग रहती है। उधर मनु सोम पान करके मस्त हो उठते हैं और उनकी वासना भी प्रदीप्त हो उठती है। वे स्वयं श्रद्धा के पास पहुॅचते हैं। श्रद्धा रुष्ट है, किन्तु मनु के लिए उसके हृदय में अतुलित प्रेम भी है। वह उनके स्पर्श से रोमांचित हो उठती है। वह उन्हें मीठे शब्दों में फटकारती है, किन्तु मनु के द्वारा अनुनय–विनय करने पर वह भी सोम–पान करती है।

श्रद्धा गर्भवती हो चुकी है। वह गृहस्थी जुटाने में लगी है। शालियॉ एकत्र करती है। दिन भर तकली चलाती है। उसने एक कुटीर का भी निर्माण कर लिया है। मनु को यह सब बुरा लगता है। वह

श्रद्धा पर एकाधिकार चाहते हैं। वे चाहते हैं कि वह केवल उनकी सेवा में रहे। भावी सन्तान के प्रति उनके मन मे ईर्ष्या जगती है। उन्हें लगता है कि श्रद्धा का प्रेम सन्तान के आगमन के कारण बॅटने वाला है। वे नाराज होकर वहॉ से चले जाते हैं। श्रद्धा उन्हें रोकने का असफल प्रयास करती है।

श्रद्धा को छोड़कर जाने के बाद मनु इधर–उधर लक्ष्यहीन घूमते हैं। घूमते–घूमते वे उजड़े सारस्वत नगर में पहुॅचते हैं। वहाँ उन्हें इड़ा नाम की सुन्दरी मिलती है जो उन्हें दुखी देखकर उनका स्वागत करती है। उसके कहने से एक प्रबंधक के रूप में मनु उजडे हुये सारस्वत प्रदेश की उन्नति में जी जान से जुट जाते हैं। कवि ने इड़ा को बुद्धिमय नारी बताया है।

मनु के चले जाने पर श्रद्धा बहुत दुखी होती है। जिसके चरणों पर उसने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, वह उसे छोड़कर चला गया था। इस दुख और निराशा की घड़ियों में वह मॉ बनी। उसका पुत्र मानव धीरे–धीरे कुछ बड़ा हुआ। श्रद्धा मानव को जरा भी रोकती–टोकती नहीं, कि कहीं वह भी न रुष्ट होकर चला जाय। एक दिन श्रद्धा ने स्वप्न में देखा– मनु का सुन्दर नगर बसा हुआ है। उनके निर्देशन मे वहॉ के लोगों ने खूब उन्नति की है। मनु सिंहासनारूढ हैं। कोई सुन्दरी उन्हें मदिरापान करा रही है। मनु तृप्त नहीं हो रहे हैं। वे कहते हैं कि मेरा हृदय अब भी सूना है। वे इड़ा को अपनी प्रणयिनी बनाने का संकेत करते हैं। इडा को आश्चर्य होता है। वह कहती है– 'मैं आपकी प्रजा हूॅ। मुझसे ऐसी बातें क्यों ?' मनु कहते हैं– 'तुम प्रजा नही मेरी रानी हो, मेरा प्रणय स्वीकार करो।' यह कहते–कहते मनु वासना से उत्तेजित होकर इडा का आलिंगन करते हैं और वह भय से कॉप कर अपनी रक्षा के लिए पुकार करती है। भयंकर गर्जन से दिशाएं गूॅज उठती हैं। भूचाल सा आ जाता है। शंकर का तीसरा नेत्र खुलता है और वे तांडव करने लगते हैं। प्रजा एकत्र हो जाती है। इड़ा क्रोध और लज्जा से आवेष्टित बाहर निकल आती है और मनु प्रहरियों को द्वार बन्द करने की आज्ञा देकर सोने चले जाते हैं। श्रद्धा स्वप्न की विकरालता से कॉप उठी। उसकी ऑखे खुल गयीं।

श्रद्धा का स्वप्न सचमुच सत्य था। सारस्वत प्रदेश में यही हुआ। अत्यधिक बौद्धिक होने पर व्यक्ति का पतन ही होता है। मनु के साथ भी यही बात हुई वे इड़ा को, जो प्रजा थी और प्रजा राजा की सन्तान के समान है, पत्नी बनाने पर तुल बैठे। इस पर प्रजा बिगड़ खड़ी हुई। प्रजा ने महल का

सिंहद्वार खोल दिया और भीतर आ गयी। मनु ने कहा कि मैने तुम्हे सुख–समृद्धि दी है। इस पर प्रजा बोली कि सुख समृद्धि क्या दी है, हमें मशीनों का दास बना दिया है और बौद्धिकता का प्राधान्य देकर संचय की वृत्ति जागृत कर दी है। हम लोभी हो गये है। इस प्रकार विवाद बढ़ा और दोनों में संघर्ष हुआ। एक ओर थे मनु और दूसरी ओर पूरी प्रजा, जिसके नेता वही किलात और आकुलि असुर पुरोहित थे। मनु ने भयंकर आग्नेयास्त्रों से उन दोनों को मार डाला, किन्तु अन्त में वे स्वयं भी इस संघर्ष में घायल होकर गिर पड़े। इस प्रकार प्रसाद इस संघर्ष के माध्यम से आज की भौतिक उन्नति और उसके दुष्परिणामों का संकेत करते हैं।

मनु के गिरने के बाद युद्ध बन्द हो गया। किन्तु पूरे नगर में जैसे दुख, क्षुब्धता और मलिनता छा गयी। इड़ा की विचित्र स्थिति थी। वह अन्तर्द्वन्द्व की आग में जल रही थी। मनु ने उसके साथ अत्याचार किया था, इसलिए वह उनसे घृणा कर रही थी, किन्तु उसी मनु की सहायता से उसका उजड़ा सारस्वत प्रदेश धन–धान्य और भौतिक उन्नति से परिपूर्ण बना था, यह सोचकर मनु के प्रति उसके हृदय में ममता उमड़ती थी और वह उन्हें क्षमा कर देना चाहती थी। उसने निष्कर्ष निकाला कि विश्व में अच्छे–बुरे दोनों हैं। दोनों ही स्वीकार्य हैं। इडा इसी उधेड़–बुन में थी कि उसी समय मानव को लेकर श्रद्धा आ पहुँचती है। उसकी करुण अवस्था देखकर इडा द्रवित हुए बिना न रह सकी। इतने में पास ही श्रद्धा ने मनु को घायल और बेहोशी की हालत में देखा। उसका स्वप्न सच निकला। वह बोली– 'आह! प्राण प्रिय यह क्या ?' उसकी ऑखें गीली हो गयीं। इड़ा यह देखकर चकित थी। श्रद्धा मनु के पास जाकर उन्हें सहलाने लगी। मनु की मूर्च्छा दूर हुई। श्रद्धा को देखकर वे रोने लगे। श्रद्धा के बतलाने पर मानव ने अपने पिता को पहचाना। मनु वहॉ से दूर जाना चहते थे, किन्तु श्रद्धा ने स्वस्थ होने तक वहॉ रुकना आवश्यक समझा। मनु रुके तो, किन्तु उन्हें वहॉ से घृणा हो रही थी। उनकी समझ में यह बात आ चुकी थी कि श्रद्धा को छोड़कर उन्होंने अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की थी। एक रात, सभी लोग सो रहे थे। मनु सोच–विचार में लीन थे। उन्हें पूरा विश्व दुखमय दिखाई दे रहा था। निर्वेद के भाव उनमें भरते जा रहे थे। अन्त में, उन्होंने वहाँ से चले जाने का निर्णय ले लिया। प्रातः जब लोग उठे तो

मनु गायब थे। मानव– 'पिता कहाँ ?' कहकर उन्हें व्यग्र होकर खोजने लगा। श्रद्धा दुखो मे उलझ गयी और इडा इन सारे अनर्थों के लिए अपने को दोषी समझ कर ग्लानि में डूब गई।

श्रद्धा बहुत दुखी थी। उसे देखकर मानव भी बहुत उद्विग्न था। इडा ने श्रद्धा से क्षमा माँगी। उसने अपने प्रदेश में फैले संघर्ष, गर्व, बौद्धिकता आदि के लिए भी अपने आपको दोषी बतलाया। श्रद्धा बोली– 'सिर चढी रही, पाया न हृदय।' वह कहती है कि अपने–अपने व्यक्तिवादी रास्ते पर चलकर ही यहाँ के सब लोग भ्रमित हुए तथा तुमने भी सरल राह छोड दी। अन्त में, श्रद्धा ने मानव को इडा के हाथों में सौंप दिया और मनु को खोजने के लिए निकल पडी। जाते समय उसने मानव को सन्देश दिया, जो प्रसाद जी का विश्व को सन्देश है–

'हे सौम्य इडा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा–भार।
वह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय।
इसका तू सब सन्ताप निश्चय,
हर ले, हो मानव भाग्य उदय।
सबकी समरसता का प्रचार,
मेरे सुत सुन माँ की पुकार।'

अर्थात् श्रद्धा और तर्क या हृदय और बुद्धि के सामंजस्य से ही मन ठीक पथ पर चल सकता है और मनुष्य का भाग्योदय हो सकता है।

खोजते–खोजते श्रद्धा ने मनु को एक गुफा में पा लिया। मनु ने जब सुना कि सारस्वत प्रदेश के शासन के लिए श्रद्धा मानव को इड़ा को सौंप आयी है तो वे कुछ दुखी हुये। किन्तु श्रद्धा ने कहा कि देने से कोई भिखारी नहीं बनता। कुमार को देकर मैने तुम्हारी कालिमा धो दी। मनु यह सनुकर श्रद्धा की महानता पर मन्त्रमुग्ध हो गये। श्रद्धा के यथार्थ रूप को उन्होंने देखा और उनकी ज्ञान की आँखे खुलीं,

एक विचित्र प्रकाश उन्हें दिखाई पड़ा और नृत्यलीन नटेश के उन्हें दर्शन हुए। मनु बेसुध होकर पुकार उठे–

'यह क्या श्रद्धे! बस तू ले चल,
उन चरणो तक दे निज सम्बल।
सब पाप–पुण्य जिसमें जल–जल,
पावन बन जाते है निर्मल।
मिलते असत्य के ज्ञान लेश,
समरस आखण्ड आनन्द वेश।'

मनु की इच्छानुसार श्रद्धा उन्हें लेकर हिमालय पर चढती है। सर्वत्र शान्ति है। श्रद्धा आगे–आगे चल रही है और मनु पीछे–पीछे। रास्ता भयानक है। मनु थक कर पीछे लौटना चाहते हैं। श्रद्धा उन्हें सहारा देती है। चढाई समाप्त होती है। समतल भूमि पर आकर मनु को कुछ शान्ति मिलती है। मनु को तीन अलग–अलग आलोक बिन्दु दिखाई पडते हैं। मनु आश्चर्य चकित होकर उनका रहस्य पूछते हैं। श्रद्धा बतलाती है– 'इस त्रिकोण के मध्य बिन्दु तुम्हीं हो। ये इच्छा, ज्ञान और क्रिया के लोक हैं और उनके रंग क्रमशः लाल, श्वेत और कृष्ण हैं। इच्छा लोक से ही पाप–पुण्य का जन्म होता है। क्रिया लोक में सभी कर्मो के दास हैं। हिंसा और हार में भी गर्भ अनुभव करते हैं, ज्ञान लोक में व्यक्ति सुख और दुख से उदासीन रहता है, किन्तु यहाँ भी तृप्ति नहीं मिलती। यहाँ तर्क की प्रधानता है। यहॉ के जीवन में आनंद नहीं है। ये तीनों अलग–अलग हैं, यही मानव जीवन की विडम्बना है–

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों हो पूरी मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।'

इतना कहते –कहते श्रद्धा मुस्करा उठी और वे तीनों लोक प्रज्वलित होकर सम्बद्ध हो उठे। विश्व में डमरू की ध्वनि गूँज उठी–

'स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।'

मनु और श्रद्धा वहीं साधना में लीन हो गये। कुछ दिन बाद सारस्वत नगर के तीर्थयात्रियों का दल उस तीर्थ की यात्रा करने आया। इसमें इडा और मानव भी थे। उनके साथ धर्म का प्रतीक बैल भी था। उन लोगों ने वहाँ जा कर उस पवित्र भूमि तथा श्रद्धा के दर्शन किये। मनु ने लोगों को कैलास का दर्शन कराया और बतलाया की यहाँ सभी लोग समरस और आनन्द में मग्न हैं। यात्रियों ने भी वहाँ देखा–

'समरस थे जड या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।'

'कामायनी' के कथानक का आधार पौराणिक तथा कल्पित घटनायें हैं। दोनों को एक में गूँथकर कथा को रूपायित किया गया है। 'कामायनी के आमुख में प्रसाद ने लिखा है– 'यह अख्यान इतना प्रचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अथार्त् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। 'श्रद्धा हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ! (ऋगवेद 10–151–4)।' इन्हीं सब के आधार पर 'कामायनी' की कथा–सृष्टि हुई है। हाँ, कामायनी की कथा श्रृंखला मिलाने के लिए कहीं–कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।'[13]

गठन और प्रवाह में कुछ सामान्य दोषों के बावजूद, समवेतता यह सुगठित और प्रवाह युक्त है। पूरी कथा स्वाभाविक गति से आगे बढ़कर आनन्द सर्ग के केन्द्र बिन्दु पर पहुँचती है। अनावश्यक घटनायें

बिल्कुल नहीं हैं इसी कारण इसमें महाकाव्योचित घनत्व है। बाह्य विस्तार की दृष्टि से इसका कथानक बहुत महाकाव्योचित नहीं है, किन्तु यह सकारण है। 'कामायनी' प्रिय प्रवास या साकेत की तरह वर्णनात्मक और घटना प्रधान काव्य न होकर छायावादी प्रवृत्ति के अनुरूप अन्तर्मुखी, गीतितत्व–प्रधान और विश्लेषण–प्रधान महाकाव्य है। इसमें विस्तृत इतिवृत्तात्मकता के अभाव के पूर्ति भावनात्मक पक्ष की प्रबलता तथा मानसिक धरातल की विशदता एवं गहराई से हो गयी है। इसी कारण इसे कुछ लोगों ने प्रगीतात्मक महाकाव्य कहा है। इसका का कथानक एक तो बाह्य धरातल पर चलता है, किन्तु इस बाह्य का आयाम अधिक नहीं है। दूसरी ओर, यह आन्तरिक धरातल पर मानव–चेतना तथा उसके अन्तर्द्वन्द्वों को लेकर आगे बढ़ता है और इस रूप में इस कथानक में महाकाव्योचित आयाम, सघनता एवं सशक्तता है। कथानक की सारी शक्ति, उसकी सारी गरिमा उसके आन्तरिक रूप में ही है, जहॉ यह विश्व के अन्य महाकाव्यों की तरह एक व्यक्ति, एक वंश या एक जाति जीवन गाथा न होकर समग्र मानवता के विकास गाथा है।

जहाँ तक मानव जीवन की अधिकाधिक समस्याओं, भावों और परिस्थितियों को लेने का प्रश्न है, इसमें बाह्य जगत को कम लिया गया है। 'कामायनी' में मानव चेतना और उसके भाव जगत को पर्याप्त गहराई से लिया गया है। मानसिक भावों के विश्लेषण प्रधान इस महाकाव्य के बहुत से सर्गों के नाम तो भावों पर ही आधारित हैं। कवि ने भावो का चित्रण गहराई से किया है, साथ ही भावों के ये चित्र सजीव और मार्मिक हैं। वस्तुतः अन्तर्जगत के चित्रण की दिशा में इस महाकाव्य ने काव्य–जगत को एक नई दिशा दी है। यों भौतिक जगत के भी अनेक दृश्य, बातें, परिस्थितियॉ, संघर्ष आदि इसमें आये हैं और बड़े ही जीवंत ढंग से चित्रित किये गये हैं। अपनी मूल चिंता और परिकल्पना में कामायनी युग काव्य है।[14]

पात्रों की उदात्तता की दृष्टि से भी 'कामायनी' उच्चकोटि की है। यह नायिका प्रधान प्रबन्ध है। भारतीय दृष्टि से नायक में जो धीरोदात्तता आपेक्षित है, वह श्रद्धा में पूर्ण रूपेण है। इसमें नायक मनु अपने प्रारम्भिक जीवन में पतित तथा तामसिक गुणों के प्रतीक हैं, किन्तु बाद में उनमें भी उदात्तता की गरिमा के दर्शन होते हैं। मनु को प्रसाद ने आदर्श का पुतला न बनाकर मानवोचित दुर्बलताओं से युक्त चित्रित किया है, जो उन्हें अधिक जीवंत बना देता है। यों भी इस सृष्टि के आदि पुरुष होने के नाते वे

नायकत्व के सर्वथा अधिकारी है। इड़ा और मानव का व्यक्तित्व भी पर्याप्त उच्च है। इडा आरंभ मे बुद्धिवाद के अतिरेक से आच्छादित होने पर भी महाकाव्योचित है। प्राय. महाकाव्यों में प्रतिनायक या खलनायक भी होता है, जिसके कारण संघर्ष की तीव्रता बढ़ती है। रुपकत्व के कारण कामायनी मे मानव की तामसिक प्रवृत्तियॉ ही प्रतिनायक जैसी हैं और उनसे आरंभ में तो मनु अभिभूत होते हैं, किन्तु अन्त में उन्हें पराजित करके मानवता को विजयिनी बनाते हैं।

महाकाव्य देश–काल में बॅधा या उनसे सम्बद्ध होता हुआ भी इस बात में उनमें ऊपर होता है कि उसके अनेक अंकन, विश्लेषण, समाधान, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। 'कामायनी' में यह गुण भी है। 'कामायनी' में सृष्टि का आदि युग चित्रित है। आज के वर्ग–भेद, ऊॅच–नीच, छोटे–बडे, शासक–शासित, शोषक–शोषित, नारी का स्वातन्त्र्य सघर्ष या विश्वबन्धुत्व, समत्व आदि भी स्पष्ट या संकेत रूप में आये हैं। उदाहरणार्थ–

'वर्गों की खाई बन फैली कभी नहीं जो जुडने को।

× × × × ×

शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।'

आन्तरिक तथा बाह्य अनेक धरातलों पर जो समस्याऍ ली गयी हैं, उनमें कई शाश्वत और सार्वकालिक हैं।

महाकाव्यों में उद्‌देश्य की महानता सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से 'कामायनी' संभवतः विश्व साहित्य में अप्रतिम है। वैसे तो महान उद्‌देश्य सभी महाकाव्यों में होते हैं किन्तु वे प्रायः विशिष्ट धर्म ,विशिष्ट वर्ग या विशिष्ट संस्कृति के लोगों के लिए होते हैं। प्रसाद ने इन सारी सीमाओं को लॉघकर मानव मात्र के लिए संदेश दिया है। वह संदेश अन्धविश्वासपूर्ण धर्म, पुराण या इस तरह की किसी अन्य भित्ति पर आधारित न होकर वैज्ञानिक और मनोविज्ञान से अनुमोदित है। आज मनुष्य बौद्धिक और भौतिक अतिरेक से पीड़ित और स्वार्थ की कारा में बन्द होने के कारण बड़ी असहायावस्था में तथा अशान्त है। प्रसाद इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामंजस्य एवं बुद्धि तथा हृदय के समन्वय द्वारा प्रेम के 'स्व' की परिधि विस्तृत करके 'स्व' और 'पर' का भेद मिटाकर हर प्रकार की समरसता स्थापित करने का

सदेश देते हैं। इसी पथ पर चल कर शाश्वत मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकेगी और टूटा तथा अस्वस्थ मानव–जीवन स्वस्थ, पूर्ण और शान्त हो सकेगा। प्रसाद ने लिखा है–

'शापित न यहॉ कोई,
तापित न यहॉ कोई।'

इस छंद में उसी स्वस्थ समाज का चित्र दिया गया है। इस महान उद्देश्य की प्रेरणा कवि को बौद्धों के मध्यम मार्ग, शैव दर्शन की समरसता तथा आधुनिक युग के मानववाद एवं डार्विन के विकासवाद आदि विभिन्न स्रोतों से मिली ज्ञात होती है।

भारतीय दृष्टि से महाकाव्य का उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति है। 'कामायनी' का उद्देश्य भी मोक्ष कहा जा सकता है, किन्तु मोक्ष केवल उस लोक का न होकर इस लोक का भी है। उसके आधार पर हम जीते जी मोक्ष के आनंद के भागी हो सकते हैं। प्रसाद भाव, कर्म और ज्ञान के सामंजस्य द्वारा समरसता और आनन्द की सिद्धि का संदेश देते हैं। आज के जीवन में इन तीनों का अलगाव और असामंजस्य मानव जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है। तीनों का समन्वय, मानव जीवन की मूल और सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या का निश्चय ही चिरन्तन समाधान है। दर्शन और मनोविज्ञान की सुदृढ पीठिका पर आधारित प्रसाद के चिन्तन की यह गरिमा उनकी विराट प्रतिभा का प्रतिफल है।

'कामायनी' अपने बाह्य या कला–पक्ष की दृष्टि से भी भव्य है उसकी कला की महाकाव्योचित गरिमा असंदिग्ध है। कामायनी की भाषा पग–पग पर प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता के सहज स्वाभाविक अभूषणों से अलंकृत है। शब्द–शिल्पी प्रसाद ने अपनी सुकोमल शब्दावली को इस ढंग से सजाया है कि भाव जैसे छलक पडते हैं। उनकी प्रगल्भ कल्पना अप्रस्तुत चयन में इतनी कुशल है कि उनका अलंकरण–विधान भावों को मूर्त कर देता है। समृद्ध बिम्ब–योजना, अलंकारों का अबोझिल, सहज, भावोचित तथा व्यंजक प्रयोग, रसानुकूल उतार–चढ़ाव उनकी भाषा की कुछ अन्य विशेषताएँ हैं । निष्कर्षतः 'कामायनी' की शैली प्रणय भावना और मादक सौन्दर्य जैसे मधुर तथा प्रलय जैसे भयानक मनःस्थितियों जैसे सूक्ष्म और बाह्य रूपों जैसे स्थूल सभी के चित्रण में अत्यन्त समर्थ है। छन्द भी भाव एवं विषय के अनुकूल हैं।

# सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

## विद्रोही चेतना के कवि

अपने विद्रोही स्वर और असमझौतावादी रुख के कारण निराला का छायावादी कवियों में एक विशिष्ट स्थान है । अपने कृतित्व के आरम्भ में उन्हें प्रकाशकों, सम्पादकों एवं आलोचकों के विरोध का सामना करना पडा। निराला को आलोचकों से अधिक उनके पाठकों ने स्वीकारा। प्रारम्भ मे उनके काव्य को समझने की जिन आलोचकों ने चेष्टा की, उनमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सबसे महत्वपूर्ण हैं। बाद में डॉ0 रामविलास शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनुशीलन कर साहित्य जगत को निराला के महत्व से अवगत कराया।

निराला के जीवन और उनकी रचना में अन्तर्विरोध कम है। उन्होंने जैसा जीवन जिया वैसा ही लिखा भी। फिर भी अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को उन्होंने अपनी रचना में एक सीमा से अधिक प्रक्षेपित नहीं होने दिया। जीवन के उतार–चढाव में वे वृहत्तर समाज से जुडने की सामर्थ्य बढा लेते थे, जिस कारण अन्तर्मुखी होने से बच जाते थे। उनका जीवन संघर्ष भरा था, जिसे उन्होंने मौन भाव से स्वीकारा था। दुःख उन्हें अभिभूत नहीं कर सका, यद्यपि अन्तिम क्षणों में वह उन्हें तोड गया। उनकी रचनाओं में कई ऐसे संकेत मिलते हैं। 'सरोज–स्मृति' की अन्तिम पंक्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उन्हें अपनी व्यथा का बखान करना अरुचिकर प्रतीत होता था–

'दुख ही जीवन की कथा रही।
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।।'

निराला अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक सृजनरत रहे। इस बीच भारतीय इतिहास ने कई आरोह–अवरोह देखे और आजादी भी आयी। बहुत से लेखकों ने सुविधा की नई स्थितियों से समझौता कर लिया, पर निराला की संघर्ष गाथा स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भी समाप्त नहीं हुई। उनके जीवन में कुछ ऐसी दुखद घटनाएं घटीं जिन्होंने कई बार उन्हें तोड कर रख दिया, फिर भी बार–बार वे उनसे उबर जाते थे। भीतर का संकल्प एक अदम्य जिजीविषा, जीवन से निरन्तर साक्षात्कार, वेदान्ती दृष्टि–

इन सबने मिलकर उनकी लम्बी सृजन यात्रा के पाथेय दिया। उनकी आन्तरिक पीडायें कई बार कविताओं में झाँकती हैं, पर उनके काव्य में ऐसे क्षण बहुत कम मिलेंगे जब कोई विषय–परिस्थिति उन्हें पूरी तरह दबोच ले। वे अपनी वैयक्तिक पीडाओं को अपने रचनाकार पर कभी हावी नहीं होने देते। रचना में उनकी तटस्थता अथवा निर्वैयक्तिकता उनके कवित्व को उच्चकोटि का प्रमाणित करती है।

हिन्दी साहित्य के स्वच्छन्दतावादी कवियों में अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठने की शक्ति सबसे अधिक निराला में है। व्यक्ति–संवेदन को समाज–संवेदन से जोड सकने की शक्ति उनमें सबसे अधिक है। इसलिए उनकी कविता में गहराई के साथ जीवन का विस्तार भी है। निराला ने अपने जीवन और विचारधारा के कुछ महत्वपूर्ण सूत्र अपनी रचनाओं में दिये हैं। इसके अतिरिक्त कवि के समकालीन मित्रों ने अपने संस्मरणों क़े माध्यम से भी संकेत किये हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' नाम से महाकवि की सम्पूर्ण जीवनी तैयार की है। निराला का प्रारम्भिक जीवन वैसवाडा एवं बंगाल में बीता था, जहाँ के वातावरण का प्रभाव उन पर पड़ा था। बगाल में रहते हुए निराला भारतीय नवजागरण के सर्वोत्तम धरातल से परिचित हुए। बंगला काव्य और साहित्य के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप से साक्षात्कार करके निराला ने यहीं रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द के अद्वैत दर्शन को अपनाया, जो उनके काव्य का एक मुख्य पक्ष है। उन्होंने 'रामकृष्ण कथामृत' तथा 'भारत में विवेकानन्द' का अनुवाद किया। 'रवीन्द्र कविता कानन' में उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर के विषय में एक लम्बी भूमिका लिखी और उनकी कविताओं का अनुवाद किया। इसी तरह आनन्द मठ, कपाल कुण्डला तथा दुर्गेश नन्दिनी का भी उन्होंने अनुवाद किया। डॉ0 राम रतन भटनागर ने अपने ग्रन्थ 'निराला और नवजागरण' में निराला के व्यक्तित्व की भूमिका के रूप में भारतीय नव जागरण का विस्तृत विवेचन करते हुए लिखा है–

'निराला हिन्दी को बंगाल के रेनसॉ की देन हैं। वह शताब्दी के अन्त में महिषादल राज्य में पलकर बंगाल की शस्य श्यामला भूमि और नारिकेल कुंजों की शीतल जलवायु से रस खींच कर बड़े होते हैं और अठारह वर्षों तक बंगाल के नये जीवन का अंग बने रहते हैं। दो वर्ष घर (गढ़ाकोला) रहकर वह जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ता पहुॅचते हैं और कलकत्ता के दस वर्षों के अपने जीवन में श्री रामकृष्ण

मिशन की अनेक प्रवृत्तियों और 'मतवाला' से सम्बंधित होकर सास्कृतिक साधना के सोपानों पर ऊँचे–ऊँचे चढ़ते जाते हैं।'[15]

निराला आधुनिक हिन्दी काव्य में वसंत के अग्रदूत हैं। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद को अर्थ दीप्ति देता है उसके नये आयाम विकसित करता है और वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ से लेकर प्रगति, प्रयोग तक जाता है। निराला का स्वाभिमान उन्हें असमझौतावादी बनाता है। इसीलिए राजकीय स्तर पर वे अनपुजे रह गये। यद्यपि हिन्दी जनता का जितना आदर–सम्मान उन्हें मिला, बहुत कम लोगों को वह सम्मान नसीब होता है। निराला संवेदन की द्रवणशीलता में भिक्षुक और विधवा को अपनी ममता देते है। इलाहाबाद के फुटपाथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूरनी के प्रति सहानुभति व्यक्त करते हैं, पर स्वाभिमानी ऐसे कि गॉधी और नेहरू से भी हिन्दी के मामले में टक्कर ले सकते हैं। उच्चतर मानवमूल्यों के लिए जीने वाले निराला टूट गये, पर झुके नहीं, अपना ईमान बेचने से उन्होंने इन्कार कर दिया। सबसे बड़ी बात यह कि अभावों और दर्दों के बावजूद अपनी रचना को अपराजेय रखा । वे सच्चे अर्थों में मानवीय सदाशयता से प्रेरित सार्थक विद्रोह के रचनाकार हैं। उन्होंने जाति, धर्म, सम्प्रदाय की जर्जर मान्यताओं को चुनौती दी। 'प्रेम संगीत' मे उन्होने व्यंग्य किया–

'ब्राह्मन का लडका
मैं उसको प्यार करता हूँ
जात की कहारिन वह
मेरे घर की पनहारिन वह
आती है होते तडका
उसके पीछे मैं मरता हूँ।'[16]

निराला के व्यक्तित्व के बनने में कई प्रकार के प्रभाव सक्रिय रहे हैं, पर उन्होंने अपनी विद्रोही चेतना में उन सब का समाहार किया। निराला मूलतः स्वच्छन्दतावादी व्यक्तित्व के रचनाकार हैं, पर इस रोमानी आंदोलन के जितने पक्ष उनकी रचनाओं में उजागर हुए हैं उतने किसी में नहीं प्राप्त होते। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य को विस्तृत आयाम दिया। इसलिए हिन्दी प्रगतिवाद उनमें अपना प्रस्थान बिन्दु

स्वीकार करता है और नया हिन्दी काव्य उनमें अपना पूर्वाभास देखता है। निराला की कृतियों में भारतीय नवजागरण अपनी पूरी सर्जनात्मकता में प्रतिफलित है। महिषादल की सुरम्य प्रकृति उनके काव्य में विद्यमान है। निराला श्रेष्ठ ऋतुगीतों के निर्माता हैं। वैसवाड़े का पिछडा समाज उनकी कृतियो को यथार्थवादी तेवर देता है। वेदान्त ने उन्हें आत्मविश्वासी बनाया और उनकी कविताओं को एक आध्यात्मिक आशय से सम्पन्न किया। इस प्रकार उनकी रचनायें कई भूमियों का संस्पर्श करती हैं और उनकी कृतियों को वैविध्य देती हैं।

## काव्य कृतियाँ

निराला का कृतित्व वैविध्य भरा है। उन्होंने गद्य–पद्य दोनों की सभी विधाओं में रचनाएँ की हैं। निराला ने काव्य के क्षेत्र में 'अनामिका' के साथ प्रवेश किया, जिसका प्रकाशन 1922–23 ई0 में हुआ था। उस समय इस संग्रह में केवल सात कविताएँ थीं जो बाद में अन्य संकलनों में प्रकाशित हुईं। निराला की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'परिमल' 1930 ई0 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'गीतिका' का प्रकाशन हुआ जिसमें 101 गीतों का संकलन है। 1937 ई0 में 'अनामिका' का दूसरी बार प्रकाशन हुआ । 1938 ई0 में 'तुलसीदास' काव्य प्रकाशित हुआ। 1942 ई0 में व्यंग्य कृति 'कुकुरमुत्ता' का प्रकाशन हुआ। 1943 ई0 में 'अणिमा' संकलन सामने आया। 1946 ई0 में 'बेला' और 'नये पत्ते' नाम से दो संकलन सामने आये। 1950 ई0 में 'अर्चना', 1953 ई0 में 'आराधना' तथा 1954 ई0 में 'गीत कुंज' संग्रह प्रकाशित हुए। निराला का अंतिम काव्य संकलन 'सांध्य काकली' (1969 ई0) है, जिसका प्रकाशन उनके मरणोपरान्त हुआ।

## परिमल–गीतिका : वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व का आभास

यह निराला की कविताओं का प्रथम प्रतिनिधि संकलन है। इसके पूर्व प्रकाशित 'अनामिका' की कविताएँ धीरे–धीरे अन्य संकलनों में स्थान पा गईं। 'परिमल' की भूमिका में निराला ने घोषणा की– 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।'[17] इस भूमिका में उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य की कई स्थापनाओं को

स्पष्ट किया। उन्होंने काव्य की मुक्त स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए कहा कि –'साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में दीख पड़ती है। इस तरह जाति के मुक्ति–प्रयास का पता चलता है। धीरे–धीरे चित्र प्रियता छूटने लगती है, मन एक खुली हुई प्रशस्त भूमि में विहार करने लगता है।'[18] इसीलिए निराला ने अपनी स्वच्छन्दतावादी वृत्तियों के लिए मुक्त छन्द अपनाया जिसे उन्होंने जातीय छन्द घोषित किया। काव्य की मुक्ति का जो संकल्प निराला ने 'परिमल' की भूमिका में लिया उससे उनके विद्रोही स्वभाव का पता चलता है। उन्होंने बराबर मुक्ति की कामना की और हर प्रकार के निरर्थक बन्धनों को अस्वीकार किया।

'परिमल' की कविताएँ तीन खण्डों में विभक्त हैं। तीनों खण्डों में कुल अठहत्तर कविताएँ संग्रहीत हैं। संकलन के प्रारम्भ में एक लघु प्रार्थना है– 'जग को ज्योतिर्मय कर दो'– कवि प्रार्थना करता है कि प्रिय, पृथ्वी के तरु–त्रृण गुल्म जीवन्मृत हैं, इसमें नूतन जीवन भर दो। इससे निराला की मानवीय सदाशयता का संकेत मिलता है। प्रथम खण्ड के गीतों में कवि ने अपनी रोमानी भावना का परिचय दिया है । यद्यपि इनमें बौद्धिक अनुभूति का योग है, पर इसे मात्र भावात्मक उच्छ्वास नहीं कहा जा सकता। कई बार इनमें बौद्धिक प्रतिक्रियाओं को प्रमुखता मिली है जिसे हम कवि का आत्म संयम भी कह सकते हैं। प्रथम गीत 'मौन' में ही कवि की संयमित अभिव्यक्ति दिखाई देती है, जो निराला के भावानुशासन से सम्बद्ध है। 'प्रिया के प्रति' जैसी कविताओं में कवि को प्रिया का स्मरण हो आता है, पर वह अपनी स्वच्छन्दतावादी भावनाओं को इन्द्रियों से ऊपर उठा सकने में सचेष्ट हैं। इस खण्ड में प्रकृति चित्रों की पर्याप्त संख्या है। वासंती, वसंत समीर, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति आदि में प्रकृति दृश्यों का उपयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त गीतों में भी प्रकृति की छवियाँ अंकित हुई हैं। 'निशा के उर की कली खिली' गीत में निशा–सुन्दरी का चित्र है, एक प्रकार से उसका मानवीकरण किया गया है–

'खड़ी सोचती नमित नयन मुख
रखती पग उर कॉप पुलक सुख,
हॅस अपने ही आप सकुचि धनि
गति मृदु मंद चली।

प्रकृति और मनुष्य को निकट लाने की चेष्टा स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। इसे प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण कहा जाता है, पर निराला में यह स्थिति अधिक संश्लिष्ट है। एक ओर प्रकृति दृश्य हैं, दूसरी ओर कवि की वैयक्तिक अनुभूतियॉ और इन्हीं के साथ विराट मानव जगत जिसके प्रति कवि गहन दायित्व की भावना से सम्पन्न है। इसीलिए 'प्रभाती' जैसी कविताओं मे ये स्थितियॉ एक साथ संयोजित दिखाई देती हैं। भोर का समय है, रात लगभग बीत चुकी है, प्रिया के लिए जागरण गीत गाया जा रहा है। अन्धकार से प्रकाश में लाने का आवाहन है, पर यह मात्र रोमानी भावना नहीं है। यह चेतना के जागरण का आध्यात्मिक गीत हो सकता है और राष्ट्र के लिए उद्‌बोधन भी। यद्यपि सम्बोधन रूप में प्रिय का उपयोग है–

'जीवन प्रसून वह वृन्तहीन
खुल गया उषा नभ में नवीन,
धाराऍ ज्योति सुरभ उर भर
बह चली चतुर्दिक कर्म लीन,
तुम भी निज तरुण तरंग खोल
नव अरुण संग हो लो–
मुद्रित दृग खोलो।'

प्रथम खण्ड की लम्बी कविता है– 'यमुना के प्रति'। यमुना के माध्यम से कवि भारत के पराजित वर्तमान का संकेत करता है। उसे बार–बार उस वैभव–पूर्ण अतीत का स्मरण हो आता है, जब श्याम यमुना के कूल कछारों पर बंशी बजाया करते थे। वह बंशी बट कहाँ गया ? नट नागर श्याम कहाँ गये ? वृन्दावन धाम कहॉ है ? आज तो ऐसा लगता है कि मानो यमुना विषाद मे डूबी हुई अपने सुखकर अतीत का स्मरण मात्र करके रह जाती है। उसकी स्थिति वियोगमग्ना नायिका के समान है। कवि चाहता तो यमुना के माध्यम से भारत की पिछली सांस्कृतिक स्थिति को उभार सकता था, क्योंकि जिन कृष्ण के क्रिया–कलापों का साक्ष्य यमुना उपस्थित करती है, वे केवल रसिक शिरोमणि व्यक्ति मात्र नहीं हैं। वे महाभारत के सूत्रधार भी हैं और इस दृष्टि से राजनीतिज्ञ भी। जो उंगलियाँ बंशी बजाकर वशीकरण मंत्र

पढना जानती हैं, वे ही गोवर्धन पर्वत धारण कर सकती हैं और सुदर्शन चक्र भी उनमे हैं। पर 'यमुना के प्रति' कविता निराला की स्वच्छन्दतावादी रोमानी भावनाओ को व्यक्त करती है। यहॉ यमुना को मुख्य रूप से कृष्ण के रसिक रूप की याद आती है–

'कहाँ छलकते अब वैसे ही
ब्रज नागरियों के नागर ?
कहॉ भोगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर ?
बॅधा बाहुओं में घट क्षण–क्षण
कहाँ प्रकट बकता अपवाद ?
अलकों को, किशोर पलको को
कहॉ वायु देती संवाद ?'

'परिमल' के द्वितीय खण्ड में कविताओं का स्वरूप लगभग वही है, कुछ प्रेम कविताएं हैं, जहॉ कवि अपनी निजी भावनाओं को व्यक्त करता है। पर इनकी संख्या कम है जिससे प्रमाणित होता है कि कवि स्वयं से बाहर झॉकने की चेष्टा में है। वह अपने अनुभूति–जगत का विस्तार करना चाहता है और उसकी चेष्टा है कि जीवन के अधिकाधिक चित्र उसकी चेतना में सम्मिलित हो। इसी खण्ड में विधवा, भिक्षुक जैसी कविताएं भी हैं जिन्हें निराला की प्रगतिशील भावना के आरम्भ रूप में स्वीकारा जाता है।

द्वितीय खण्ड के अंत में 'बादल–राग' शीर्षक से छः कविताएं हैं। एक ही शीर्षक से कई कविताओं की भाव भूमि अलग–अलग है। प्रथम कविता में कवि मेघों से प्रार्थना करता है– 'मुझे गगन का सघन छोर दिखा ताकि कवि का स्वयं का आकाश विस्तृत हो।' दूसरी कविता में 'मेघ', विप्लव के नव जलधर हैं, तीसरे में वे धरा के सेवक हैं, जिन्हें पाकर व्याकुल श्यामा के आधरों की प्यास मिटेगी। चौथी और पॉचवी कविता में भी इसी प्रकार के भाव हैं, जिनमें सृष्टि मेघों से सुख पाती है। 'बादल राग' की छठी कविता में बादल को क्रान्ति का अग्रदूत माना गया है। इस कविता की रचना करते समय विद्रोही निराला के समक्ष भारतीय कृषक की शोषित स्थिति का चित्र है। उन्होंने शोषित समाज की विषमताओं का

सकेत किया है। विप्लव के बादलों के स्वागत के लिए हर छोटा पौधा तैयार है क्योंकि– 'विप्लव के रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।'

'ध्वनि' नामक प्रसिद्ध गीत निराला की आस्था को व्यक्त करता है। स्वयं को विराट जीवन से जोड़कर ही कवि ने यह आस्था प्राप्त की है। इस गीत की विशेषता है कि निराला ने आस्था–विश्वास की जो शक्ति पायी है, उसका उपयोग वे समाज के लिए करना चाहते हैं। यह उनकी चेतना का अरुणोदय है। वे निद्रित कलियों पर अपना स्वप्न–मृदुल कर फेर कर एक नया मनोहर प्रत्यूष जगाना चाहते हैं। पुष्प–पुष्प की तन्द्रालस लालसा खींच लेना चाहते हैं। कवि की आस्था है–

'मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण
इसमें कहॉ मृत्यु
है जीवन ही मेरा
अभी पड़ा है आगे सारा यौवन
स्वर्ण–किरण–कल्लोलों पर बहता रे यह बालक मन
मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बन्धु दिगन्त –
अभी न होगा मेरा अन्त
अभी–अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसन्त

परिमल के तृतीय खण्ड का आरंभ निराला की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' से होता है। यह निराला की आरंभिक कविताओं में से एक है। सन् 1916 ई0 के आस–पास इसकी रचना हुई थी, पर इसमें एक प्रौढ़ता दिखाई देती है। विजन वन वल्लरी पर सोती हुई सुहाग–भरी स्नेह स्वप्न–मग्न, अमल–कोमल–तनु तरुणी जुही की कली प्रकृति की खुली भूमि प्रस्तुत करती है। सम्पूर्ण प्रकृति ही यहॉ प्रेम के क्रिया–व्यापार का खुला मंच है। वसन्त के क्षणों में दूरदेश के प्रेमी का सहसा अपनी प्रिया के लिए आकुल हो उठना और संसार के सारे अवरोध 'उपवन– सर– सरित – गहन – गिरि – कानन –

कुज – लता – पुज' को पार कर, प्रिया के पास पहुँच जाना, प्रिय की अदम्य आकांक्षा और उसके विद्रोही स्वभाव का संकेत करते हैं। 'जूही की कली' में निराला भारतीय समाज की बहुसंख्यक इकाई के जीवन में प्रणय–प्रसंग और उसकी सार्थक परिणति के मार्ग में आने वाली बाधाओं की ओर संकेत करना चाहते है। यह कविता हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य में केवल एक नये मोड़ की सूचना नहीं देती, वरन् वह रोमानी काव्य की नयी–नयी संभावनाओं का संकेत भी करती है। इसमें निराला मानव के प्रेम–व्यापार के लिए जूही की कली अथवा मलयानिल जैसे प्रकृति रूपों का ऐकान्तिक उपयोग नहीं करते, वरन् सारा खेल प्रकृति के विस्तृत रंगमंच पर घटित होता है। यह निराला की स्वच्छन्द वृत्ति है, जो मनुष्य के निजी सम्बन्धों के लिए भी अधिक खुली भूमि अपनाती है। इसीलिए मिलन के घनिष्ठतम् क्षणों में भी कवि एक निर्लिप्तता जैसी बरतता दिखाई देता है। दृश्य को उसकी गतिशीलता में एक छोटे से गीत में संपूर्ण कर देना कवि की अभिव्यक्ति कौशल का भी प्रमाण है और अंकुठित स्वच्छन्दतावादी की मिसाल भी।

'जागो फिर एक बार' शीर्षक से दो मुक्त छन्द की कविताएँ हैं। एक ही शीर्षक होते हुए दोनों लगभग विपरीत भाव–भूमि पर उपस्थित हैं। पहली कविता प्रिया द्वारा प्रिय के लिए गाया गया गीत है। ऊपरी तौर पर उसमें रोमानी भावना दिखाई दे सकती है, पर कविता का आशय गहरा है। एक ओर तत्कालीन संदर्भों में वह राष्ट्र के लिए उद्बोधन का संकेत हो सकता है दूसरी ओर दार्शनिक स्तर पर यह चेतना के जागरण का गीत कहा जा सकता है। दूसरी कविता गुरु गोविन्द सिंह के माध्यम से देश प्रेम की भावना को व्यक्त करती है और ओजगुण सम्पन्न है।

इस संग्रह की अंतिम कविता 'पंचवटी प्रसंग' है, जिसमें कवि ने नाट्य शिल्प अपनाया है। प्रथम खण्ड में सीता अयोध्या के बंधे राजसी जीवन और वन की खुली जिन्दगी में अन्तर देखती हैं और राम स्वीकारते हैं कि वनस्थली चारुचित्रा है। वे एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करते हैं, जो आत्मा के विस्तार पर बल देता है और जो निराला की विचार भूमि की ही अभिव्यक्ति है–

'छोटे से घर की लघु सीमा में<br>
बँधे हैं क्षुद्र भाव<br>
यह सच है प्रिये!

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है

सदा ही निस्सीम भू पर.....।

दूसरा खण्ड लक्ष्मण के वक्तव्य से निर्मित है। लम्बे स्वगत कथन में लक्ष्मण सीता को मॉ कहकर मन–ही–मन उन्हें आदि–शक्ति–रुपिणी स्वीकारते हैं। तीसरे खण्ड में सूर्पणखा का स्वगत कथन है जिससे उसके रूपगर्विता होने का पता चलता है। निराला ने सूर्पणखा के सौन्दर्य चित्रण में स्वच्छन्दतावादी शिल्प का प्रयोग किया है। नख–शिख सौन्दर्य–वर्णन का चित्र है–

'देख यह कपोल कंठ

बाहु बल्ली कर सरोज

उन्नत उरोज पीन क्षीण कटि

नितम्ब भार चरण सुकुमार

गति मन्द–मन्द

छूट जाता धैर्य ऋषि–मुनियों का

देवों–भोगियों की तो बात ही निराली है।'

चौथे खण्ड में लक्ष्मण की दार्शनिक समस्याओं का समाधान करते हुए राम जीवन–जगत की व्याख्या करते हैं और व्यष्टि–समष्टि के सम्बन्धों पर विचार करते हैं। पॉचवे खण्ड में सूर्पणखा राम के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करते हुए विवाह प्रस्ताव करती है, राम स्वयं को विवाहित कहकर लक्ष्मण की ओर संकेत करते हैं। लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार करने पर सूर्पणखा क्रोधित हो जाती है। लक्ष्मण उसके नाक–कान काट लेते हैं। यहीं पंचवटी प्रसंग समाप्त हो जाता है।

'परिमल' निराला के कवि–व्यक्तित्व की संभावनाओं को हमारे सामने लाता है। उनके काव्य में पर्याप्त वैविध्य के दर्शन होते हैं। अपने प्रथम चरण में ही एकाधिक भाव–खण्डों को काव्य में संयोजित कर सकना यह प्रमाणित करता है कि स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के कवि होते हुए भी निराला बाहरी दुनिया से जुड़े हुए हैं यद्यपि उसे समझने के लिए वे अपनी दृष्टि का आश्रय लेते हैं। 'परिमल' में वैयक्तिक अनुभूतियॉ हैं, जो प्रेम–भावना समन्वित गीतात्मक कविताओं में व्यक्त हुई हैं। प्रिय–प्रिया के कई सघन

अनुभूति–चित्र हमें देखने को मिलते हैं– मौन, निवेदन, अंजलि, स्मृति, प्रिया के प्रति आदि। दूसरे प्रकार की कविताएँ ऋतुओं से सम्बद्ध हैं। कुछ आध्यात्मिक भावना समन्वित कविताएँ भी है। कुछ प्रगतिशील भावना से जुडी कविताएँ भी हैं। 'परिमल' संग्रह में निराला ने मुक्त छन्द में विभिन्न भाव–भूमि की कविताएँ संग्रहीत की है। भाषा के क्षेत्र में उन्होने संस्कृत का आश्रय लिया है। उनकी शब्दावली प्रांजल है। 'परिमल' में निराला अपने वैविध्य भरे कवित्व का आभास देते हैं।

## गीतिका

यह गीतों का संग्रह है। इस संग्रह की भूमिका में निराला ने भारतीय गीत–सृष्टि का इतिवृत्त प्रस्तुत करने के बाद अपना मौलिक दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। यहाँ संगीत के विषय में उनके शास्त्रीय ज्ञान का भी पता चलता है। आरंभ में सरस्वती वन्दना है। इसमें कवि वीणावादिनि से सामाजिक वर की कामना करता है जिससे चेतना का विकास और जीवन को नयी दिशा दे सकने में इन गीतों का सक्रिय योग हो –

'वर दे, वीणा वादिनि वर दे

× × × × ×

काट अन्ध–उर के बन्धन स्तर

बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर

कलुष भरे तम हर प्रकाश भर

जगमग जग कर दे।'

'गीतिका' के गीत कई प्रकार की भाव भूमियों से गुजरते हैं। सर्वप्रथम प्रेम और सौन्दर्य के गीत हैं, जहाँ कवि की स्वच्छंदतावादी वृत्तियाँ सजग हैं। 'गीतिका' में प्रणय–भावना का एक ही सूत्र उभरता नहीं दिखाई देता, उसके कई रूप हमें देखने को मिलते हैं। प्रिय के साथ व्यतीत क्षणों की छवियाँ गीतकार के मानस में आती हैं और स्मृति की सहायता से वह उन्हें पुनः पुनः पाना चाहता है। अधिकांश गीतों में गीतकार अपनी प्रणयानुभूति को प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति देता है। कई बार अपनी वैयक्तिकता को

उदात्त भूमि पर ले जाने के लिए उसमे प्रकृति अथवा अधिक सामाजिक स्थितियो का प्रवेश कराया गया है। 'प्रिय यामिनी जागी' गीत के अन्त में किसी ऐसी ग्रामवधू का चित्र भी सम्मिलित होता दिखाई देता है जो रात्रि के अंतिम प्रहर में ही अपनी दिनचर्या आरम्भ कर देती है– चक्की पीसती या धान कूटती हुई। एक ओर कवि की वैयक्तिक अनुभूतियॉ हैं, दूसरी ओर एक सामाजिक चित्र भी। इन दोनों का संयोजन यहॉ हुआ है।

'गीतिका' में वैयक्तिक अनुभूतियों पर कवि की विजय एक महत्वपूर्ण तथ्य है, जिससे गीतों को नयी–नयी दिशाएं मिलती हैं। कवि के भाव लोक में नयी दीप्ति आती है और व्यक्ति–संवेदन, समाज–संवेदन से जुडते हैं। विद्यादेवी सरस्वती और शक्ति की देवी दुर्गा की उपासना से कवि का आत्मविश्वास लौटता है। एक प्रकार से यह काव्य पुनर्जन्म का क्षण भी कहा जा सकता है– जब कवि नये संकल्पों के साथ रचना में अग्रसर होता है। वह कहता है– 'जय जीवन की जीवन पर।'

'गीतिका' में ऋतु चित्रों की पर्याप्त संख्या है। वर्षा और वसन्त निराला की प्रिय ऋतुएॅ हैं जिनमें से वर्षा तो उनके सामने अनेक रूपों में आती है। बादल उनके लिए विभिन्न अनुभूतियों के वाहक बने हैं। वर्षा के अतिरिक्त वसन्त और शिशिर का भी उन्होंने वर्णन किया है। ये गीत निराला के प्रकृति–निरीक्षण और उसके प्रति उनकी रागात्मकता को व्यंजित करते हैं। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के कारण वे कई बार प्रकृति और मानव की भावनाओं को संयोजित करने की चेष्टा करते हैं।

## अनामिका : स्वच्छन्दतावाद का प्रतिनिधित्व

अनामिका का प्रकाशन सन् 1937 ई0 में हुआ। इसमें उनके नये तेवर और सामाजिक यथार्थ की उनकी पहचान भी साफ होती है। इसमें कुछ प्रेम, अध्यात्म के गीत हैं, कुछ बौद्धिक रचनाएँ हैं, शोकगीत, यथार्थगीत तथा व्यंग्य रचनाएॅ हैं। इस संग्रह में निराला का वैविध्य पूरी तरह खुल जाता है और स्वच्छन्दतावादी काव्य को नये आयाम मिल जाते हैं। धनन्जय वर्मा ने लिखा है– 'एक ही ग्रंथ में विरोधाभास का यह रूप उनकी व्यापकता और विविधता, विराटता और विस्तार का ही परिणाम है, हमारे मत में सब दृष्टियों से 'अनामिका' निराला का ही नहीं, पूरे स्वच्छन्दतावादी युग का प्रतिनिधि काव्य–संग्रह है।[19]

'अनामिका' में गीतों और छोटी कविताओं की संख्या कम होती गयी है तथा निराला वृहत्तर प्रयोगों में अधिक रुचि लेने लगे हैं। यथार्थ जीवन की संपृक्ति बढ़ जाती है और कवि मात्र सदाशयता से संतुष्ट होता नहीं दिखता। उनकी चेतना में समाज का वह वर्ग अपनी संपूर्ण विषमता में प्रवेश करता है जिसे दलित शोषित कहा जाता है।

'अनामिका' की प्रथम कविता 'प्रेयसी' मे हम निराला के रोमानी तेवर, आध्यात्मिक स्वभाव के साथ ही उन्हें उस सामाजिक वैषम्य को छूते हुए देख सकते हैं जिसकी ओर वे अधिकाधिक उन्मुख होते गये और उन्होंने स्थिति में बदलाव के लिए व्यंग्य तक का सहारा लिया। इसमें प्रकृति चित्रों के माध्यम से प्रिय–प्रिया के घनिष्ठ मिलन का संकेत है– सजल शिशिर धौत पुष्प ज्यों प्रात में एकटक किरण–कुमारी को देखता है, अथवा प्रेयसी के शब्दों में–

'याद है, उषः काल –
प्रथम किरण कम्प प्राची के दृगों में
प्रथम पुलक फुल्ल चुम्बित वसन्त की
मंजरित लता पर
प्रथम विहग बालिकाओं का मुखर स्वर
प्रणय मिलन गान
प्रथम विकच कलि वृत्त पर नग्न तनु
प्राथमिक पवन के स्पर्श से कॉपती...।'[20]

× × × × ×

हुआ रूप दर्शन, जब कृतविद्य तुम मिले.....।[21]

यहॉ साधारण प्रिय–प्रिया का संगम नहीं है। निराला ने यहॉ दो ज्योति–छवियों का मिलन कराया है।

'अनामिका' की व्यंग्य रचनाएँ वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं से आरम्भ होकर सामाजिक भूमियों तक जाती हैं। हिन्दी के सुमनों के प्रति, मित्र के प्रति, वन–बेला, दान, नर्गिस आदि व्यंग्य कविताएँ हैं। 'वह तोड़ती पत्थर'– यथार्थ चित्र है, जिसे हिन्दी की प्रगतिशील कविता स्वीकारा गया है।

'अनमिका' में दो लम्बी कविताएं हैं– सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा। सरोज स्मृति की रचना 1935 ई0 में हुई जब निराला की एक मात्र कन्या सरोज का असामयिक निधन हो गया था। राम की शक्ति पूजा की रचना 1936 ई0 में हुई।

## सरोज स्मृति : स्वच्छन्दतावाद की नयी यथार्थ भूमि

'सरोज स्मृति' एक करुण दस्तावेज है जो वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों है। जिस समय निराला की पत्नी मनोहरा देवी का निधन हुआ, सरोज लगभग दो वर्ष की थी और निराला ने एक साथ पिता–माता का दायित्व निभाया था। उनके लिए बेटी सरोज प्रिया मनोहरा देवी का स्मृति–चिन्ह भी थी। जिन विषम परिस्थितियों में निराला ने अपनी इकलौती बेटी को खोया था, वे नियति अथवा भाग्य से सम्बन्धित नहीं हैं। इनके पीछे निराला का साहित्य सेवा का धर्म, मूल्यों के लिए जीने की प्रबल आकांक्षा और इन सबके ऊपर– रचनाकार का स्वाभिमान है। पर एक शोषित समाज का अर्थ तन्त्र, प्रकाशकों को घोषणा की पूरी छूट देता है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है कि जब सरोज जीवन से संघर्ष कर रही थी, निराला के कई पत्रों के बावजूद प्रकाशकों में इन्सानियत नहीं जागी थी। अर्थात् सरोज का निधन जिन कारणों से हुआ, उन तक निराला पहुँच जाते हैं–शोषण पर आधारित एक जर्जर सामाजिक व्यवस्था। इसीलिए पुत्री के दर्द में डूबकर भी वे समाज की सड़ी–गली मान्यताओं पर हमला बोलते हैं। वे अपने रचना–धर्म को ही धिक्कारने लगते हैं, स्वयं को कोसते हैं–

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका
जाना तो अर्थोगमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर

हारता रहा मैं स्वार्थ समर...।'[22]

कविता के प्रारंभ में पश्चाताप और विषाद की सम्मिलित पंक्तियाँ हैं, फिर धीरे–धीरे कवि सरोज के बाल्यकाल के चित्र उरेहता है। ये दृश्य सहज स्वाभाविक हैं – भाई की मार खाना, उत्फुल्ल दृग, छल–छल रोना आदि। इसी के बीच सम्पादकों की अज्ञानता के कारण लौटी हुई रचनाओं को पाकर कवि की उदासीनता है, पर शीघ्र ही निराला सरोज की ओर लौट पड़ते हैं। कुण्डली मे दो–दो विवाहों की भविष्यवाणी को निराला ने झुठलाकर पोथी–पत्रा पण्डितों पर तीखा व्यंग्य किया है और अन्त में सरोज से कुन्डली फड़वाकर मानों एक गलत मान्यता का फातिहा पढ़ दिया हो। इसके बाद सरोज की युवावस्था का चित्र संयत स्वर में कवि उभारता है–

'आयी, लावण्य भार थर–थर
कॉपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव वीणा पर,
नैश स्वप्न ज्यो तू मन्द–मन्द
पूरी उषा जागरण छन्द
कॉपी भर निज आलोक भार
कॉपा वन, कॉपा दिक प्रसार...।'[23]

बेटी के विवाह के लिए वर की तलाश में अभावग्रस्त पर विद्रोही निराला अपनी जाति–विरादरी की दहेज लोभी प्रवृत्ति पर तीखे व्यंग्य करते हैं, उन्हें 'कान्यकुब्जकुलकुलांगार' कहते हैं। वह दहेज देकर पुत्री का विवाह करने से इन्कार कर देते हैं एक प्रगति शील विवाह रचाते हैं और समाज की जर्जर मान्यताओं को तिलांजलि देते हैं। निराला में ही वह साहस है, वे अपनी पुत्री के लिए लिख सकें– 'पुष्प सेज तेरी स्वयं रची!' कविता के आरम्भ में निराला ने बेटी सरोज को जीवित कविते कहकर सम्बोधित किया है, और काव्य के अंत में विषाद उन्हें घेर लेता है। वे स्वयं को भग्यहीन समझते हुए कहते हैं–

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।'[24]

डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'सरोज स्मृति' में निराला का आधा दुख सरोज की मृत्यु के कारण है, आधा उनके अपने संघर्षों के कारण।'[25]

सरोज–स्मृति एक ओर निराला की अपूरणीय वैयक्तिक क्षति है, पर साथ ही उन सामाजिक विषमताओं पर प्रहार भी जिसमें कि यशस्वी कवि अपनी बेटी को खो देता है। उनका करुणा भरा स्वर आक्रोश और व्यंग्य में बदल जाता है। यहाँ निराला अपनी बेटी के कारुणिक निधन के माध्यम से विषमता भरे समाज पर आक्रामक मुद्रा में प्रहार करते हैं। यह स्वच्छन्दतावादी काव्य का एक नयी यथार्थ भूमि पर पदार्पण करना है।

## राम की शक्ति पूजा : महाकाव्य का लघु विधान

'अनामिका' की दूसरी लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' है। इस कथा के बीज देवी भागवत में मिलते हैं। शक्ति पूजा का बंगाल में जो प्रचार है उसने भी कवि को प्रेरित किया। उन्होंने पौराणिक आख्यान को नया संदर्भ दिया है। सर्वप्रथम, उन्होंने राम को देवत्व से हटाकर मानवीय भूमि पर प्रस्तुत किया–

'स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर–फिर संशय,
रह–रह उठता जग जीवन में रावण जय–भय।'[26]

'राम की शक्ति पूजा' के आरम्भ में सूर्यास्त के उपरान्त खिन्न मन लौटती हुई राम की वानरी सेना का दृश्य है। इसमें राम का भी एक चित्र है–

'दृढ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर वक्ष पर विपुल।'[27]

उसके बाद राम की सभा का दृश्य है, जहाँ घने अन्धकार में केवल एक मशाल जल रही है। पीछे महासागर गरज रहा है। जलती मशाल आशा का प्रतीक है। वीरत्व के इस प्रसंग में निराला की चेतना सहसा सक्रिय हो उठती है। शंकाकुल राम के समक्ष जनक–वाटिका–प्रसंग की स्मृति आ जाती है, जहाँ राम ने प्रथम बार सीता को लताओं की ओट से देखा था। राम–सीता के इस मिलन को निराला ने

गतिशील चित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। स्मृति–चित्र के बाद ही राम के मन में एक संकल्प का उदय होता है। जब राम बार–बार स्वयं को असमर्थ मान रहे थे, तब–

'ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी–तनया–कुमारिका–छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतांतराल मिलन
नयनों का नयनो से गोपन, प्रिय सम्भाषण –
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन –
कॉपते हुये किसलय–झरते–पराग–समुदय
गाते खग, नव–जीवन–परिचय, तरु मलय–वलय
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, ज्ञात छवि प्रथम स्वीय –
जनकी नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय...।'[28]

यह सारा दृश्य गतिशील है–नेत्रों का मिलन, वार्तालाप, सीता का लज्जा–अनुराग–मिश्रित भाव। सहसा दृश्य में एक नये अर्थ का संचार–किसलयों का कॉपना, पक्षियों का संगीत और मलय वायु का तरु की परिक्रमा करना। एक दुनिया का बदल जाना। इसी कारण इस दृश्य का स्मरण आते ही राम एक बार पुनः धनुर्भंग की मुद्रा में आ जाते हैं और 'फिर विश्व विजय भावना हृदय में आयी भर।' यह एक प्रकार से राम का आत्म साक्षात्कार है, जिसमें कवि ने प्रिया सीता को प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया है। इस रोमानी प्रसंग के बाद हनुमान की शक्ति का चित्रण है। एक बार फिर राम का संशय है जो उनके अन्तर्द्वन्द्व से सम्बद्ध है। अन्त में जाम्बवान का प्रस्ताव है– शक्ति की पूजा का। राम उसे स्वीकार कर शक्ति के पूजन में तत्पर हो जाते हैं। इस प्रसंग के निर्माण में बंगाल की शक्ति परम्परा का प्रभाव है जिसे निराला ने निकट से देखा था। पूजन के बीच एक नाटकीय स्थिति का प्रवेश कराया गया है कि जब राम एक सौ आठवॉ कमल (अंतिम चरण का कमल) समर्पित करने को उद्यत होते हैं उसी समय राम की परीक्षा लेने के लिए शक्ति चुपके से वह कमल उठा लेती है। राम एक क्षण के लिए दुखी होते हैं

फिर सहसा निर्णय लेते हैं कि वे अपना कमल नेत्र शक्ति को अर्पित कर देंगे और ज्यों ही वे इसके लिए तत्पर होते हैं– शक्ति स्वयं उपस्थित होकर उन्हें आशीर्वाद देती हैं– 'होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन...।'

राम की शक्तिपूजा में पौराणिक आख्यान के साथ निराला का व्यक्तित्व भी अन्तर्निहित है और कहा जा सकता है कि राम में कई बार स्वयं निराला इस रूप में प्रवेश कर गये हैं कि दोनों को अलगा पाना कठिन है। कवि के जीवन संघर्ष राम में मौजूद हैं– 'अन्याय जिधर है–उधर शक्ति।' यह एक तरह से मूल्यों की पराजय का संकेत है। राम के कथन में आरम्भ में विषाद आता है, किन्तु अगले ही क्षण निराला की वही अपराजेय मुद्रा आती है–

> 'धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
> धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।
> जानकी! आह उद्धार प्रिया का हो न सका
> वह एक और मन रहा राम का जो न थका।
> जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय
> कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय!'[29]

निराला की यह रचना महाकाव्य की संभावना लिए हुए है। विराट चित्रों का निर्माण, उदात्त भाव प्रसंग, सार्थक कल्पना, संगत प्रतीक विधान– ये सब महाकाव्योचित काव्य विधान हैं। ओज, वीरता–सम्पन्न चित्रों के साथ कोमल प्रसंगों की योजना बताती है कि निराला का वैविध्य पूर्ण कौशल सभी भाव भूमियों का चित्रण समान अधिकार से कर सकता है। यदि हम आधुनिक महाकाव्य में वर्णनात्मकता का आग्रह नहीं करते तो अपने अपेक्षाकृत लघु कलेवर में राम की शक्ति पूजा में महाकाव्योचित गरिमा विद्यमान है, इसमें सन्देह नहीं।

## तुलसीदास : रचनाकार का सांस्कृतिक दायित्व

इस काव्य का प्रकाशन 1938 ई0 में हुआ। इस काव्य में निराला पौराणिक जगत से आगे बढ़कर इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यह उनके विकसित व्यक्तित्व का संकेत है। वे 'तुलसीदास' में खुली

इतिहास दृष्टि अपनाते हैं और जातीय आग्रहो से भी मुक्त होने की चेष्टा करते हैं। इसके अतिरिक्त इतिहास के साथ उनकी स्वच्छन्दतावादी कल्पना का भी योग यहॉ होता है, इसीलिए इतिहास का संपूर्ण द्वन्द्वात्मक चित्र उभरने नहीं पाता। रोमानी भावना को व्यक्त करने के लिए तुलसीदास और रत्नावली का प्रसंग लिया गया है। इस कविता में इतिहास और कल्पना, यथार्थ और स्वच्छन्दता का मिश्रण हुआ है। निराला ने तुलसीदास के माध्यम से अपने रचनाकार के सांस्कृतिक दायित्व पर विचार किया है और उसमें आधुनिक संदर्भों का प्रवेश कराया है। दूधनाथ सिंह ने 'तुलसीदास' कविता के सम्बन्ध में लिखा है– 'तुलसीदास' निराला के निजी सांस्कृतिक अन्धकार की चिन्ता से शुरू होती है। कविता के प्रारम्भ में तुलसी नहीं हैं। भारत के अधः पतन, उसके सांस्कृतिक अन्धकार, आर्य संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति की विजय से उत्पन्न खिन्नता का वर्णन–निराला स्वयं करते हैं, फिर भी वे अतीत के ध्वस्त वैभव और शौर्य का स्मरण करते हैं और पाते हैं कि किस तरह सम्पूर्ण जाति का मस्तिष्क, उसकी बौद्धिक ऊर्जा और उसका पराक्रम नष्ट हो गया है। इसी विनष्ट शौर्य का प्रतिफलन सांस्कृतिक अँधेरे में हुआ है। सम्पूर्ण भारत के बौद्धिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पतन का यह चित्र निराला शुरू से दसवें छन्द तक करते चले जाते हैं। भारत के नभ का सांस्कृतिक सूर्य शीतल हो गया है। मुसलमानों का सर्वत्र शासन है। पंजाब, फिर कोसल–बिहार, फिर धीरे–धीरे सम्पूर्ण देश उनके एकछत्र अधिकार में चला गया। एक झंझावात की तरह, बर्फीली ऑधी की तरह उत्तर से दक्षिण की ओर मुगलों का प्रसार बढता गया। बुंदेलखण्ड, कालिंजर, जोधपुर, मारवाड–सब उनके नीचे रौंद दिये गये। वीरता और शौर्य के प्रतीक राजपूत अब सिर्फ राजाओं के वेश में गुलाम हैं, या चाटुकारिता में लीन है।'[30]

निराला ने 'तुलसीदास' के माध्यम से भारत की पराजित संस्कृति के जो भयावह दृश्य प्रस्तुत किये हैं वे आधुनिक संदर्भों के बहुत करीब हैं। यहॉ निराला हिन्दू राष्ट्रवाद से आगे बढ़कर एक ओर सारे प्रश्न को विलास और आध्यात्मिक संघर्ष का रूप देते हैं, दूसरी ओर वे समाज के निम्न वर्ग को अपनी संवेदना देते हैं। यहाँ संघर्ष दो जातियों के बीच न होकर, दो जीवन–दृष्टियों के बीच है। ऐसे पराभूत क्षणों में तुलसीदास अपने कवि दायित्व को पहचानते हैं, शाखा के नव–विहंग की भाँति वे मुक्त आकाश

में उड़ते हैं और जीवन की नयी–नयी छवियाँ उनके समक्ष खुलने लगती हैं। तुलसी की चेतना ऊर्ध्वमुखी होती है और वे संकल्प लेते हैं–

'करना होगा यह तिमिर पार–
देखना सत्य का मिहिर द्वार–
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय।
लड़ना विरोध से द्वन्द्व समर
रह सत्य मार्ग पर स्थिर–निर्भर
जाना भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय।'

निराला 'तुलसीदास' काव्य में अपनी स्वच्छन्दतावादी चेतना का प्रकाशन कराने के लिए रत्नावली का प्रवेश कराते हैं। रत्नावली की ही प्रेरणा से तुलसी के व्यक्तित्व में सृजन का नया द्वार खुलता है। नारी के प्रति निराला का आदर भाव उनके संपूर्ण काव्य में देखा जा सकता है। निराला नारी को समाज में एक सम्मानित स्थान देना चाहते थे। रत्नावली एक क्षण के लिए स्मृति में आकर चली जाती है, पर तुलसी की चेतना का रूपान्तरण हो जाता है। वह प्रिया और प्रकृति में विलक्षण साम्य देखते हैं–

'वह श्री पावन, गृहिणी उदार
गिरि–वर उरोज, सरि पयोधार
कर–वन–तरु, फैला फल निहारती देती,
सब जीवों पर है एक दृष्टि
तृण–तृण पर उसकी सुधा–वृष्टि
प्रेयसी, बदलती वसन सृष्टि नव लेती!'

रत्नावली की प्रेरणा से तुलसीदास में एक प्रबल संस्कार जागता है, उनका काम भाव समाप्त हो जाता है। तुलसी श्री शारदा भारती के सचेतन रूप को देखते हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है– 'धीरे–धीरे वह बाहर आये। हृदय में वही परिचित मूर्ति थी। अपना क्षुद्र रूप छोड़कर वह विश्व का आश्रय बन गयी थी। सुख के जल पर तिरती हुई कमला के रूप में सामने आयी। कविता के प्रारम्भ में भारत

का जो सांस्कृतिक सूर्य अस्त हो गया था, वह पुनः उदित हुआ और रत्नावली ही 'प्राची दिगन्त उर में पुष्कल कवि रेखा' बन गयी।'[31]

रत्नावली तुलसी के लिए एक प्रेरणा बनती है। निराला ने अपने कवि जीवन में सृजन की प्रेरणा अपनी प्रिया से ग्रहण किया था। तुलसीदास के जीवन के एक छोटे से खण्ड का उपयोग करके निराला अपना आशय प्रकट करने में सफल हुए हैं।

'तुलसीदास' जैसा काव्य निराला की रचना–सामर्थ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह स्वच्छन्दतावादी चेतना को बौद्धिक स्तर पर लाने की चेष्टा में समस्त स्वच्छन्दतावादी चेतना को एक आयाम देता है।[32] इस रचना के माध्यम से निराला ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य केवल वैयक्तिक रागात्मक अनुभूतियों के प्रकाशन का नाम नहीं है, उसमें महान सांस्कृतिक आशय की रचनायें भी प्रस्तुत की जा सकती हैं। 'तुलसीदास' में कथा कहना कवि का मुख्य आशय नहीं है, इसीलिए उसकी प्रवृत्ति वर्णनात्मक नहीं है। यह निराला की सांस्कृतिक दृष्टि और स्वच्छन्दतावादी चेतना से निर्मित काव्य है। इस सांस्कृतिक दृष्टि में उनकी राष्ट्रीय भावना का भी योग है। इसे स्वच्छन्दतावादी काव्य की राष्ट्रीय चेतना के रूप में समझना चाहिए, जिसमें कवि अपने देश को भौगोलिक इकाइयों से बाहर ले जाकर वृहत्तर मानव–जीवन से जोड़ने का उपक्रम करता है।[33]

निराला के काव्य संग्रह 'अणिमा' का प्रकाशन 1943 ई0 में हुआ। इसमें कई प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं जिनसे कवि के बदलते तेवरों का पता चलता है, जबकि कुछ रचनाएँ पिछले चरण से जुडी हुई। इसमें प्रसाद, शुक्ल जी, रैदास, बुद्ध, विजय लक्ष्मी, महादेवी के अतिरिक्त स्वामी प्रेमानन्द के विषय में एक लम्बी कविता है। व्यक्तियों पर लिखी गयी कविताएँ प्रायः निराला की भावना का ही प्रकाशन हैं। इस संग्रह में कवि का काव्य–स्वर बदला दिखाई देता है, जैसे धीरे–धीरे कवि का मोह भंग हो रहा हो। यद्यपि यह स्वच्छन्दतावाद के विरोध में जाने वाले किसी मूर्तिभंजक का आक्रोश नहीं है, पर 'अणिमा' में अब उन्मुक्त प्रणय, सौन्दर्य के गीत तथा प्रकृति के परम रागात्मक ऋतु–चित्रों की संख्या कम हो गयी है। प्रकृति के दृश्यों और ऋतु–चित्रों का कम होते जाना निराला के जिस बदलाव की सूचना देता है, उसमें मनुष्य और उसका यथार्थ अधिक स्थान पाते हैं।

निराला के काव्य सग्रह 'बेला' (1943 ई0) और 'नये पत्ते' (1946 ई0) उसी बदले हुए काव्य–चरण से जुडे हैं। 'सांध्य काकली' निराला का अंतिम काव्य संकलन है जिसका प्रकाशन सन् 1969 ई0 में हुआ। इसमें लगभग सत्तर रचनाएँ संग्रहीत हैं।

निराला ने एक लम्बी और सार्थक काव्य–यात्रा तय की –1916 ई0 से 1961 ई0 तक । लगभग पैंतालीस वर्ष में उनका काव्य अनेक सामाजिक, वैयक्तिक स्थितियों से गुजरता रहा है और इन सबके बीच उनके काव्य के तेवर भी बदलते रहे। उनका काव्य हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की अनेक संभावनाओं का प्रमाण है।

# सुमित्रानन्दन पन्त

## प्रकृति के कवि

सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद के वृहद चतुष्टय कवियों में से एक हैं। अपनी समूची रचना सामर्थ्य के साथ वह एक तरफ छायावादी काव्यान्दोलन के प्रवर्तन में अपना सहयोग देते हैं, दूसरी तरफ अपनी रचना धर्मिता के वैशिष्ट्य के साथ कलात्मक एवं भावात्मक दोनों दृष्टियों से छायावाद की प्रतिष्ठा में अपना योगदान सुनिश्चित करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावादी भावधारा की रचनाओं पर लिखते हुये सबसे अधिक महत्व सुमित्रानन्दन पन्त को दिया है, जिसका मूल कारण यह है कि शुक्ल जी कविता में प्रकृति के आलम्बन रूप के पक्षधर थे और पंत के यहॉ किंचित प्रकृति का काव्यात्मक संश्लेष ही प्रधान रूप से रचनात्मक उत्कर्ष प्राप्त करता है।

पन्त ने एक लम्बी काव्य–यात्रा तय की है। उन्हें अनेक काव्यान्दोलनों को देखने का अवसर मिला। उनकी जन्मभूमि कौसानी अपने अछूते प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विख्यात है। अपनी आरंभिक कविताओं के आधार पर पन्त 'प्रकृति के कवि' कहलाये। सामने दिखायी पड़ने वाले हिमालय के बर्फ ढके पर्वत शिखर और आस–पास देवदारु, चीड़ की सघन वनखण्डी, मौका पाकर घर में घुस जाने वाले बादल और कडकती बिजली से निकट की मुलाकात। पन्त ने प्रकृति को अपने इतना समीप पाया कि वह उनके अवचेतन में प्रवेश कर गयी और उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी। पंत ने 'साठ वर्ष :

एक रेखांकन' नामक आत्मकथा में इसका उल्लेख करते हुए 'आत्मिका' नामक कविता की पंक्तियाँ उद्धृत की है–

'हिमगिरि प्रान्तर था दिग् हर्षित, प्रकृति क्रोड ऋतु शोभा कल्पित
गन्ध गुँथी रेशमी वायु थी, मुक्त नील गिरि पंखों पर स्थित।
आरोही हिमगिरि चरणों पर, रहा ग्राम वह मरकत मणि–कण
श्रद्धानत आरोहण के प्रति, मुग्ध प्रकृति का आत्म–समर्पण।'

पन्त के काव्य में प्रकृति ने आरम्भ से प्रमुख भूमिका का कार्य किया, पर बदलते जीवन सन्दर्भों में उसके स्वरूप में भी परिवर्तन होते गये हैं। शुरू–शुरू में पन्त प्रकृति के प्रति विस्मय विमुग्ध थे, पर धीरे–धीरे कवि के वैयक्तिक संवेदन उसमें सम्मिलित होते गये और एक रोमानी जगत निर्मित हुआ। पन्त की स्वच्छन्दतावादी चेतना की बनावट में प्रकृति के प्रति उनकी बदलती प्रतिक्रियाओं का भी प्रभाव रहा है। जो प्रकृति आरम्भ में पन्त के सम्मुख अपने स्वतन्त्र रूप में उपस्थित थी, उसे उन्होंने आगे चलकर प्रिया, सखी, संगिनि आदि के रूप में देखा और यह उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्रकाशन कहा जायेगा। प्रकृति और मानवीय भावनाओ के संवाद की प्रक्रिया हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति मानी जाती है और इस दिशा में पंत का प्रदेय महत्वपूर्ण है।

कुमायूँ की नैसर्गिक प्राकृतिक छवि के साथ–साथ पारिवारिक संस्कारों ने भी पन्त के व्यक्तित्व के निर्माण में अपना योगदान दिया है। बचपन में ही माँ को खोकर पन्त उस वात्सल्य से वंचित हो गये जिसे भारतीय सन्तान का रक्षा–कवच कहा जाता है। संभवतः इसीलिए उनके मन में नारी के प्रति एक पूजा–भाव विद्यमान रहा है और उन्होंने सदैव उसे आदर की दृष्टि से देखा है। इसी क्रम में उन धार्मिक संस्कारों का भी प्रभाव है, जो पिता के पास जुटने वाले साधु–सन्तों के माध्यम से उन्हें प्राप्त हुए।

उच्च शिक्षा के लिए अल्मोड़ा जाकर कवि को पहली बार नागरिक जीवन का परिचय हुआ और यहाँ उन्होंने अपना नाम गुसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानन्दन रख लिया। उनका साहित्यिक संस्कार बनाने में उनकी संस्कृत शिक्षा का भी योग रहा है। इलाहाबाद आने पर यहाँ के साहित्यिक वातावरण ने उनकी रचना को एक नयी प्रेरणा दी। प्रयाग के विद्यार्थी काल में पन्त अंग्रेजी साहित्य, विशेषतया रोमानी

कविता से प्रभावित हुये। उन्होंने लिखा है– 'उन्नीसवीं शती के कवियों में कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ तथा टेनिसन ने मुझे गम्भीर रूप से आकृष्ट किया। कीट्स के शिल्प–वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्ड्सवर्थ का प्रांजल प्रकृति–प्रेम, कॉलरिज की असाधारणता तथा टेनिसन के ध्वनि बोध ने मेरी कविता–सम्बन्धी रूप विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया। इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी काव्य में उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर ही भीतर प्रयत्न करता रहा। काव्य–संगीत में व्यंजनों की योजना से शक्ति तथा चित्रात्मकता और स्वरों की सहायता से सूक्ष्मता तथा मार्मिकता आती है। इसका ज्ञान मुझें अंग्रेजी कवियों के रूप–शिल्प के बोध से ही प्राप्त हुआ।'[34]

पन्त दस वर्षों तक कालाकॉकर में रहे, जहॉ उन्होंने अपना अध्ययन–क्रम जारी रखा। 'नौका विहार' जैसी श्रेष्ठ कविता की रचना पन्त ने कालाकॉकर में ही रहकर की।

पन्त ने अपनी जीवन–यात्रा में अनेक उतार–चढ़ाव देखे। उनकी रचनाओं पर भी इसकी छाया पडी है। दो–दो महायुद्ध उनके जीवन काल में आये, जिन्होंने विश्व समाज को मथ दिया और भीषण विनाश के दृश्य उपस्थित हुए। स्वयं भारतीय जीवन में, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के दौर में साम्राज्यवादी दमन चक्र चला और बाद में आजादी भी आयी। अनेक उतार–चढावों में पन्त का काव्य गुजरा है और उसमें वे अन्तर्विरोध देखे जा सकते हैं जिनके मूल में सामाजिक गतिविधियॉ सक्रिय रही हैं।

## लम्बी काव्य यात्रा

पन्त के काव्य ने एक लम्बी यात्रा की है और बीसवीं शताब्दी का लगभग तीन चौथाई भाग उनके सामने से गुजरा है। परिमाण में उनके काव्य का विपुल आकार है और 'लोकायतन' जैसे दीर्घ आकार वाले प्रबन्ध काव्य के अतिरिक्त उनके लगभग दो दर्जन काव्य–ग्रन्थ प्रकाश में आते हैं। पन्त की रचनाओं में बदलाव आये हैं और इसका कारण उनकी बदली हुई विचारधारा है। 'चिदम्बरा' में 'युगवाणी' (1937–38 ई0) से लेकर 'वाणी' (1957 ई0) तक की कविताएँ प्रस्तुत करते हुए उन्होंने 'चरण चिन्ह' नामक लम्बी भूमिका में अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया है। पन्त ने 'पल्लव', 'आधुनिक कवि' के अतिरिक्त 'छायावाद: एक पुनर्मूल्यांकन' नामक समीक्षा–ग्रन्थ में काव्य के सम्बन्ध में अपनी मान्यताओं को स्पष्ट करना चाहा है।

'पल्लव' में पन्त ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियो के विषय में नयी सौन्दर्यवादी घोषणाएँ की और रचना के बदलते जगत का विस्तृत विवेचन किया। 'पल्लव' की 'प्रवेश' नामक भूमिका को 'हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का घोषणा पत्र' कहा जाता है। यह भूमिका 1926 ई0 में लिखी गयी थी। 1941 ई0 में जब पन्त ने 'आधुनिक कवि' नाम से अपनी कविताओं का संचयन किया तो 'पर्यालोचन' नामक भूमिका में उन्होंने अपने बदलाव का औचित्य प्रमाणित किया। इस बीच उनके 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' काव्य निकल चुके थे, जो कवि की स्वच्छन्दवादिता को सामाजिक यथार्थ के निकट ले आते हैं। 1947 ई0 में 'स्वर्णकिरण' का प्रकाशन हुआ, जिसमें 1944–45 ई0 की कविताएँ संकलित हैं, तब उनकी दृष्टि में एक दूसरा बदलाव आया। उनकी युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या की रचनाओं को प्रगतिवादियों ने सराहा था। शिवदान सिंह चौहान ने उन्हें 'भविष्य का कवि' कहा था। बाद में पन्त अरविन्द दर्शन की ओर मुड जाते हैं। पन्त की रचनाओं में जो मोड़ तेजी से आये हैं और जिन्हें उन्होंने बार–बार छोडकर नये रास्ते अपनाये हैं, उसका एक कारण पन्त का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व भी है। आरम्भ से ही कल्पना उनके काव्य में सर्वाधिक सक्रिय रही है। इसी ने उनको बार–बार नयी दिशाओं की ओर मोड़कर, फिर स्वय अपने ही जगत में लौट आने के लिए बाध्य किया है।[35]

सुमित्रानन्दन पन्त की प्रथम प्रकाशित काव्यकृति 'उच्छ्वास' है जिसका प्रकाशन 1921 ई0 में हुआ था। पन्त की 1918–19 ई0 के बीच लिखी कविताओं का प्रकाशन 'वीणा' नाम से 1927 ई0 में हुआ। उसके पूर्व 1926 ई0 में 'पल्लव' का प्रकाशन हो चुका था। पन्त का 'ग्रन्थि' नामक काव्य 1920 ई0 में रचा गया था। पन्त की प्रमुख काव्य रचनायें इस प्रकार हैं– पल्लव (1926 ई0), वीणा (1927 ई0), गुंजन (1932 ई0), युगांत (1936 ई0), युगवाणी (1939 ई0), ग्राम्या (1940 ई0), स्वर्ण किरण (1947 ई0), स्वर्णधूलि (1947 ई0), युग पथ (1949 ई0), उत्तरा (1949 ई0), अतिमा (1955 ई0), वाणी (1958 ई0), कला और बूढ़ा चाँद (1959 ई0), लोकायतन (1964 ई0), सत्यकाम (1975 ई0)।

## वीणा–ग्रन्थि : रोमांटिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन

'वीणा' का प्रकाशन 1927 ई0 में हुआ। पन्त ने इस काव्य संग्रह की भूमिका 'विज्ञापन' में स्वीकार किया है कि इसकी अधिकांश रचनाएँ 1918–19 ई0 में लिखी गयी थीं। इस संग्रह में तिरसठ

गीत–रचनाएँ संग्रहीत हैं। एक प्रार्थना भाव इन कविताओं का मुख्य स्वर दिखाई देता है। इन गीतों मे बार–बार 'माँ' सम्बोधन का प्रयोग हुआ है। इसमें परिवार के आस्तिक संस्कारों के साथ प्रकृति की विराटता के सम्बन्ध में पंत की प्रतिक्रियाओं का योग है। प्रकृति की असंख्य छवियों के विषय में कवि की जिज्ञासा का उदय होता है, वह उसे रहस्यमय लगती है और वह उसमें किसी अदृश्य सत्ता के दर्शन करता है।

'वीणा' का प्रथम गीत 'प्रेयसि कविते' को सम्बोधित है, जिसमें कवि प्रार्थना करता है कि 'नव वसन्त ऋतु में आओ, नवकलियों को विकसाओ...।' यहाँ एक प्रकार का परम्परा पालन भी दिखाई देता है–सरस्वती वन्दना जैसा। किन्तु इसमें केवल धार्मिक पूजन भाव नहीं है, क्योंकि कवि 'शब्दों में जीवन लाओ' जैसी आधुनिक विनय भी करता है। पन्त के सरस्वती वन्दन में अपने आत्मविश्वास को पाने का प्रयत्न भी निहित है।[36] पन्त द्वारा माँ को सम्बोधित कविताएँ विशेष रूप से विचारणीय हैं, यहाँ कवि का समर्पण–भाव द्रष्टव्य है–

'विश्व प्रेम का रुचिकर राग
पर सेवा करने की आग
इसको सन्ध्या की लाली–सी
मॉ! न मन्द पड जाने दे,
द्वेष द्रोह को सान्ध्य जलद–सा
इसकी छटा बढ़ाने दे।'

उन कविताओं में जहाँ कवि की वैयक्तिक जीवनानुभूति के संकेत मिलते हैं वहॉ उसकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की झलक मिलती है। 'वीणा' की कविताओं ने स्वच्छन्दतावादी कविता की मुख्य प्रवृत्ति मिलती है–जड़ता में चेतनता का आरोप या जड़ पदार्थ को चेतन रूप में स्वीकारना। यहाँ छाया को सम्बोध–गीत के रूप में व्यक्त किया जाता है। पन्त की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति का अधिक सक्षम प्रकाशन इस कविता में हुआ है–

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि

तूने कैसे पहचाना ?

कहॉ, कहाँ हे बाल विहंगिनि

पाया तूने यह गाना ?'

प्रथम रश्मि के लिए तरुवासिनि, बहुदर्शिनि, नभचारिणि, अन्तर्यामिनि आदि जिन सम्बोधनों का उपयोग किया गया है, उससे केवल युवती होने का भाव ही नहीं होता वरन् कवि के रोमानी अन्दाज का भी पता चलता है। पन्त ने प्रिया के स्मृति– चित्रों को प्रथम रश्मि में समाहित कर दिया है और सम्पूर्ण प्रकृति–दृश्यों में प्रिया परोक्ष रूप से मौजूद है। यही वह बिन्दु है जो स्वच्छन्दतावादी काव्य के रोमानी तेवरों को श्रृंगार और प्रेम की अन्य कविताओं से अलग करता है। प्रकृति की पृष्ठभूमि में पन्त ने प्रथम रश्मि के अनेक चित्र बनाये हैं जिनसे सूर्योदय के पूर्व का सारा दृश्य उभरता है। प्रहरी से झूमते हुए जुगनू, स्नेहहीन तारों के दीपक, श्वासशून्य तरु के पात, श्रीहीन शशिबाला का मुख आदि रात्रि के डूबने के दृश्य हैं। ऐसी स्थिति में जब प्रथम रश्मि का आगमन होता है, तब जैसे एकाएक पट–परिवर्तन होता हो–

'निराकार तम मानों सहसा

ज्योति पुंज में हो साकार

बदल गया द्रुत जगत जाल में

घर का नाम रूप नाना।'

इस कविता में प्रथम रश्मि वस्तुपरक प्रकृति दृश्य मात्र नहीं है, बल्कि इसमें कवि की अपनी वैयक्तिक अनुभूतियाँ भी सम्मिलित हैं। पर उनकी तलाश गहरे जाकर ही हो सकती है। इसमें कवि प्रकृति और मानव–जीवन के सम्बन्ध का प्रश्न उठाता है।[37] प्रथम रश्मि का मानवीकरण और रोमानीकरण एक साथ देखा जा सकता है।

## ग्रन्थि

'ग्रन्थि' की रचना पन्त ने 1920 ई0 में की थी, परन्तु इसका प्रकाशन 1929 ई0 में हुआ। 'ग्रन्थि' पन्त की रोमान्टिक वृत्तियों को एक प्रेम कथा के माध्यम से प्रकाश में लाती है। इसमें कथांश स्वल्प है और कथानक में उतार–चढ़ाव नगण्य है। सन्ध्या के समय एक युवक की नाव ताल में डूब जाती है और वह उसकी गहराई में चेतनाशून्य हो जाता है। जब उसकी चेतना लौटती है तो वह पाता है कि उसका सिर एक युवती की गोद में है। यहीं से उनके प्रेम की शुरुआत होती है और प्रिय–प्रिया के सम्बन्धों का उल्लेख। 'एक प्रात' शीर्षक से कथा का दूसरा खण्ड आरम्भ होता है, जिसमें प्रियतमा को सखियों के बीच दिखाया गया है। इनकी आपसी बातचीत में प्रेम का रंग गाढा होता है और उसके कई कोण उभरते हैं। तीसरे खण्ड की शुरुआत से ही दृश्य बदला हुआ दिखाई देता है और प्रिया का ग्रन्थि बन्धन किसी अन्य से हो जाता है। प्रेमी का विषादी रूप इसमें देखा जा सकता है। अन्तिम खण्ड 'प्रेमवंचित' का है, जिसमें एक वियोगी का विषाद गहरा हुआ है। कुल मिलाकर यह एक दीर्घ विरह–गीत है। सम्पूर्ण विरह–काव्य किशोर भावुकता के धरातल से शुरू होकर उसी धरातल पर समाप्त होता है।[38] पन्त की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के आरम्भिक चरण में 'ग्रन्थि' का महत्व इसलिए भी है कि यहॉ कवि एक प्रेम कथा की ट्रेजिडी के माध्यम से अपनी रोमानी वृत्तियॉ प्रकाशित करना चाहता है।

## पल्लव : स्वच्छन्दतावाद का घोषणा पत्र

'पल्लव' का प्रकाशन 1926 ई0 में हुआ। यह पन्त का प्रौढ़ काव्य–चरण है। 'प्रवेश' नामक इसकी भूमिका को हिन्दी 'स्वच्छन्दतावादी काव्य का घोषणा–पत्र' कहा जाता है। इसमें पन्त ने काव्य की पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नये प्रतिमान स्थापित किये और रचना सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया। आरम्भ के इस कथन से कवि के आत्म विश्वास का पता चलता है–

'उस सुकुमार माँ के गर्भ से जो यह ओजस्विनी कन्या पैदा हुई है, आज सर्वत्र इसी की छटा है, इसकी वाणी में विद्युत है। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह 'पिय' को 'प्रिय' कहने लगी है। उसका किशोर कन्ठ फूट गया, अस्फुट अंग कट–छॅट गये, उनकी अस्पष्टता में एक स्पष्ट स्वरूप की झलक आ गई, वक्ष विशाल तथा उन्नत हो गया, पदों की चंचलता दृष्टि में आ गयी, वह विपुल विस्तृत हो गई,

हृदय में नवीन भावनायें, नवीन कल्पनायें उठने लगीं, ज्ञान की परिधि बढ गई, चारों दिशाओं से त्रिविध समीर के झोंके उसके चित्त को रोमांचित करने लगे, उसे चॉद में नवीन सौन्दर्य, मेघ में नवीन गर्जन सुनाई देने लगा। वह अज्ञात यौवन कलिका अब विकसित हो गई, प्रभात के सूर्य ने उसका उज्ज्वल मुख चूम उसे अजस्र आशीर्वाद दे दिया, चारों ओर से भौंरे आकर उसे नव सन्देश सुनाने लगे, उसके सौरभ को वायुमण्डल इधर–उधर वहन करने लग गया, विश्व जननी प्रकृति ने उसके भाल पर स्वयं अपने हाथ से केशर का सुहाग टीका लगा दिया, उसके प्राणों में अक्षय मधु भर दिया है।'[39]

स्वच्छन्दतावादी काव्य की नयी भूमि का स्वरूप 'पल्लव' की भूमिका में स्पष्ट कर दिया गया है। पंत ने अपनी रचनाओं में इसे प्रमाणित किया।

'पल्लव' शीर्षक की पहली कविता पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि कवि एक साथ कई स्तरों पर यात्रा करना चाहता है। यहाँ एक ओर प्रकृति का दृश्य है–नये–नये जन्मे कोपल विश्व पर विस्मित चितवन डालते हुये, हिलाते अधर, प्रवाल। यहाँ केवल वस्तुपरक प्रकृति–दृश्य नहीं है कि हमें प्रकृति की एक असंग छवि का ही साक्षात्कार हो। कवि स्वयं प्रकृति के इन दृश्यों मे अपनी संवेदनाओं के साथ सम्मिलित है। हृदय के प्रणय कुंज में लीन मूक कोकिल का मादक गान डाल को पुलकित कर देता है। कविता के अन्त में पल्लवों को 'कल्पना के विह्वल बाल' कहकर सम्बोधित किया गया है और उन्हें अनेक भवनाओं का प्रतीक माना गया है। समापन पंक्तियों में सदाशयता का भाव है–

'कल्पना के ये विह्वल बाल,
आँख के अश्रु, हृदय के हास,
वेदना के प्रदीप की ज्वाल,
प्रणय के ये मधुमास,
सुछवि के छाया वन की साँस
भर गई इनमें हाव, हुलास!
आज पल्लवित हई है डाल
झुकेगा कल कुंजित मधुमास!

मुग्ध होंगे मधु से मधु बाल,

सुरभि से अस्थिर मरुताकाश!'[40]

यहॉ कवि के व्यक्तित्व की कई दिशाओं के संकेत एक साथ देखे जा सकते हैं, जिनके माध्यम से हम पन्त की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का आरम्भिक, परन्तु प्रौढ स्वरूप पहचान सकते हैं। प्रकृति के प्रति उनकी रागात्मकता के साथ उनके निजी संवेदनों का संकेत भी यहाँ मिलता है। जिस कल्पना तत्व को पन्त के काव्य का मूलाधार माना जाता है, उसकी ओर भी कवि ने यहॉ इशारा किया है।

'पल्लव' की कविताओं में पंत ने अपने रोमानी तेवर को संकोच, दुराव के साथ व्यक्त किया है। पंत प्रायः अपनी प्रणयानुभूति को दबा जाते हैं, इस दृष्टि से उन्हें दमित मनोवेगों का स्वच्छन्दतावादी कवि कहा जा सकता है।[41] 'उच्छ्वास', 'सावन–भादों' और 'ऑसू' जैसी कविताओं में रोमानी अवसाद अथवा करुणा की समर्थ अभिव्यक्ति नहीं मिलती। कविताओं के बीच–बीच में वैयक्तिक प्रसंगों की झलक मिलती है। किन्तु प्रकृति और प्रिया का रूप इतने मिल–जुल जाते हैं कि उन्हें स्पष्ट करना कठिन हो जाता है। 'उच्छ्वास' की तुलना में 'आँसू' में पन्त में आत्मस्वीकृति का भाव अधिक साहस के साथ आता है। कवि अपनी रोमानी वृत्तियों को स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखता है। कवि विरह (करुणा) को वरदान के रूप बताता है–

'वियोगी होगा पहला कवि,

आह से उपजा होगा गान,

उमड कर आँखों से चुपचाप

बही होगी कविता अनजान!'[42]

'आँसू' में प्रकृति–दृश्यों के माध्यम से कवि ने अपने वैयक्तिक मनोभावों की अभिव्यक्ति की है। प्रकृति–दृश्यों के सहारे निजीपन की अभिव्यक्ति पन्त की स्वच्छन्दतावादी वृत्ति को अन्य कवियों से अलग करती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

'मेरा पावस ऋतु–सा जीवन

मानस–सा उमड़ा अपार मन,

गहरे, धुँधले, धुले साँवले

मेघों से मेरे भरे नयन।'[43]

इस कविता में पन्त का रोमानी अवसाद ज्यादा गहरा है। प्रकृति का सार्थक प्रयोग पन्त ने स्वच्छन्दतावादी वृत्तियों को प्रकाशित करने के लिए किया है।

प्रकृति से अपनी काव्य यात्रा का आरम्भ करते हुए पन्त ने उसे नयी दिशाओं में मोडा और उसका अनेक प्रकार से उपयोग किया। 'पल्लव' में 'छाया', 'मौन निमन्त्रण', 'बादल' कविताएँ प्रकृति–दृश्यों की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी काव्य की उपलब्धि हैं। प्रकृति को उसकी समग्रता में पा लेने और उसे एक सचित्र सम्भार के रूप में प्रस्तुत कर सकने में पन्त बेजोड़ हैं।

'पल्लव' की लम्बी कविता 'परिवर्तन' पन्त की बदलती मनोदशा बताती है। इसकी रचना 1924 ई0 में हुई थी। इसके पहले संसार प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका देख चुका था, देश में भी रजनीतिक हलचलें तेज हो चली थीं, ऐसे वातावरण में पन्त के लिए प्रकृति लोक की रोमानी दुनिय में ही सीमित रह पाना सम्भव नहीं था। 'परिवर्तन' यथार्थ के संस्पर्श की कविता है और हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की नयी भंगिमा की ओर इशारा करती है।

परिवर्तन अवश्यंभावी है, उसका रथचक्र नहीं रोका जा सकता। इसीलिए पन्त कविता की शुरुआत इतिहास की भूमिका से करते हैं–

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?

भूतियों का दिगंत छवि जाल,

ज्योति चुंबित जगती का भाल ?

राशि–राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार ?

स्वर्ग की सुषमा जब साभार

धरा पर करती थी अभिसार!

× × × × ×

अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,

कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात ?

दुरित, दुख–दैन्य न थे जब ज्ञात,

अपरिचित जरा मरण भ्रू पात!'[44]

परन्तु पन्त की इस कविता में इतिहास के द्वन्द्व की भूमिका नहीं उभरती और न इतिहास–बोध ही उजागर होता है, क्योंकि उनकी मूल दृष्टि स्वच्छन्दतावादी है। 'परिवर्तन' कविता का यह एहसास कि दुनिया बदलती है, स्वच्छन्दतावादी काव्य में अपनी एक अहमियत रखता है। यह इस बात का प्रमाण है कवि रोमानी दुनिया के बाहर भी झाँकने की कोशिश कर रहा था। पन्त ने स्वीकार किया है कि बदलाव का क्रम वैयक्तिक जीवन से लेकर विश्व इतिहास और संस्कृति के घटनाक्रमों तक चलता है। व्यक्तिगत जीवन की बात कवि की रोमानी दृष्टि से सम्बद्ध है और संस्कृति के बृहत्तर सन्दर्भों की बात यथार्थ से उसके संस्पर्श का सबूत है। मधुमास में सौरभ बिखर जाता है, पर शिशिर सूनी साँस भरता है– जीवन भार हो उठता है–

'शून्य साँसों का विधुर वियोग

छुड़ाता अधर मधुर संयोग,

मिलन के पल केवल दो–चार

विरह के कल्प अपार!

अरे, वे अपलक चार नयन

आठ आँसू रोते निरुपाय,

उठे–रोओं के आलिंगन

कसक उठते काँटों–से हाय!'[45]

कवि जिन परिवर्तनों की बात करता है, वे इतिहास के किसी क्रम–विधान से परिचालित न होकर, प्रायः आकस्मिक हैं। एक क्षण में ही किसी नियति चक्र से दृश्य बदल जाता है। कविता के अन्त में स्थिति का जो आध्यात्मीकरण किया गया है, उससे पन्त की दूसरी दिशा का पता चलता है। एक ओर वे रोमानी संवेदन के कवि हैं, दूसरी ओर यथार्थ को भी छूना चाहते हैं। उनके आरम्भिक संस्कार उन्हें

आध्यात्मिक भी बनाते हैं। परिवर्तन के क्रम में जो उत्थान–पतन के क्षण आते हैं, उनमें पन्त औचित्य खोजना चाहते हैं–

'बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ प्यार!'[46]

इस कविता में एक नये बोध की सूचना भी हमें मिलती है, जब कवि आदर्शवादी ढंग से यह मानते हुये कि परिवर्तन विधि के आधीन है, विनाश के भीतर से सृजन की कल्पना करता है।

'परिवर्तन' पन्त की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को प्रकृति और रोमांस के जगत से बाहर निकालकर वृहत्तर संदर्भों की ओर बढ़ने की सूचना देने वाली कविता है। यह स्वच्छन्दतावादी काव्य की यात्रा में एक नये मोड़ का संकेत है।

## गुंजन

'गुजन' का प्रकाशन 1932 ई0 में हुआ। इस संग्रह में पन्त की 1926 ई0 से 1931 ई0 के बीच लिखी गयी गीतात्मक कवितायें संग्रहीत हैं। 'गुंजन' तक आते–आते पन्त की निजी अनुभूतियाँ और निजी जीवन–प्रसंग उनकी कविताओं में अधिक स्पष्ट होने लगते हैं। 'गुंजन' कवि की गीतात्मक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला काव्य–संकलन है, जिसमें अपनी बातें कहने के लिए गुंजाइश रहती है। यहाँ कवि 'भावी पत्नी को' प्रिये, प्राणों की प्राण कहकर संबोधित करता है। वह उस छविमान मधुर मूर्ति के विषय में सुखद कल्पनाएँ करता है। प्रकृति के उपादान उसे सज्जित करने के काम में लाये गये हैं–

'अरुण अधरों का पल्लव–प्रात,
मोतियों सा हिलता हिम–हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात
बाल–विद्युत का पावस–लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल

अधखिले–अंगों का मधुमास,

तुम्हारी छबि का कर अनुमान।'

प्रिये, प्राणों की प्राण![47]

गुंजन के कई गीत कल्पित प्रिया को निवेदित हैं– 'उषा वातायन से आकर तुम्हें विलोकती है,' 'वे ऑखे नीलकमल सी हैं।' कवि कल्पना करता है कि मधुर मधुवात डोलने लगी। कलियों के अलसाये पलक खुलने लगे हैं और भौरे चंचल हो उठे हैं। प्रिया की मंजुल मूर्ति देखकर मानों मधु के वन में ज्वाल लग गयी हैं, किंशुक, अनार, कचनार जैसे लालसा की लौ से लाल हो उठे हैं। यहॉ एक ओर प्रकृति का ऋतुचक्री वसन्त है, दूसरी ओर प्रिय के सौन्दर्य में जन्मने वाला वह मधुमास है, जिसने कवि के जीवन को एक नया विन्यास दिया और प्रकृति पर जिसकी छाया देखी जा सकती है–

'प्रिये, कलि कुसुम–कुसुम में आज

मधुरिमा मधु, सुषमा सुविकास,

तुम्हारी रोम–रोम छवि व्याज

छा गया मधुवन में मधुमास!'

पन्त की रोमानी दुनिया का अधिकांश कल्पना द्वारा निर्मित होता है। उनकी समृद्ध कल्पना और प्रकृति को पास से देखी गयी अनुभूति ने उनके जीवन के प्रसंगों का मनोनुकूल प्रयोग करने में सहायता दी।

'गुंजन' संग्रह की अन्य प्रमुख कविताएं हैं– 'एक तारा', 'चाँदनी', 'नौका विहार'। इन कविताओं में प्रकृति–चित्र पूरी शक्ति से उभारा गया है। 'एक तारा' के आरंभ में सन्ध्या के सन्नाटे का चित्र है, फिर धीरे–धीरे उतरता ॲधियारा और उस पृष्ठभूमि पर उदित होता शुक्र नक्षत्र। यह उज्ज्वल, अमन्द, अकलुष, अनिन्द्य नक्षत्र 'मूर्तिमान ज्योतित विवेक' का प्रतीक है। 'चॉदनी' कविता में चाँदनी को एक सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसके कई चित्र कवि ने बनाये हैं–नभ के शतदल पर बैठी शारद–हासिनि, आभा की दुलहिन, लघु परिमल का घन आदि। 'नौका विहार' में अधिक गतिशील चित्र मिलते हैं। कविता के प्रारम्भ में गंगा का वर्णन है–

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल!

अपलक अनन्त नीरव भू–तल

सैकत–शैय्या पर दुग्ध–धवल

तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल

लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल!'[48]

फिर चाँदनी रात के प्रथम प्रहर में नौका विहार है। जल में परी सी तैरती शुक्र की झलमल छवि है। माँ के उर पर शिशु–से सोये धारा में एक द्वीप का और उस पर 'छाया की कोकी को विलोकते हुये वियोगी कोक' का मार्मिक दृश्य है। इसके बाद नौका के लौटने का वर्णन है। अन्तिम छन्द में दार्शनिक चिन्तन कवि की चेतना में प्रवेश करता है। कवि शाश्वतता के जिस दर्शन तक पहुँचता है वह मानो मध्यकालीन नश्वरवादी दृष्टि का अतिक्रमण करते हुए आधुनिककालीन जिजीविषा का प्रमाण हो, जहाँ जीवन और जगत का सहज स्वीकार ही इष्ट है। कविता समर्थ और सशक्त कल्पना के माध्यम से एक रोमानी लोक की सृष्टि करती हुई यथार्थवाद की ओर संचरण करती है। गंगा की धारा सा ही जीवन और जगत का विलास भी शाश्वत है, गति और संगम भी शास्वत है, यही मानो कविता का संदेश है।

प्रकृति के प्रति हृदय की मुक्ति का उद्घोष करने वाली यह कविता भौतिक जीवन की यांत्रिकता और ऊब से मानवीय चेतना को प्रकृति के स्वच्छन्द सौन्दर्य की ओर आकृष्ट करती है।

'गुंजन' संग्रह की कई कविताएं गीतात्मक होते हुए भी मानवीयता की विचारणा से सम्पन्न हैं। मानवीय सदाशयता 'गुंजन' का मुख्य स्वर है। कवि सुख–दुख में मैत्री चाहता है, सुन्दर विश्वासों से जीवन सुखमय बनता है–

'सुन्दर से नित सुन्दरतर,

सुन्दरता से सुन्दरतम,

सुन्दर जीवन का क्रम से,

सुन्दर सुन्दर जग–जीवन।'

पन्त के काव्य का पहला चरण 'वीणा' से 'गुंजन' तक जाता है, पर उसका समापन वास्तव में 'ज्योत्स्ना' नाटिका से होता है। यह पॉच अंकों की प्रतीकात्मक नाटिका है, जिसमें अमूर्त भावों को पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दुनिया की बिगड़ी हालत देखकर इन्दु अपनी पत्नी ज्योत्स्ना को पृथ्वी पर शासन के लिए भेजता है। ज्योत्स्ना स्वप्न, कल्पना, सुरभि, पवन की सहायता से पृथ्वी पर प्रेम सौन्दर्य का नया जीवन निर्मित करती है। इस नाटिका में पन्त का मुख्य उद्देश्य विश्व बन्धुत्व की भावना का उपदेश है।

## युगवाणी–युगान्त : स्वच्छन्दतावाद की नयी दिशा

पन्त के काव्य का दूसरा चरण 'युगांत' (1936 ई0), युगवाणी (1939 ई0) और ग्राम्या (1940 ई0) जैसे काव्य संकलनों के रूप में आता है। 'युगान्त' में पन्त ने स्वीकार किया है कि उनकी इन कविताओं में 'पल्लव' जैसी कोमलकान्त पदावली का आभाव है। कवि महसूस करता है कि पुरानी व्यवस्था सड–गल गयी है और उसके स्थान पर नये समाज का निर्माण होना चाहिए–

'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त्र–ध्वस्त! हे शुष्क–शीर्ण!
हिम–ताप–पीत, मधुवात–मीत,
तुम बीत–राग, जड़, पुराचीन!'

इसी प्रकार की भावनाएँ अन्यत्र भी दोहराई गयी हैं। 'युगान्त' पन्त की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि को इतना मोड़ अवश्य देती है कि यहाँ प्रकृति के स्थान पर मनुष्य के बारे में सोच–विचार किया गया है और दुनिया के बदलाव की बात की गयी है। प्रकृति को कल्पना लोक से बाहर निकाल कर अधिक कठोर भूमि में लाने में 'युगान्त' की कविताएँ प्रयत्नशील हैं।

'युगवाणी' में पन्त कल्पित सौन्दर्य लोक से बाहर निकलकर युग की सच्चाइयों से मुलाकात करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि छोटी–छोटी चीजों पर जाती है और उनके अनुभव क्षेत्र में बढ़ोत्तरी होती है। यहाँ से स्वच्छन्दतावादी कविता एक नई दिशा की ओर मुड़ने का संकेत करती है।

'युगान्त' और 'युगवाणी' में कवि जिस वैचारिक भूमि की तलाश करता है उसका वास्तविक प्रयोग 'ग्राम्या' में देखा जा सकता है। 'ग्राम्या' का प्रकाशन 1940 ई0 में हुआ। यहाँ काव्य का अनुभूति पक्ष अधिक सक्रिय दिखाई देता है। कवि वक्तव्यों के जगत से बाहर निकल कर ठोस जमीन पर आना चाहता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य को नया मोड़ देने वाली ग्राम–जीवन की ये कविताएँ ग्राम–सौन्दर्य को सराहती हैं, और उसकी दयनीयता को भी देखती हैं। भारतमाता को ग्रामवासिनी कहते हुये 'ग्राम्या' में जिन विशेषणों का उपयोग किया गया है, उससे ग्राम जीवन की दयनीयता का पता चलता है–

'भारत माता
ग्रामवासिनी
× × ×
मिट्टी की प्रतिमा
उदिसिनी!
× × ×
वह अपने घर में
प्रवासिनी
× × ×
नत मस्तक
तरू तल निवासिनी!
× × ×
राहु ग्रसित
शरदेनु हासिनी।
× × ×
ज्ञान गूढ

गीता प्रकाशिनी।'[49]

'ग्राम्या' में गॉव की जिन्दगी के जो चित्र पन्त ने उकेरे हैं, वे उनके द्वारा निकट से देखे गये थे। एक प्रकृति प्रेमी का यथार्थ के इन दृश्यों से जुड़ने और उन्हें एक नये मुहावरे में प्रस्तुत करने की कोशिश स्वच्छन्दतावादी काव्य के इतिहास में महत्वपूर्ण है।

पन्त के काव्य का तीसरा चरण तब आता है, जब वह रोमानी जगत छोड़कर क्रमशः जीवन यथार्थ की ओर बढ़ रहे थे। परन्तु सहसा उन्होंने आध्यात्मिक वाना धारण कर लिया और अरविन्द दर्शन में विशेष रुचि लेने लगे। 'स्वर्ण किरण' (1947 ई0), 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण', 'अतिमा' (1955 ई0), 'वाणी' (1957 ई0) आदि इस आध्यात्मिक काव्य चरण की रचनाएँ हैं। पन्त का यह नया आध्यात्मिक चरण उन्हीं के शब्दों में, 'नवीन चेतना काव्य' अथवा 'नव मानवतावाद का साक्षात्कार' है। इसमें अरविन्द की ऊर्ध्व मानस चेतना की बराबर चर्चा हुई है। कवि मानो जीवन यथार्थ से असंतुष्ट होकर किसी कल्पना लोक में खो जाना चाहता है, जहॉ सब कुछ आदर्श रूप होगा। लगता है जैसे यथार्थ जगत से उसे विरक्ति हो गयी है। 'स्वर्ण किरन' (1947 ई0) से 'वाणी' (1957 ई0) तक पन्त का काव्य इसी आध्यात्मिकता से ओत प्रोत है।

पन्त के काव्य का चौथा चरण तब आता है जब वह 'कला और बूढा चॉद' (1959 ई0) और 'लोकायतन' (1964 ई0) जैसे काव्य की रचना करते हैं। परन्तु पन्त के काव्य के विभिन्न चरण स्वच्छन्दतावाद की शाखा के रूप में नहीं माने जा सकते। फिर भी ये चरण उनके कवित्व को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं।

## महादेवी वर्मा

### रहस्यवाद की कवयित्री

हिन्दी के छायावादी कवियों में प्रसाद, निराला और पन्त के साथ महादेवी वर्मा का नाम लिया जाता है। छायावाद के अन्य कवियों से भिन्न उनकी एक विशिष्टता है। वह अंग्रेजी और बंगला के

रोमाण्टिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होती है। वह छायावाद के अन्तर्गत रहस्यवाद की कवयित्री मानी जाती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके विषय में लिखा है–

'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव केन्द्र है जिनसे अनेक प्रकार की भावनाएँ, छूट–छूट कर झलक मारती रहती हैं।'[50]

महादेवी वर्मा रहस्यवाद को छायावाद का ही दूसरा चरण मानती हैं। इसका प्रथम चरण प्रकृति का वैविध्य और उसके सौन्दर्य का मानवीकरण है। जब स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति–सौन्दर्य के प्रति समर्पित हुआ, तब रहस्यवाद की शुरुआत हुई। महादेवी वर्मा के शब्दों में– 'इसी से इस अनेकरुपता (प्रकृति की) के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवादी नाम दिया गया।'[51]

महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य से रहस्यवाद को जोड़कर उसे आधुनिक रूप दिया और मध्ययुगीन रहस्यवादी प्रवृत्तियों से उसके पृथक् व्यक्तित्व की घोषणा की। उन्होंने आधुनिक रहस्यवाद को धर्म निरपेक्ष प्रमाणित किया और आत्मसमर्पण को उसका प्रस्थान बिन्दु घोषित किया। अलौकिक तत्वों के होते हुए उसमें अनुभूति की तीव्रता को एक आवश्यक उपादान के रूप में स्वीकार किया।

महादेवी वर्मा का समस्त काव्य वेदनामय है। यह वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक जगत की वेदना है जो उसी के लिए सहज संवेद्य हो सकती है, जिसने उस अनुभूति क्षेत्र में प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दुख की भी संज्ञा देती हैं जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। 'रश्मि' की भूमिका में उन्होंने लिखा है– 'अपने दुखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुख के धूप–छाहीं डोरों से बुने हुये जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिये किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है

कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'[52] विश्व को एक सूत्र में बाँधने वाला दुःख लौकिक दुःख ही होता है जो भारतीय साहित्य की परम्परा में करुण रस का स्थायी भाव होता है। महादेवी ने इस दुख को नहीं अपनाया है। उन्होंने लिखा है–

'मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधनों में बाँध देता है और दूसरा वह, जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'[53]

महादेवी वर्मा के काव्य में पहले प्रकार का नहीं, दूसरे प्रकार का क्रन्दन ही अभिव्यक्त हुआ है। यह वेदना सामान्य लोक हृदय की वस्तु नहीं है। सम्भवतः इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसकी सच्चाई में ही सन्देह व्यक्त करते हुए लिखा है–

वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलन सुख को भी वे कुछ नहीं गिनती। वे कहती हैं कि– मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ। इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।'[54]

इसी आध्यात्मिक वेदना की दिशा में प्रारम्भ से अन्त तक महादेवी के काव्य की सूक्ष्म और विवृत भावानुभूतियों का विकास और प्रसार दिखाई पड़ता है। किन्तु महादेवी वर्मा की व्याख्या उनके दुःख का स्वरूप निश्चित नहीं कर पाती। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है–

'यह वेदना अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय–निवेदन के रूप में हुई है। छायावादी कवियों ने प्रेम–निवेदन को रहस्य के अनेक पर्तों मे लपेटकर उसे दिव्य, पवित्र, अलौकिक जाने क्या–क्या नाम दिया है। इस तरह वे परम्परागत नैतिकता के दबाव में लिख रहे थे। इस दबाव और मुक्ति के आग्रह के बीच जो तनाव आया उससे छायावाद की प्रेम–कविता का जन्म हुआ। स्त्री होने के नाते महादेवी में यह तनाव अधिक घने रूप में उभरा। स्त्री और पुरुष की प्रेम जन्य वेदना में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता है। पर परम्परागत संस्कारों के कारण स्त्री की अनुभूति में तीव्रता अधिक होती है। कहना न होगा कि छायावादी

कवियों में महादेवी जैसी वेदना–जनित विह्वलता किसी अन्य में नहीं है। इसे उन्होंने प्रकृति के नाना उपकरणों द्वारा अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्मनिवेदन के रूप में अभिव्यक्त किया है।'[55]

महादेवी वर्मा के प्रमुख काव्य संग्रह इस प्रकार है– नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा।

## नीहार : भावुकता का प्राधान्य

'नीहार' महादेवी वर्मा की प्रथम काव्य–कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1930 ई0 में हुआ था। इसकी भूमिका अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखी थी। इसमें महादेवी की 1923 ई0 से लेकर 1929 ई0 तक के बीच लिखी कुल 47 कविताएँ संग्रहीत हैं। यद्यपि ये कवयित्री की प्रारंभिक रचनाएँ हैं पर इनमें काव्य की वह उत्कृष्टता और व्यक्तित्व की वह छाप स्पष्ट दिखाई पडती है, जो उनकी परवर्ती रचनाओं में विशेष रूप से परिस्फुट और विकसित रूप में सामने आयी।

महादेवी प्रेम की कवयित्री हैं। 'नीहार' में प्रेम का जीवन पर व्यापक प्रभाव दिखलाया गया है। प्रिय से परिचय होने के पूर्व उनकी भावना प्रकृति के रूप रंगों में लीन होकर उसके स्पन्दनों का अनुभव करती थी, परन्तु प्रिय के संपर्क में आने के बाद तो मन ऐसा भावलोक पा गया, जिसने समस्त प्रकृति को अपने ही रंग में रंग दिया। प्रिया के साथ उसका मिलन केवल स्वप्न नहीं है–

> 'कैसे कहती हो सपना है
> अलि उस मूक मिलन की बात,
> भरे हुए अब तक फूलों में
> मेरे आँसू उनके हास।'

भावना का सहज एवं स्वतः स्फूर्त उच्छलन 'नीहार' के गीतों की मुख्य विशेषता है। 'नीहार' तक महादेवी वर्मा न तो व्यक्तिगत अनुभूतियों से तटस्थ हो पायी थीं और न अभिव्यंजना में निर्वैयक्तिक। इन गीतों में कच्चापन चाहे जितना हो, अनुभूति का ताप कलात्मक सौष्ठव की कमी का अनुभव नहीं होने देता। 'नीहार' में महादेवी वर्मा ने एक सीमा तक अपने आपको उद्घाटित किया है। इसके गीतों– जैसी हार्दिकता तथा मार्मिकता परवर्ती संग्रहों में कम ही देखने को मिलती है। महादेवी ने भी स्वीकार किया है

कि 'नीहार' का काव्य उस स्थिति का है, जब भावों के पारावार से गिरा मौन हो जाती है।[56] एक दूरागत झंकार यद्यपि इसमें भी सुनायी पड़ती है और असीम–ससीम का खेल भी चलता है–

'जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।'[57]

परन्तु वैयक्तिक संदर्भों के संस्पर्श 'नीहार' के गीतों को सजीवता प्रदान करते हैं। महादेवी प्रेम की पीड़ा को सिर माथे चढ़ाकर टूटे तारों से ही निरन्तर करुण विहाग छेडती रहती हैं–

'पहली सी झंकार नहीं है,
और नहीं वह मादक राग,
अतिथि किन्तु सुनते जाओ ?
टूटे तारों का करुण विहाग।'[58]

वह करुण विहाग इस आशा से छेड़ती हैं कि कभी तो प्रिय से मिलन होगा–

'नहीं अब गाया जाता देव,
थकी उँगली है ढीले तार,
विश्व वीणा में अपनी आज,
मिला लो यह अस्फुट झंकार।'[59]

इस प्रकार 'नीहार' के गीतों में भावुकता का प्राधान्य है।

## रश्मि : चिन्तन की नयी दिशा

'रश्मि' महादेवी वर्मा का दूसरा काव्य संकलन है। इसका प्रकाशन 1932 ई0 में हुआ था। इसमें कुल 35 कवितायें संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओं में 'नीहार' की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ता है। इस संग्रह की कविताओं में महादेवी के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य निखर कर सामने आया है। इनमें कवयित्री ने अपना निजी दार्शनिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व निर्मित कर लिया है।

महादेवी वर्मा ने अपने दुःखवादी दर्शन के सम्बन्ध में अपनी कई कविताओं में स्पष्ट किया है। ऐसी कविताएँ दो प्रकार की हैं– दार्शनिक चिन्तन प्रधान और आध्यात्मिक भूमि पर आधारित। 'दुख', 'रहस्य', 'विस्मय' आदि कवितायें दार्शनिक हैं, जिनमें दुख का महत्व, सृष्टि का विकास और ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध की काव्यात्मक व्याख्या की गयी है। सृष्टि के विकास का सिद्धान्त महादेवी ने सांख्य दर्शन से लिया है। ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध उन्होंने शंकर के अद्वैत के आधार पर निरुपित किया है। आध्यात्मिक अनुभूति युक्त कविताओं में उन्होंने ब्रह्म के लिये जीव की व्याकुलता और विरह–वेदना की स्वानुभूत भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। 'स्मृति', 'आह्वान', 'वे दिन', 'मेरा पता', 'पहिचान', 'निभृत', 'मिलन' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं, जिनमें महादेवी की वेदनामूलक रहस्यवादी अभिव्यक्ति हुई है।

रहस्यात्मक अनुभूतियों के अतिरिक्त इस संग्रह की अनेक कविताओं में छायावाद की सामान्य प्रवृत्ति–विराट् विश्व के प्रति जिज्ञासा मूलक दृष्टि वर्तमान है। विश्व–जीवन, उसके मूल स्रोत, विकास और नाश, जगत् का सौन्दर्य और वैचित्र्य–सभी उनके कौतूहल पूर्ण प्रश्नों के विषय हैं। इस जिज्ञासा–वृत्ति के फलस्वरूप वह अपने और अपने अज्ञात प्रिय को तात्विक रूप में पहचानने में सफल होती हैं। इस तरह उनकी विरह–वेदना ही उनकी व्यक्ति सत्ता का समष्टि सत्ता से तादात्म्य स्थापित करती है। 'रश्मि' का प्रकाश उसी ज्वलन्त वेदना का प्रकाश है।

महादेवी 'नीहार' की अपेक्षा 'रश्मि' को अपने अधिक निकट बतलाती हैं।[60] सच तो यह है कि 'नीहार' के रचनाकाल तक आत्मगोपनता की कला नहीं सीख सकी थीं। उनकी सहज संवेदना पर संकोच तब तक हावी नहीं हुआ था। वैयक्तिक संदर्भों से जुड़े रहने के कारण 'नीहार' के गीतों की हार्दिकता और आत्मीयता आगे चलकर स्वयं उन्हीं को अटपटी लगती है, क्योंकि इस बीच वे अपने प्रकृत भावावेगों को दबाने या रुपान्तरित करने की अभ्यस्त हो चली हैं। महादेवी तीव्र संवेदनों की कवयित्री हैं, उनकी प्रकृत भूमि अनुभूति है, चिंतन नहीं। जब वे 'रश्मि' काल में भावलोक को छोड़कर चिंतन के लोक में प्रवेश करती हैं तो स्वयं यह प्रश्नकरती हैं– 'अश्रुमयि रंगिनि! कहाँ तू आ गयी परदेशिनी री!' बाह्य जगत से तटस्थ होकर वे पूर्णतः आत्मस्थ तथा अन्तर्मुख होने की चेष्टा करती हैं। महादेवी 'नीहार' की अपेक्षा 'रश्मि' को इसलिए अपने अधिक निकट मानती हैं, क्योंकि वह चिंतन–प्रधान काव्य है। वे चिंतन

के आत्म–निरपेक्ष, सार्वभौमिक और निर्वैयक्तिक घेरे के भीतर आश्वस्ति तथा सुरक्षा का अनुभव करती हैं। प्रेम और वेदना तो आद्यन्त उनके काव्य–विषय हैं, परन्तु वे अपने प्रेम को निर्वैयक्तिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुये वेदना का अभिव्यक्तिकरण कर देती हैं। मानवीय राग की कवयित्री वैराग्य की मुद्रा धारण कर लेती है। उनकी संवेदनशीलता दार्शनिक आधार लेने को बाध्य है। सुमित्रानंदन पन्त भी मानते हैं कि नारी–हृदय का सहज संकोच और तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि में नारी–जीवन की सीमा ने ही महादेवी को मध्ययुगीन रहस्यवाद की ओर उन्मुख किया।[61] वे 'रश्मि' में काव्य के भीतर दार्शनिक प्रश्नों को छेड़ने का उपक्रम करती हैं। वे ब्रह्म और जीव, जीवन और मृत्यु, मुक्ति और अमरता आदि पर अस्फुट विचार प्रस्तुत करती हैं। समुचित अभिव्यंजना–शक्ति के अभाव में 'रश्मि' की चिंतन प्रधान अनुभूति सब कहीं काव्य–रूप में नहीं ढल सकी है। फिर भी कवयित्री इस तथ्य से परिचित हो चली है कि जिस निर्वैयक्तिक सार्वभौमिक और आध्यात्मिक अनुभूति की व्यंजना उन्हें अभीष्ट है, वह प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त हो सकती है। प्रकृति विषयक कविताओं की इसमें कमी है। यहाँ प्रकृति का प्रयोग अधिकतर चिंतन और विचारों को मूर्त रूप देने के लिए हुआ है।

## नीरजा : सामंजस्यपूर्ण भाव चेतना

'नीरजा' महादेवी का तीसरा काव्य–संग्रह है। इसका प्रकाशन 1934 ई0 में हुआ था। इसमें कुल 58 कविताएँ संकलित हैं। जिस तरह इस संग्रह में उनकी भावनाएँ अधिक संयमित, आत्मनिष्ठ और अभिव्यंजना अधिक भावावेश युक्त हो गयी है, उसी तरह इसमें कविताओं का काव्य रूप भी गीति काव्य का है, क्योंकि गीतिकाव्य में ही संयमित भावातिरेक की अभिव्यक्ति कम से कम शब्दों में और आन्तरिक भाव लय के अनुरूप शेष छान्दसिक लय में हो सकती है।

'नीरजा' में महादेवी की वह सामंजस्यपूर्ण भाव–चेतना दृष्टिगत होती है, जिसमें दुःख और सुख मिलकर एक हो गये हैं। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है– 'इसमें वेदना काम्य होने से आगे बढ़कर आस्था बन जाती है। आस्था काव्य के रूप में ढलकर सान्द्र हो उठती है और 'नीरजा' का काव्य रूप अपने स्थापत्य में अप्रतिम बन जाता है।'[62]

इस संग्रह में प्रकृति–चित्रण की अधिकता है, किन्तु प्रकृति को महादेवी ने आलम्बन–रूप में नहीं ग्रहण किया है। कहीं वह उद्दीपन रूप में ग्रहीत है, कहीं प्रतीक और संकेत के रूप में और कहीं केवल आलंकारिक अप्रस्तुत के रूप में। प्रकृति के विभिन्न रूपों में कभी कवयित्री को अपने आध्यात्मिक प्रियतम का रूप दिखाई पड़ता है–

'तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाई रजनी विषाद मय।'

कभी प्रकृति उसे अपने ही समान उसी प्रियतम से मिलने के लिए आकुल दीख पड़ती है जिसके लिए वह स्वयं तड़प रही है। ऐसे गीतों में प्रकृति अभिसारिका के रूप में दिखाई पड़ती है। इस कारण प्रकृति उसकी सहयोगिनी और सहायिका बनकर प्रिय के आगमन का संकेत करती है–

'मुसकाता संकेत भरा नभ,
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?'

कुछ ऐसे गीत हैं जिनमें प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण हुआ है। परन्तु इनमें भी प्रकृति को नारी रूप में ही चित्रित किया गया है। 'धीरे–धीरे उतर क्षितिज से', ;विरह का जलजात जीवन', 'वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ', 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल', 'मुखर प्रिय हौले बोल', 'टूट गया वह दर्पण निर्मम', 'ओ विभावरी' आदि अनेक श्रेष्ठ गीत इस संग्रह में संग्रहीत हैं।

'नीरजा' महादेवी की प्रौढ़ कृति है। 'रश्मि' में उन्होंने चिंतन की दिशा तो पकड़ ली थी, परन्तु उनके पंख सुकुमार थे और उड़ानें लम्बी। 'नीरजा' तक आते–आते उनकी अभिव्यंजना शक्ति इतनी सक्षम हो चली थी कि एक सीमा तक चिंतन का भार उठा सके। उन्होंने अपने लिए एक सीमित भाव–क्षेत्र चुन लिया। इसमें संदेह नहीं कि इस भाव–क्षेत्र पर उनका अच्छा अधिकार है। उनकी कल्पना एक निश्चित सीमा के भीतर उड़ानें भरती है। उन्हें अपने आकाश की लम्बाई–चौड़ाई का भी ज्ञान है और अपने डैनो की शक्ति का भी। 'नीरजा' तक पहुँचकर महादेवी तय कर लेती हैं कि उन्हें क्या कहना है, और क्या नहीं। और जितना कुछ कहना उन्होंने तय किया, उसे कहने की योग्यता भी धीरे–धीरे संचित कर ली। अनुभूति पर चिंतन को तरजीह देकर उन्होंने अपनी दार्शनिकता के अनुरूप संवेदनशीलता की सीमा

निर्धारित कर दी। यही कारण है कि तीव्र संवेदनों की कवयित्री होकर भी महादेवी अपने काव्य में बिम्बों का कम और प्रतीकों का अधिक प्रयोग करती हैं। इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि 'महादेवी वर्मा का चिंतन जिस अनुपात में गहराता है, उसी अनुपात में उनके काव्य में प्रतीकों का अधिक प्रयोग होने लगता है।'[63]

महादेवी के काव्य-संग्रहों में 'नीरजा' का कई दृष्टियों से विशेष महत्व है। 'नीरजा' के गीत वैयक्तिकता के हल्के संस्पर्शों से प्राणवान हो उठे हैं। महादेवी जिस चिंतनमयी अनुभूति या अनुभूतिमय चिंतन को अपने काव्य का विषय बनाती हैं, 'नीरजा' के कई गीतों में उसकी सफल अभिव्यंजना हुई है। वे जिस विशिष्ट अनुभूति को ऑकना चाहती थीं, उसके अनुरूप अभिव्यंजना पद्धति का उन्होंने इस बीच विकास कर लिया। अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की सहज मैत्री से उद्भूत 'नीरजा' की कुछ कवितायें टकसाल के निकले सिक्कों के समान चमकदार और निर्दोष हैं। अनुभूति और चिंतन एक दूसरे में घुल-मिल कर शब्द-रूप पा गये हैं। अपनी विशिष्ट अनुभूति को व्यंजित करने के लिए उन्हें जिस प्रतीक शैली की तलाश थी, वह 'नीरजा' के रचना-काल में मिल गयी। इसके अतिरिक्त केवल दुख के पक्ष को महत्व देने के कारण उनके जीवन-दर्शन में जो एकांगिता तथा एकपक्षता आ गयी थी, 'नीरजा' में उसका परिहार तो नहीं हो सका, परन्तु महादेवी ने उसका अनुभव अवश्य किया। उन्होंने लिखा है- 'नीरजा और सांध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख के सामंजस्य का अनुभव करने लगा।'[64]

'नीरजा' में भी प्रमुखता तो वेदना के स्वर को ही मिली है, यहाँ विशेषता यह है कि महादेवी के द्वारा वरण किये गये दुःख में प्रिय के मिलन की अनुभूति भी शामिल है। इस संग्रह के गीतों में प्रकृति-रूप-वर्णन में भी उल्लास और मादकता है-

'सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,<br>
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर।<br>
मचल-मचल आते पल फिर-फिर,<br>
सुन प्रिय की पदचाप हो गयी,

पुलकित यह अवनी,

सिहरती आ वसन्त रजनी।'[65]

## सांध्यगीत : वैराग्य भावना

'सांध्यगीत' महादेवी वर्मा का चौथा काव्य-संग्रह है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1936 ई0 में हुआ था। इसमें 45 गीतों का संकलन किया गया है। इन गीतों में ऐसी वैराग्य भावना मिलती है जो साधक को सुख-दुख दोनों में समरस बनाती है।

'नीरजा' की भाँति 'सांध्यगीत' में भी महादेवी के काव्य प्रतीक बादल और दीपक हैं। दीपक उनके काव्य का केन्द्रीय प्रतीक है। वह अपने को ऐसा दीपक मानती हैं, जिसे उसके परोक्ष प्रियतम ने जीवन की ज्वाला देकर जलाया था और तब से वह जगत के अंधकार में अकेला जल रहा है। परन्तु मृत्यु की झंझा उसे बुझा नहीं पायेगी, क्योंकि यह आवागमन के रूप में बार-बार जलेगा, बुझेगा। निष्काम और अचंचल दीपक चिरसाधना में लीन है। साधना की पूर्णता व्यक्तित्व के विसर्जन में है, स्वेच्छा से दुख का आलिंगन कर अपने आप को गलाते हुये चतुर्दिक् आलोक का पुंज बिखेरना ही कवयित्री के जीवन की चरम सिद्धि है। इस प्रतीक की परवर्ती काव्य-संग्रहों में केवल आवृत्ति ही नहीं होती, वरन् महादेवी की अन्तिम कृति का नामकरण भी इसी आधार पर हुआ है।

'सांध्य-गीत' के हल्के प्रकाश के बीच रंगीन छाया-चित्रों का नियोजन किया गया है। इस संग्रह तक आते-आते कवयित्री वास्तविक जगत् से रहा-सहा सम्बन्ध भी समाप्त कर पूर्णतः आत्मस्थ और अन्तर्मुख हो जाती है। प्रेम का निर्वैयक्तीकरण तथा वेदना की अभिव्यक्ति 'सान्ध्यगीत' की रचनाओं को सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक भूमिका प्रदान करते हैं। कवयित्री अपना परिचय देते हुये कहती हैं-

'मैं नीड़ भरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा

क्रन्दन में आहत विश्व हँसा

नयनों में दीपक से जलते

पलकों में निर्झरिणी मचली!'

× × × × ×

'विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!'

यह उनका अपना संसार है– आँखों में दीप जलने का संसार, क्रन्दन में दुखी विश्व के हंसने का जगत्। यही उनका साध्य है और यही साधन भी है। इसे दूसरे शब्दों में दुख की साधना भी का जा सकता है।

'रश्मि' में तो महादेवी अधिकतर असीम के प्रति जिज्ञासा या दार्शनिक प्रश्नों के प्रति बौद्धिक और कुतूहलजन्य प्रतिक्रियायें व्यक्त करके रह जाती हैं, परन्तु 'सांध्यगीत' में उनकी प्रतिक्रिया कोरी बौद्धिक तथा विस्मयजन्य न रहकर गम्भीर तथा भावात्मक बन गयी है। 'नीरजा' की तुलना में 'सांध्यगीत' की रचनाओं में आत्मनिरपेक्षता और भावों का ठंडापन अधिक है। डॉ0 नगेन्द्र के मतानुसार भी 'सांध्यगीत' में जिस अनुपात में पीड़ा का अभिव्यक्तीकरण हुआ है, उसी अनुपात में उसकी अनुभूति की तीव्रता भी कम हुई है।[66] अनुभूति का ताप जिस मात्रा में घटा है, उसी मात्रा में चिंतन की अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव में, 'सांध्यगीत' महादेवी के अन्तर्मुखी चिन्तन से प्रसूत काव्य ग्रन्थ है जिसमें भावों की तीव्रता कम और दार्शनिकता अधिक है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'सांध्यगीत' की दार्शनिकता की सराहना करते हुये उसकी सीमाओं को भी रेखांकित किया है। वे इन गीतों की रहस्य–भावना से तो संतुष्ट प्रतीत होते हैं, परन्तु अभिव्यक्ति पक्ष से नहीं। वे 'सांध्यगीत' की अनुपयुक्त रूप–योजना के दो कारण बतलाते हैं– काव्य शक्ति की अपेक्षया कमी और सीमित कल्पना–शक्ति।[67] काव्य में अनुभूति–अभिव्यक्ति की आन्तरिक संगति अनिवार्य है। यदि किसी रचना का अभिव्यक्ति पक्ष दुर्बल प्रतीत होता है, तो उसकी दार्शनिक एकता की प्रशंसा का

कोई अर्थ नहीं है। सच तो यह है कि महादेवी में न तो कल्पना–शक्ति का अभाव है और न संवेदनों की विरलता या शब्द भण्डार की कमी ही।

व्यक्तिगत दुःख–सुख को काव्य का एक मात्र विषय मानकर भी महादेवी को सामाजिक कारणों से अपने काव्य के लिए एक नयी दिशा ढूढ़ने के लिए बाध्य होना पड़ा था। चिंतन का व्यक्ति–निरपेक्ष जगत उन्हें अपने लिए अधिक सुरक्षित जान पड़ा। अपनी अनुभूति को जीवन–संदर्भों से अलग करते हुये उन्होंने उसे सार्वभौमिक और निर्वैयक्तिक रूप देकर चिंतन के अनुरूप बनाया और इस प्रकार अपने लिए एक रहस्यवादी भूमिका निर्मित की।

एक निर्धारित सीमा के भीतर काव्य–कला का पर्याप्त प्रस्फुटन महादेवी की काव्य–प्रतिभा का द्योतक है। 'सांध्यगीत' में उनकी इसी सीमा के सामर्थ्य के दर्शन होते हैं। इन गीतों में भावोच्छ्वास और विह्वलता उतनी ही है जितनी एकाग्रता और तन्मयता। उनके चिंतन को जहॉं–जहॉं काव्य–रूप मिल सका, वहॉं रचना अच्छी बन पड़ी है–

'प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण–क्षण नवीन सुहागिनी मैं।'

## दीपशिखा : ज्योति का लघु प्रहरी

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा का पॉंचवा काव्य–संग्रह है। इसका प्रथम संस्करण सन् 1942 ई0 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल 51 गीत संकलित हैं। पूर्ववर्ती काव्य–संग्रह में यदि महादेवी साधनावस्था में थीं तो 'दीपशिखा' में वे सिद्धावस्था में पहुॅंच गयी हैं, जिसमें साधिका की आत्मा की दीपशिखा आराध्य की ज्योति में विलीन हो गयी है। इस संग्रह में 14 गीत तो पूर्णतः दीपक के रूपक पर आधारित हैं और अन्य गीतों में बीच–बीच में दीपक का प्रसंग बार–बार आया है। उन्होंने लिखा है– 'आलोक मुझे प्रिय, पर दिन से अधिक रात का – दिन में तो अन्धकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परन्तु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है। इस नाते दीपशिखा मेरे अधिक निकट है।' 'यह मन्दिर का दीप अकेला' नामक कविता में वे लिखती हैं–

'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह जायेगा प्रतिफल
रेखाओं में भर आभा–जल
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक जलने दो!'

मध्यकाल में दीपशिखा को सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता था, छायावाद में अंधकार से जूझते हुये व्यक्तित्व का प्रतीक बन गयी। महादेवी अपनी अडिग आस्था के साथ कहती हैं–

'पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला,
अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे,
दुख व्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देगे अंक संसृति,
से तिमिर में स्वर्ण बेला।'

महादेवी ने आरंभ से ही अपने काव्य के चारों ओर एक सीमा रेखा खींच दी थी। इस सीमा से बाहर जाने की इच्छा भी उनके मन में कभी नहीं जागी। इसके भीतर की चप्पा–चप्पा धरती उनकी जानी पहचानी है। महादेवी का महत्व नयी भाव–भूमियों और नवीन अभिव्यंजना पद्धतियों के अन्वेषण की अपेक्षा अपनी सीमित काव्य वस्तु के पूर्ण परिष्कार में है। वे अपने संपूर्ण काव्य में भावना और चिंतन की जिन स्थितियों को व्यक्त करती हैं, उनकी संख्या अधिक नहीं है। वे 'दीपशिखा' तक आते–आते उन सबों से पूर्णतः परिचित हो चली थीं। उन्हें व्यक्त करने कें लिए जिस विशिष्ट अभिव्यंजना–पद्धति का उन्होंने विकास किया था, 'दीपशिखा' की रचना तक उस पर उनका पूरा अधिकार हो चला था। वे 'नीहार' के

रचनाकाल से अनुभूति और अभिव्यक्ति के जिन क्षेत्रों का अन्वेषण करने को चली थीं, 'दीपशिखा' मे उस अन्वेषण की पूर्णता देखने को मिलती है।

'दीपशिखा' का महत्व नये भाव या कलागत प्रयोगों के कारण नहीं, वरन् पिछले प्रयोगों को चरितार्थता तक पहुँचाने में है। इसमें महादेवी की भावाभिव्यंजना का सबसे समर्थ तथा विकसित रूप देखने को मिलता है। उन्होंने जिस प्रतीक शैली का वर्षों से अभ्यास किया था, 'दीपशिखा' में उसका सहज, आयासहीन प्रयोग हुआ है। शब्द–चयन, अलंकार–विधान, और छन्द–योजना इत्यादि के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। 'दीपशिखा' तक पहुँचकर महादेवी पूर्णतः अन्तर्मुखी हो गयी हैं। बाह्य जगत् से उनका रहा–सहा सम्बन्ध भी समाप्त हो गया। उनके काव्य की अनुभूति या तो क्षीण हो गयी है या चिंतन के रूप में ढल गयी है। आभ्यान्तर के प्रति उनके समर्पण को सम्पूर्णता मिल गयी है। 'सांध्यगीत' की दार्शनिकता यहाँ और गहरायी है। उनकी चिंतन–प्रधान अनुभूति को यहॉ निश्चय ही अधिक व्यक्त और मूर्त रूप मिल सका है। भावना, चिंतन और अभिव्यंजना का यह संयोग 'दीपशिखा' को महादेवी ही नहीं, वरन् उनके युग की भी एक महत्वपूर्ण कृति बना देता है।

काव्य–साधना का अंतिम चरण होने के नाते 'दीपशिखा' में महादेवी की दृष्टि की एकपक्षता और एकांगिता काफी कम हो गयी है। उन्हें 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' के रचनाकाल में इस एकांगिता का अनुभव हुआ था और उन्होंने दुःख–सुख के सामंजस्य की बात कही थी। 'दीपशिखा' में एक हद तक यह सामंजस्य घटित होता है। यहॉ महादेवी अपनी पीड़ा से उबर जाती हैं। पीडा का जो भी दंश अब शेष रहा था, वह समाप्त हो जाता है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है कि 'यहॉ पीड़ा की ज्वाला ही दीपशिखा बन गयी है जो पृथ्वी को आलोकित करके अपना घुल जाना ही वरदान मानती है।'[68]

'दीपशिखा' का केन्द्रीय प्रतीक 'दीपक' है। इसके अतिरिक्त इसमें यात्रा, मेघ, सरिता और शिशु–जननी प्रतीकों के भी विशेष प्रयोग हुये हैं। ये सारे प्रतीक किसी न किसी रूप में प्रेम की साधना से जुड़े हैं। 'नीहार' का स्वप्न 'दीपशिखा' तक बराबर चलता है। यह स्वप्न उनके जीवन की सबसे बड़ी निधि है। उनका काव्य इसी स्वप्न की कलात्मक परिणति है। बाह्य जगत और व्यावहारिक जीवन से परे

यह स्वप्न लोक ही उनका वास्तविक जीवन है। इस स्वप्न लोक में प्रेम की सत्ता है। वे कहती हैं–

'मैं पलकों मे ं पाल रही हूँ
यह सपना सुकुमार किसी का
जाने क्यों कहता है कोई
मैं तम की उलझन में खोई
धूममयी वीथी–वीथी में
लुक–छिप कर विद्युत–सी रोई
मै कण–कण में टाल रही अलि
ऑसू के मिस प्यार किसी का।'

'दीपशिखा' में मेघों पर कई सुन्दर गीत मिलते हैं–

'कहॉ से आये बादल काले ?
कजरारे मतवाले?
शूल भरा जग धूल भरा नभ
झुलसी देख दिशाएं निष्प्रभ
सागर में क्या सो न सके यह
करुणा के रखवाले ?'[69]

दीपक और मेघ की भाँति यात्रा और यात्री भी 'दीपशिखा' के प्रमुख प्रतीकों में हैं। एक तरह से महादेवी का सम्पूर्ण काव्य ही एक अनोखे स्वप्न–लोक की यात्रा है। रात्रि का सघन अंधकार चारों ओर फैला है, आकाश मे बादल घुमड़ रहे हैं, दिशाओं में तूफान चल रहे हैं, पथ कठिन भी है और अनजान भी और यात्री अकेला है, दूर कहीं पर दीप जल रहा है, वेदना और अश्रुकणों का पाथेय लेकर यात्री इस पथ पर बढ़ चलता है–

'पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!

और होंगे चरण हारे

और हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे

दुखव्रती निर्माण उन्मद

ये अमरता नापते पद

बॉध देंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।'[70]

महादेवी मूलतः प्रेम और वेदना की कवयित्री हैं। उनका प्रेम अर्न्तमुख और पीडा अन्तश्चेतना मूलक है। इसके अनुरूप उनकी व्यंजना भी सूक्ष्म, निगूढ़ और प्रतीकात्मक है।

# संदर्भ

1. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – आधुनिक कविता–यात्रा, पृष्ठ–21

2. गजानन माधव मुक्तिबोध – कामायनीः एक पुनर्विचार, पृष्ठ–45

3. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – प्रसाद–निराला–अज्ञेय, पृष्ठ–34

4. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ –148

5. डॉ0 रामरतन भटनागर – जयशंकर प्रसाद : जीवन दर्शन–कला व कृतित्व, पृष्ठ–94

6. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–159

7. इन्द्रनाथ मदान – जयशंकर प्रसाद : चिंतन और कला, पृष्ठ–9

8. वही, पृष्ठ–8

9. डॉ0 प्रेमशंकर – प्रसाद का काव्य, पृष्ठ–193

10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–593

11. वही, पृष्ठ–594

12. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–171

13. जयशंकर प्रसाद – कामायनी–आमुख

14. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – आधुनिक कविता–यात्रा, पृष्ठ–41

15. डॉ0 रामरतन भटनागर – निराला और नव जागरण, पृष्ठ–70

16. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – नये पत्ते, पृष्ठ–46

17. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – परिमल–भूमिका, पृष्ठ–12

18. वही, पृष्ठ–15

19. धनंजय वर्मा – निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृष्ठ–139

20. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अनामिका, पृष्ठ–14

21. वही, पृष्ठ–13

22. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अनामिका, पृष्ठ–90

23. वही, पृष्ठ–93–94

24. वही, पृष्ठ–98

25. रामविलास शर्मा – निराला : राग–विराग, पृष्ठ–30

26. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – अनामिका, पृष्ठ–110

27. वही, पृष्ठ–110

28. वही, पृष्ठ–110–111

29. वही, पृष्ठ–117

30. दूधनाथ सिंह – निराला : आत्महंता आस्था, पृष्ठ–124–125

31. रामविलास शर्मा – तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा (निराला–संपादक–इन्द्रनाथ मदान), पृष्ठ–80

32. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–257

33. वही, पृष्ठ–257

34. सुमित्रानन्दन पन्त – साठ वर्ष : एक रेखांकन, पृष्ठ–32–33

35. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–298

36. वही, पृष्ठ–304

37. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ–156

38. डॉ0 बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–191

39. सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव–भूमिका (प्रवेश), पृष्ठ–15–16

40. सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–52

41. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–310

42. सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–62

43. वही, पृष्ठ–62

44. सुमित्रानन्दन पन्त – पल्लव, पृष्ठ–140

45. सुमित्रानन्दन पंत – पल्लव, पृष्ठ–142

46. वही, पृष्ठ–151

47. सुमित्रानन्दन पन्त – तारापथ (भावी पत्नी के प्रति–गुंजन से), पृष्ठ–95

48. सुमित्रांदन पन्त – तारापथ (गुंजन से), पृष्ठ–107

49. सुमित्रानन्दन पन्त – ग्राम्या (भारत माता), पृष्ठ–48

50. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–487

51. महादेवी वर्मा – साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, पृष्ठ–94

52. महादेवी वर्मा – रश्मि–भूमिका, पृष्ठ–6

53. वही, पृष्ठ–7

54. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–487

55. डॉ0 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–202–203

56. महादेवी वर्मा – यामा (नीहार), पृष्ठ–57

57. वही, पृष्ठ–5

58. वही, पृष्ठ–4

59. वही, पृष्ठ–1

60. महादेवी वर्मा – यामा–भूमिका (अपनी बात), पृष्ठ–6

61. इन्द्रनाथ मदान – महादेवी (संपादित), पृष्ठ–10

62. डॉ0 बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–204

63. इन्द्रनाथ मदान – महादेवी (संपादित), पृष्ठ–6

64. महादेवी वर्मा – यामा–भूमिका (अपनी बात), पृष्ठ–6

65. महादेवी वर्मा – यामा (नीरजा), पृष्ठ–130

66. डॉ0 नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ–585

67. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ–167

68. डॉ० नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ–585

69. महादेवी वर्मा – दीपशिखा, पृष्ठ–48

70. वही, पृष्ठ–2

# अध्याय–6

# उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य

# अध्याय –6

# उत्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का चरमोत्कर्ष छायावादी काव्य के रूप में विगत सदी के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध से आरम्भ होकर चौथे दशक के उत्तरार्द्ध तक अपने सर्वोत्तम सृजन–क्षणों से गुजरता है। इसके बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता आदि काव्यान्दोलन प्रारंभ होते हैं। साहित्य के संदर्भ में किसी प्रवृत्ति के लिए समय की कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। साहित्य में कई प्रवृत्तियाँ एक साथ चलती रहती हैं। इस समय तक आकर स्वच्छन्दतावादी चेतना क्षीण होने लगती है, किन्तु यह चेतना पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाती अपितु अन्तः सलिला की भाँति प्रवाहित होती रहती हैं। इसके स्वरूप और संस्कार में परिवर्तन आ जाता है। इसके कथ्य और शिल्प के दृष्टिकोण में अन्तर आ जाता है। यह स्वच्छन्दतावादी धारा गीतात्मकता के रूप में प्रकट होती है। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के बाद भी इसमें एक उद्याम आवेगमयी अनुभूति विद्यमान है जो इसे स्वच्छन्दतावाद के विशिष्ट गुणों से युक्त बनाता है। इस काल के प्रमुख उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि हैं।

## माखनलाल चतुर्वेदी

### एक भारतीय आत्मा

उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी पूरी काव्य–चेतना हमारे राष्ट्रीय इतिहास के उस दौर में सक्रिय हुई थी, जब अपने देंश की पराधीनता की प्रतीति के कारण 'क्रान्तिशील' राष्ट्रीयता प्रबुद्ध, ईमानदार और संवेदनशील भारतीय का सबसे मूल्यवान और सार्थक गुण था। राष्ट्रीयता की धारा और प्रखर तथा वेगवती हो गयी थी। सत्ता से असहमति अब पर्याप्त नहीं थी, उसका स्थान अब विरोध एवं विद्रोह ने ले लिया था। सच्ची भारतीय आत्मायें अब असहयोगी एवं विद्रोही की भूमिका में आ गयी थीं। जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति तत्कालीन साहित्य की

भी महत्वपूर्ण प्रेरणा यदि विद्रोही राष्ट्रीयता हो गयी तो इसे स्वाभाविक ही कहा जायेगा। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लिए जब 'एक भारतीय आत्मा' का उपनाम चुना तो वे अपने समय के सच्चे भारतीय नागरिक एवं सच्चे साहित्यकार दोनों की सच्ची भूमिका का ऐलान कर रहे थे। उन्होंने कविता या कारा के स्थान पर कविता और कारा दोनों को स्वीकार किया। कविता लिखकर वे कैदी बने और कैदी बनकर कविताएँ लिखीं।

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपेक्षाकृत छोटी उम्र में लिखना आरम्भ कर दिया था, यद्यपि उनकी रचनाओं का प्रकाशन विलम्ब से हुआ। जब 1913 ई0 में खण्डवा से 'प्रभा', कानपुर से 'प्रताप' और बाद में 'कर्मवीर' पत्र (जबलपुर से 1919 ई0 से, खण्डवा से 1925 ई0 से) आरम्भ हुये, तब माखनलाल जी की रचनायें प्रायः 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रकाशित होने लगीं। उनकी प्रथम प्रकाशित पुस्तक 'कृष्णार्जुन युद्ध' है। यह एक नाटक है। इसके बाद 'हिमकिरीटिनी' (1942 ई0), 'साहित्य देवता' (1943 ई0), 'हिमतरंगिणी' (1949 ई0) 'माता' (1952 ई0), 'युग चरण', 'समर्पण', 'वेणु लो गूँजे धरा', 'बीजुरी काजल ऑज रही' आदि ग्रन्थ प्रकाशित हुए। 'साहित्य देवता' इनकी विशिष्ट कृति है। इसे गद्य काव्य कहा गया है।

कवि के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखकर हम माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं को दो श्रेणी में रख सकते हैं– आरंभिक काव्य, परवर्ती काव्य। उनकी रचनाओं की प्रवृत्तियाँ प्रायः स्पष्ट और निश्चित हैं। राष्ट्रीयता उनके काव्य का कलेवर है तो भक्ति और रहस्यात्मक प्रेम उनके काव्य की आत्मा।

माखनलाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व कई रेखाओं से मिलकर बना है। आरम्भ में वे रचना और राजनीति को साथ लेकर चले, पर बाद में उन्होंने साहित्य से ही अपना रिश्ता रखा। पहले वे क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे, पर धीरे–धीरे गॉधी जी के प्रभाव में आ गये। इसीलिए 'हिमकिरीटिनी' की कविताओं में बलिदान की भावनाओं को प्रमुखता मिली है। इसमें 'विद्रोही सिपाही', 'नाश का त्यौहार', 'बलिपन्थी', 'तिलक', 'मरण', 'त्यौहार' आदि कविताएं संग्रहीत हैं। माखनलाल जी के परिवार का वैष्णव परिवेश, पिता और स्वयं के शिक्षक का संस्कार, क्रान्तिकारियों का उग्रपन्थ, गॉधीवादी दृष्टि और इन सबके ऊपर उनकी रोमानी बनावट– इन सबके सम्मिलित योग से उनकी रचनाओं का निर्माण हुआ है और यदि इन

सबका संयोजन होकर एक संघटित व्यक्तित्व सामने आ सकता तो अधिक विराट पुरुष उभर सकता था। कई बार वे इन अनेक भूमियों पर जाते हुए स्वयं को संयोजित नहीं कर पाते, उनमें उलझाव आ जाता है और चित्र स्पष्ट नहीं हो पाते। वे कई बार एक साथ कई स्तरों पर चलना चाहते हैं और सारे तत्वों का समीकरण होना शेष रह जाता है।[1] पर जहॉ वे ऐसा कर सके हैं वहॉ वे रोमांटिक काव्य को नया तेवर दे सकने में महत्वपूर्ण भमिका अदा करते हैं।

स्वच्छन्दतावाद के कई कोण माखनलाल जी की रचनाओं में उभरते हैं– आत्मानुभूति, आध्यात्मिक चेतना, राष्ट्रप्रेम प्रकृति–सौन्दर्य आदि। उनकी कवितायें राष्ट्र के प्रति एक आतुरता भरी भावुकता से ओत प्रोत हैं। उसकी बनावट में एक भारतीय आत्मा की रोमानी प्रवृत्ति अपनी भूमिका अदा करती है। कई बार वह प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होती है। उनकी बहु उद्धृत कविता है– 'फूल की चाह'। इसमें छः पंक्तियों में बलिदान और भावना संजोयी गयी है। फूल न सुरबाला के गहनों में गुँथना चाहता है, न प्रेमीमाला में बिंधने की कामना उसमें है। सम्राट के शव अथवा देवों के सिर पर चढ़ने की इच्छा भी उसमें नहीं है–

'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊॅ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इतराऊॅ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।'

स्वाधीनता संग्राम की ऐतिहासिक गति ने जिसकी रचनात्मक प्रतिभा को और भी तीखा किया हो, साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी तथा पूॅजीवादी शक्तियों के बेदर्द शोषण ने जिस ज्वाला को और धधकाया हो, वंदेमातरम् जैसे सांस्कृतिक संवेदन और सामर्थ्य–गुण–गर्जन ने जिस चेतना में जागरण नाद भरा हो, उस 'पुष्प–पत्र' की चाह भला मातृभूमि के चरणों में समर्पित होने के अतिरिक्त और हो भी क्या सकती थी।

'समय के पॉव' में तिलक, गॉधी, सुभाष, गणेश शंकर के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें पता चलता है कि माखनलाल जी की आक्रोशी मुद्रा गाँधी जी के प्रभाव में अधिक संयत हुई है। परन्तु इससे उसकी मूल बनावट में अधिक अन्तर नहीं आया। तिलक के विषय में उनका कथन है– 'लोकमान्य तिलक प्रत्येक क्षण भारतीय स्वतन्त्रता को एक दूसरे की पूरक समझते रहे। यह उनके स्वराज्य आन्दोलन और उनके सांस्कृतिक ग्रन्थों की रचना से स्पष्ट दिखाई देता है।'[2] बाल गंगाधर तिलक के जादू भरे इरादों का अद्भुत जादू इस महाकवि पर भी चढ़कर बोलने लगा–

'सूरज सावधान हो जाओ मातृभूमि तुम धरती धीर,
पश्चिम तू भी शीघ्र समझ ले, नीति बदल बन जा गंभीर।
कर्म क्षेत्र में आते हैं अब करने को जननी का त्राण,
कई करोड़ दुःखों के व्याकुल, भारत के भावी विद्वान।'

गॉधी के लिये उन्होंने विश्व का अनहोना काव्य, महान मानव काव्य अथवा काव्य–मानव आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया है जिससे उनकी राष्ट्रीय भावना प्रकट होती है। अफ्रीका में गॉधी जी का रोमांचकारी संघर्ष माखनलाल जी के उत्साह को प्रेरित कर रहा था, तो विराट जन्म भूमि की विकृतियॉ रुपायित होकर उन्हें संघर्ष की चुनौती का निमंत्रण दे रही थीं। गॉधी जी के सत्याग्रह की ध्वनि समग्र विश्व में गूँज रही थी, तो माखनलाल जी भारतीयता की शान–अभिमान की कसौटी निर्धारित कर रहे थे–

'मेरे जीते पूरा स्वराज्य भारत पाये अरमान यही,
बस शान यही, अभिमान यही, हम कोटि–कोटि की जान यही।'

## क्रान्तिचक्र का आह्वान

तत्कालीन भारत की दारुण परतन्त्रता, अंग्रेजों की अन्यायपूर्ण दुरभिमानी सत्ताधारिता तथा घोर, भयावह एवं निकृष्टतम सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का जाल, प्रथम विश्वयुद्ध का निराशा–हताशा भरा परिवेश, युद्ध की विभीषिकाओं के सम्मुख बिलबिलाता अपाहिज विश्व जीवन तथा व्यक्तिगत स्वार्थों के अतृप्त अहम का शिकार बना पूरा वायुमण्डल – सभी कुछ कवि के हृदय को खण्डित भी करते हैं तो

उस विचलित होते भाव–हृदय को विद्रोही बनाने की भूमिका भी निभाते हैं। दैन्य और दैन्य उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ संघर्ष भूमि का निर्माण करती हैं तो स्वाभिमान का शंख श्रेणीवाद को मिटा देने के लिए क्रांति चक्र का आह्वान करता है–

'पधारो, एक बार फिर सुनें धनुष की वह अद्भुत टंकार,
पधारो, मेघनाद दब जाय, हो पड़े जहाँ कठिन हुंकार।

× × × × ×

मातृ–भू कौशल्या की गोद आज हरी–हरी हो उठे
कष्ट में लेता हूँ अवतार तुम्हारी बात खरी हो उठे,
नगारों से नगरों में नाथ मुबारकवादी–सी सुन पडे,
कंटीली जंजीरे कट जायँ जरा आजादी सी सुन पड़े।'

माखनलाल जी ने नवीन युग और नयी पीढ़ी को आह्वान और संस्कार दिया, उनकी परम आस्तिक, जागरूक, स्वाध्यायी, समर्पणशील, निर्भीक तथा स्वातन्त्र्य प्रिय सौन्दर्य दृष्टि ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की महत्ता का अनुभव किया, पहचाना और भावाकुल अनुरोध किया कि इस भेद भाव की संकीर्णता में मानव जीवन कलंकित होता है–

'मन्दिर में हो चाँद चमकता, मस्जिद में मुरली की तान,
मक्का हो चाहे वृन्दावन, होवें आपस में कुरबान।

× × × × ×

हिन्दी माता की दोनों आँख, नाक को रखकर बीचो–बीच,
अश्रु की उज्ज्वल धारा छोड, प्रेम का पौधा देवे सींच।'

इस गुलाम और अनपढ़ देश में मनुष्य को अशिक्षा के अभाव में तिल–तिल कर पिसते या शोषित होते हुये भी कवि ने देखा। उस शोषण की पीड़ा और कथा को सुना, गुना, गुनगुनाया तथा जन–जन को सुनाया भी–

'अन्न नहीं है, फीस नहीं है पुस्तक है न सहायक हाय,
जी में आता है पढ़ लिख लें, पर इसका है नहीं उपाय।
कोई हमें पढ़ाओ भाई, हुये हमारे व्याकुल प्राण।
हा! हा!! रोते फिरते हैं भारत के भावी विद्वान।'

भारत की आत्मा से साधारणीकृत हो जाने वाली इस 'भारतीय आत्मा' ने उद्बोधन क्षमता, व्यापक दृष्टि, शोषितों और असहायों के प्रति हार्दिक सहानुभूति, संघर्षोन्मुखता, प्रखरता तथा स्पष्टता के कारण अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई और यह विशिष्ट पहचान ही उनके सामाजिक एवं राष्ट्रीय सरोकारों को रेखांकित करती है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है– 'माखनलाल जी के काव्य ने साधारण युवकों को ही नहीं तरुण क्रांतिकारियों को भी प्रभावित किया। साम्राज्यवादी दमन से निडर होकर संघर्ष करने वाली नौजवानों की एक पूरी पीढ़ी माखनलाल जी की कविताएँ गुनगुनाती हुई अपने अनुशासन और आत्मबल को दृढ़ कर चुकी है। ऐसी सफलता विरले ही कवियों को मिलती है।'[3]

## राष्ट्रीय चेतना : रोमानी तेवर

माखनलाल जी की राष्ट्रीय–चेतना में सांस्कृतिक, रोमानी और यहाँ तक कि आध्यात्मिक पक्ष ऐसे घुल–मिल गये हैं कि उनकी कविताओं में उसे खोज पाने का कार्य सरल नहीं होता और कई बार कविता की शुरुआत रोमानी होती है, पर उसमें राष्ट्रीय चेतना बसी रहती है। इसी तरह राष्ट्रीय संदर्भों की बात करते–करते कविताएँ आध्यात्मिक संकेत देने लगती हैं। उनकी कविताएॅ केवल देश–प्रेम के भावोच्छ्वासों से संतुष्ट नहीं होतीं, वहॉ राष्ट्रीय चेतना का एक संपूर्ण बिम्ब मौजूद है। कवि राष्ट्र को उसकी समग्रता में देखता है और उसके चित्र बनाता है। वह अपने व्यक्तित्व के साथ वहॉ उपस्थित है, केवल वक्तव्यों के साथ नहीं। प्रायः उनकी कविता 'कैदी और कोकिल' को उद्धृत किया जाता है। इसमें एक कैदी कोकिला को सम्बोधित करके अपनी राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन करता है। क्या यह स्वयं में एक रोमानी कल्पना नहीं है कि एक पक्षी, जिसे वसन्त का प्रतीक माना जाता है और जिसे आम्र वन में विहार करते दिखाया गया है, उसे राष्ट्रीय ज्वार में सम्मिलित किया जाय। पहले कवि कारागार की तसवीर बनाता है– ऊँची काली दीवारों का घेरा, डाकू–चोरों का साथ, पेट भर खाने का सिलसिला नहीं,

जीवन पर दिन–रात कडा पहरा। ऐसे परिवेश में रात के गहरे अँधियारे में कैदी कोकिला को सम्बोधित करता है कि सुबह–सुबह दुनिया को जगाने वाली कोयल क्या रात के आधे पहर में विश्व को जगाने आयी है ? सम्पूर्ण कविता से गुजरने पर रोमानी प्रवृत्तियों के भीतर से झाँकती हुई राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है। प्रकृति के दृश्य, जीवन–यथार्थ साथ–साथ मौजूद हैं। आरम्भ में रोमानी तेवर है–

'दूबों के ऑसू धोती रवि किरणों पर,
मोती बिखराती विन्ध्या के झरनों पर।

× × × × ×

तेरे भी मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा।'

पर कविता राष्ट्रीय चेतना से जुड़ती है–

'क्या देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकडियॉ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना
कोल्हू का चरक चूँ ? जीवन का तान
मिट्टी पर अँगुलियों ने लिक्खे गान।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूआ।
दिन में करुणा क्यों जगे, रुलाने वाली
इसलिये रात में गजब ढा रही आली।'

इस शान्त समय में–

'अन्धकार को बेध–सी रही क्यों हो ?
कोकिल बोलो तो !
चुपचाप मधुर विद्रोह बीज

इस भाँति बो रही क्यों हो ?

कोकिल बोलो तो।'

## काव्य और जीवन में समन्वय

युगदृष्टि से सम्पन्न माखनलाल जी निरन्तर काव्य और जीवन में युगीन समन्वय की खोज करते हैं। उनकी मान्यता थी कि दृष्टि का काम बाहर को देखना भी है और भीतर को भी। जब वह बाहर को देखती है, तब रचनाओं पर समय के पैरों के निशान पड़े बिना नहीं रहते। जब वह भीतर को देखती है, तब मनोभावनाओं के ऐसे चित्र कलम पर आ जाते हैं, जिन्हें समय द्वारा शीघ्र नहीं पोंछा जा सकता। यही कारण है कि ऑखों से दिखाई पड़ने वाले सब कुछ की ओर से आँखें मूँद लेने पर उसका पता नहीं लगता, किन्तु भीतर से यानी अन्तश्चक्षु से दिखाई पडने वाली दुनिया, आँखें मूँद लेने के बाद भी दिखाई पड़ती है, इसलिये वह समय या काल के हाथों मिटाये नहीं मिटती।

इसी मान्यता के आधार पर माखनलाल जी ने अपने अन्तश्चक्षु से दुनिया को देखकर उसके जिस युग सत्य को अपनी कविताओं में अक्षरबद्ध किया है, वह समय की शिला पर अंकित होकर अमिट चित्र बन गया है और इसीलिये उनकी कवितायें कालजयी तो हैं ही, प्रासंगिक भी हैं, अर्थात् वे समय का नियन्त्रण करने वाली होकर समय से परे की वस्तु हैं। कालातीत होते हुये भी कालानुसरण की क्षमता से सम्पन्न हैं। चिर पुरातन होते हुये भी चिर नवीन हैं।

माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावाद के लगभग समानान्तर यात्रा की, इसलिए उनकी चेतना में रोमानी तत्व सहज भाव से आ गये। थोड़ा वे राष्ट्रीय चेतना की ओर मुडे, थोडा आध्यात्मिकता की ओर, पर उनमें रोमानी प्रवृत्तियॉ बनी रहीं। संयोग से वे इतिहास के उस मोड पर अपनी रचना ले कर उपस्थित हुये जब स्वच्छन्दतावादी काव्य अपने सर्वोत्तम से गुजर रहा था, इसलिए उसकी ताजगी से उनका परिचय हुआ। उन्होंने गीतों का माध्यम चुना, पर कोशिश यह थी कि वे एक नया मुहावरा अपनायें। उन्होंने प्रतीकों की एक नयी दुनिया तलाशने में मेहनत की और भाषा की सहजता को पकड़ा। उन्हें शब्द–शिल्पी कहा जाता है, पर यह कलाबाजी या शब्द जाल नहीं है। उन्हें एहसास है कि अपनी बात अगर ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुॅचानी है तो भाषा के आभिजात्य से मुक्त होना होगा।

माखनलाल जी ने इस विषय में सन्त कवियों का उदाहरण देते हुये कहा है कि वे लोकवाणी बोलते थे, लोकवाणी लिखते थे, लोकवाणी गाते थे और लोक हृदय में वाणी को पहुँचाते थे। उन्होंने अभिजात भाषा पर कटाक्ष करते हुये लिखा है– 'जब ऋषित्व और सन्तत्व गया, तब हम शहराती जबान लिखने लगे।' इसी तरह 'अमीर इरादे, गरीब इरादे' में उन्होंने लिखा है– 'ऐसा न हो कि हम लिखें और वस्तु मुहाफिजखानों के बस्तों में बॉधकर रख दी जाय। हम कभी अपने गर्व को भी देख लिया करें। हमारे गॉव–गॅवई के लोग हमें जानते नहीं और दावा है कि राष्ट्र जानता है। यह दूरी नहीं है। यह जीवन के प्रति हमारे ईमान का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति हमारा उत्तरदायित्व है।'[4]

एक कवि जिसे लम्बी यात्रा करनी पडे और समाज की कई क्रमावस्थाओं से गुजरना हो, उसे यदि अपने को दुहराकर खत्म नहीं हो जाना है, तो उसे रचना का नया मुहावरा तलाशना होगा। माखनलाल जी को यह एहसास है कि स्वच्छन्दतावाद में नयी संभावनायें जगाये बिना काम नहीं चल सकता। रोमानी प्रवृत्तियों से बगावत करके गैर रोमानी भूमियों पर जाने का सीमान्ती प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। पर भाषा के स्तर पर उन्हें सजग देखा जा सकता है और बात कहने की कला उनकी अपनी है। यहॉ वे अपने व्यक्तित्व के साथ उपस्थित हैं और उन्हें अलग से टटोला जा सकता है। जब वे 'तुम्हारे बोल' जैसी कवितायें लिखते हुये प्यार, चुंबन, स्नेह की बात करते हैं तब भी वे सहज मुहावरा काम में लाते हैं–

'तरुणाई के प्रथम चरण में जोडी टूट गयी।
फूली हुई रात की रानी प्रातः रुठ गयी।
गन्ध बनी सॉसों भर आयी
छन्द बनी फूलों पर छायी
बन आनंद धूलि पर बिखरी
यौवन के तुतलाते वैभव सन्ध्या लूट गयी।
फूलों भरी रात की रानी सहसा झढ गयी।
मुसुको भरी मनोरम वेली

यादों की डालों पर खेली

गिरी सभी साधें अलबेली

ऊँचे पर उठती अभिनवता पथ में छूट गयी।

फूली हुई रात की रानी कैसे रुठ गयी।'

भाषा का नया मुहावरा पाकर माखनलाल जी ने स्वच्छन्दतावादी काव्य के कुछ तत्व अकाल कवलित होने से बचा लिया। उनका काव्य स्वच्छन्दतावाद से अपनी यात्रा आरम्भ करके उसके भीतर नयी संभावनायें जगाता है। उन्हें स्वतन्त्र देश के रचनाकार के दायित्व का बराबर एहसास था और वे जानते थे कि रचना के सामने कई संकट हैं।

माखनलाल जी की रचनायें स्वच्छन्दतावाद को नयी ध्वनियाँ देनें में प्रयत्नशील रहीं। उन्होंने अपने समकालीन कवियों से अलग अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित किया। यही वैशिष्ट्य उनकी राष्ट्रीय चेतना को नयी दीप्ति देता है, उनके काव्य में स्वच्छन्दतावाद की रोमानी वृत्ति, नयी आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक चेतना मौजूद है।

## हरिवंश राय 'बच्चन'

### अतृप्ति का बोध और मनोमय परितुष्टि

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद की नयी भंगिमा और नये रूपायन की अभिव्यक्ति जिन कवियों के काव्य में हुई है, उनमें हरिवंश राय 'बच्चन' का स्थान शीर्ष पर है। बच्चन का काव्य जहॉ प्रगीतों की एक समृद्ध परम्परा का सूत्रपात करता है, वहॉ दूसरी ओर वह कवि की काव्यानुभूतियों के तारतम्य मूलक विकास का निरुपण भी करता है।

बच्चन का काव्यारम्भ आध्यात्मिकता की प्रतिक्रिया के रूप में लौकिकता के गायक के रूप में होता है। यद्यपि वे स्वयं अपने स्वर की विलक्षणता से चौंक गये थे, पर उन्होंने अपने आप को एकाकी नहीं समझा। वे समझते थे कि वे जैसा अनुभव कर रहे हैं, वैसी ही अनुभूति उनके युग के युवा मन को आक्रान्त किये हुये है। उनके काव्य में तत्कालीन युवा मन की सामान्य आशा–आकांक्षा, हर्ष–विषाद,

प्रेम–पिपासा और निराशा–हताशा का स्वर मुखरित हुआ है। उन्होंने अपने युग में हतप्राय और जागतिक संघर्ष के चक्र में पिसती हुई युवा भावनाओं के स्वरों को सहेजा, युवा मन की इन्द्रजालिक मायानगरी को पहचाना और उसके अवचेतन में दबी हुई अतृप्त कामनाओं का स्पर्श करते हुये उन्हें मानसिक परितोष प्रदान करने का उपक्रम किया।

बच्चन का काव्य अतृप्ति के बोध और उसकी मनोमयी परितुष्टि का काव्य है। असल में, बच्चन जिस युग और समाज में पैदा होते हैं, वह जर्जर प्राय नैतिकता और अंधविश्वासों से ग्रस्त सामाजिकता का युग है। वह एक ऐसा युग है जहॉ अतृप्ति की बात करना गुनाह समझा जाता है और अचेतन की उपत्यकाओं में विचरण करने के कार्य को नैतिक स्खलन की संज्ञा दी जाती है। बच्चन के आरम्भिक काव्य ने रुढ़िग्रस्त समाज के एक कोने को झकझोर दिया था और वह कोना बच्चन के उद्गारों को अनैतिक और अश्लील कहने से भी नहीं चूका था। पर व्यापक युवा मन बच्चन के काव्य का विभोर होकर स्वागत करता है। वह बच्चन के काव्य में वर्णित मनः तुष्ट को पसन्द करता है। यही कारण है कि बच्चन का कृतित्व दो प्रकार की प्रतिक्रियाओं को उत्पन्न करता है। पहले स्थान पर जहाँ समाज के तथाकथित कर्णधारों की और वृद्ध साहित्य–समीक्षकों की प्रतिरोधमयी वाणी सुनायी पडती है, वहॉ दूसरी ओर युवा मन में अतृप्ति का बोध और उसकी काल्पनिक परितुष्टि का प्रयास भी प्रतिफलित होता है। कवि को अपने काव्य की आलोचना से कुछ पीड़ा अवश्य हुई है। वह स्पष्टीकरण देने का प्रयास करता है और बताता है कि उसने एक सामूहिक भावना की ही व्यंजना की है। कवि को यह सोचकर बड़ी सांत्वना मिलती है कि वही एक ऐसा व्यक्ति है जिसने युवा मन को आक्रान्त करने वाली मूक किन्तु घुमड़ती हुई भावनाओं को अभिव्यक्त किया है, जिसे प्रकट करने के लिए अन्य किसी के पास साहस और शब्द नहीं है–

'इस कुपथ पर या सुपथ पर<br>
मैं अकेला ही नहीं हूँ,<br>
जानता हूँ–क्यों जगत फिर<br>
उगलियॉ मुझ पर उठाता,

मौन रहकर इस लहर के
साथ संगी बह रहे हैं,
एक मेरी ही उमंगे
हो उठी हैं व्यक्त स्वर मे।'[5]

बच्चन जानते हैं कि उनका दोष केवल इतना है कि उन्होंने सामान्य अतृप्ति को शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर दिया है। वस्तुतः यह दोष ही नहीं, अपितु साहसिकता की निशानी है। प्रत्येक युग का काव्य युगीन अतृप्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करता है और उसमें उसके समाधान के प्रयास भी निहित होते हैं। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में यह अतृप्ति अपूर्णता के दार्शनिक प्रत्यय के अभिधेय में सजकर आती है और उसका वैसा ही दार्शनिक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ, प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इसी अतृप्ति के बोध को अपूर्णता के रूप में प्रस्तुत किया है तथा इसका दार्शनिक समाधान भी प्रस्तुत किया है। किन्तु बच्चन ने अतृप्ति के बोध को दार्शनिकों की–सी भाषा में व्यक्त नहीं किया है। इसके अतिरिक्त वे सन्तों के समान उसके निराकरण का आध्यात्मिक निदान भी प्रस्तुत नहीं करते। वे सहज–सीधी भाषा में अतृप्ति और उसके परितोष की मायानगरी का निर्माण करते हैं।

बच्चन के काव्य की लोकप्रियता का रहस्य यह है कि उन्होंने अपने ही मन की अनुभूतियों को व्यापक जनमानस की अनुभूतियो के रूप में रूपान्तरित करने का प्रयास किया। इसको भावना का उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है। उदात्तीकरण की प्रक्रिया सरल नहीं होती, अपितु कवि को उसके कुशल सम्पादन के लिए अनेकानेक अग्नि–परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। सबसे पहले उसे व्यक्ति–मन की संकीर्णता का परिहार करते हुये इतनी व्यापकता देनी होती है जिसके अन्तराल में युगमानस की भावनायें खुलकर खेलने का विशाल प्रांगण प्राप्त कर सकें। दूसरे स्थान पर उसे अनुभूति के रूपायन की समस्या का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति–मन अनेकानेक जटिलताओं और विलक्षणताओं से भरा होता है और वैयक्तिकता की अनुभूति अनेकानेक आसंगों से लिपटी होती है। किन्तु इसके विपरीत जनमानस में एक सामान्यता होती है, उसकी जटिलताओं में भी सामान्यीकरण का सूत्र लिपटा होता है। इस स्तर पर

कवि को अपनी वैयक्तिक विलक्षणताओं का परिहार करते हुये अपनी अनुभूति को नाना विध आसगों से मुक्त करना पडता है और उसे सामान्य बनाना पड़ता है। तीसरे स्तर पर कवि का दायित्व अपेक्षाकृत अधिक बढ जाता है। यह अभिव्यक्ति का स्तर है। व्यक्ति मन की अनुभूतियॉ प्रकृत रूप में अनिवार्यतः जटिल होती हैं और उसकी यथावत अभिव्यक्ति का आग्रह जटिल कवियों के एक दल के निर्माण में प्रतिफलित हो सकता है, जो अभिव्यक्ति में अनुभूति की जटिलता को अक्षत बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु बच्चन जटिल नहीं, ऋजु अभिव्यक्ति के आकांक्षी थे। वे व्यक्ति की अनुभूति को सामूहिकता की पीठिका पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को ऋजु और सरल बनाया जिससे वह लोकमानस का स्पर्श कर सके। बच्चन अपने इस कार्य में सफल हुये और इसका सुफल भी उन्हें इस रूप में मिला कि उन्हें अपनी किसी कविता की वकालत नहीं करनी पडी और न उन्हें किसी जटिल संवेदना का स्पष्टीकरण ही देना पड़ा।

बच्चन का युग संदेह का युग था। उनका पारिवारिक परिवेश गतानुगतिक और अन्धविश्वासी था। उनके परिजन सामाजिक और राजनीतिक क्रिया कलापों को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। राजनीतिक दृष्टि से यह एक नयी सक्रियता का काल था और सामाजिक दृष्टि से यह सुधारवादी युग था। बच्चन के व्यक्तित्व के निर्माण में इन तीनों सूत्रों का पर्याप्त प्रभाव पडा है। राजनीति के क्षेत्र में स्वाधीनता की जो चेतना उठ रही थी, उससे आहत युवा–पीढी को एक नया दर्प, आत्म विश्वास और साहसिकता की भावना मिली थी। सामाजिक क्रान्ति के उत्तोलन से उन्हें सड़ी–गली नैतिकता को ठुकराने की प्रेरणा मिली और परिवार के अंधविश्वासी दृष्टिकोण ने उन्हें जीवन और जगत के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचने के लिए बाध्य किया था।

बच्चन में राजनीतिक परिस्थितियों और हलचलों का प्रभाव एक नयी साहसिकता के रूप में दिखाई देता है। वे अत्मविश्वास से संपृक्त वाणी में अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। उन्हें अपनी अनुभूतियों को निर्वसन रूप में व्यक्त करने में कोई संकोच नहीं होता और वे घोषणा कर देते हैं–

'मैं निज उर के उद्‌गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिये फिरता हूँ,

है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,

मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ।'[6]

निज मन के भावों की अभिव्यक्ति बच्चन ने अकुण्ठ भाव से की है। उन्हें समाज की परवाह नहीं है। सामाजिक सुधार की चेतना ने कवि की ऑखों में तत्कालीन समाज की क्षय ग्रस्तता का घिनौना दृश्य उपस्थित किया है और क्षयग्रस्त समाज का मरणोन्मुख प्रतिरोध कवि को उसके पथ से नहीं डिगा पाते। बाधाएँ आती हैं, पर कवि उनकी चिन्ता नहीं करता। संसार उसकी भावाभिव्यक्ति के मार्ग मे असंख्यों व्यवधान उपस्थित करता है, किन्तु युवा कवि की आत्मविश्वास से दीप्त वाणी कभी भी अकुण्ठ नहीं होती। बच्चन ने लिखा है– 'उस समय मैंने अपने आप को इसी राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष के बीच खड़ा पाया। तेईस वर्ष का युवक, जीवन की उद्याम पिपासा लिए, अपने उल्लास–प्रेरणा से परिचालित होने का अभिलाषी, अपने स्वप्नों–आदर्शों के अनुसार सोचने–जीने का इच्छुक, पल–पल पर विरोध, पग–पग पर बाधायें। मैंने अस्फुट स्वर में कई बार संसार को पागल कहा, संसार ने मुझे पागल कहा।'[7]

'पागल सब संसार कह उठा

स्वर्ग कह उठा ज्ञानी

भग्य–पटल पर विधि ने लिख दी

कवि की जटिल कहानी।'[8]

बच्चन का काव्यारम्भ वैयक्तिकता की जटिल एवं करुण कहानी के आख्यान द्वारा होता है। यह कहानी एक जन सुलभ भाषा में कही गयी है। यह एक नयी काव्य भाषा है, जिसके निर्माण का श्रेय बच्चन को दिया जाना चाहिए। उन्होंने काव्य भाषा को एक नया उत्कर्ष प्रदान किया।

## अन्तर्मुखता का भावोन्मेष

बच्चन मूलतः अन्तर्मुखी कवि हैं। उनके आरम्भिक काव्य को अन्तर्मुखता का विकास काल कहा जा सकता है। इस काल के अन्तर्गत बच्चन का सम्पूर्ण मधु काव्य समाहित हो जाता है। 'प्रारम्भिक

रचनाएँ' (भाग–1, भाग–2), 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधु कलश' नामक काव्य संग्रह बच्चन के मधु काव्य का निर्माण करते हैं। 'हलाहल' की विवेचना भी इसी सोपान के अन्तर्गत की जा सकती है।

इन काव्य–संग्रहों में कवि को क्रमशः अधिकाधिक आत्मलीन होते देखा जा सकता है। कवि जितना अधिक अन्तर्मुख होता है, उसकी अनुभूति उतनी ही साफ और तीखे रूप में प्रकट होती है। 'प्रारम्भिक रचनाएँ' से लेकर 'मधुकलश' तक कवि की अन्तर्जगत की यात्रा चलती है और आन्तरिक जीवन के परिशीलन से उसे जो मणिमयी उपलब्धि हुई है, उसका गान इन काव्य–संग्रहों में संचित है। 'मधुकलश' के उत्तरार्द्ध की कुछ कविताएँ कवि के विकास के एक दूसरे सोपान का संकेत करती हैं। यह अन्तर्मुखी वृत्ति की परिपक्वता का सोपान है और इसी स्तर पर कवि भावोन्मेष के शिखरों का स्पर्श करता है।

बच्चन की काव्य रचना के दूसरे सोपान को भावोन्मेष का युग कहा जा सकता है। इस सोपान के अन्तर्गत कवि आन्तरिक जीवन के अनुशीलन के फलस्वरूप बडी निर्मल उद्भावनायें करता है। इसी समय कवि के जीवन में कतिपय दारुण घटनायें घटती हैं और वह अत्यन्त संतप्त और दुखी हो जाता है। प्रियतमा पत्नी का विछोह कवि की भावधारा को भावुकता के अनेक अनदेखे सोपानों का संतरण कराता है। यहाँ कवि अपनी आंतरिक पीडा की अभिव्यक्ति परिष्कृत गीति रचना के द्वारा करता है। 'मधुकलश' के उत्तरार्द्ध के कुछ गीत, 'निशा–निमंत्रण', 'एकांत–संगीत' और 'आकुल–अन्तर' में संग्रहीत कविताएँ कवि की इसी मनः स्थिति की व्यंजना करती हैं।

किन्तु बच्चन की यह गहन–गंभीर आन्तरिकता अक्षत नहीं रह पाती। देश में पुनः हृदय विदारक घटनायें घटती हैं और कवि अपनी अन्तर्मुखता की केंचुल को उतार कर बहिर्मुखी हो जाता है। बहिर्जगत के परिशीलन में बच्चन को वैसी सफलता नहीं मिलती जैसी उन्हें आन्तरिक जीवन के अनुशीलन में उपलब्ध हुई थी। 'सतरंगिनी', 'बंगाल का काल', 'खादी के फूल' और 'सूत की माला' में संकलित कविताएँ कवि के इसी दिशा परिवर्तन को व्यंजित करती हैं। किन्तु बच्चन अन्तर्मुखी वृत्ति से सम्पन्न थे, इसीलिए इस काल की कविताओं में उनकी हृदयानुभूति का सहज स्वाभाविक प्रवेग दिखाई नहीं देता। ये

विशुद्ध अभिधात्मक कवितायें हैं जिनमें यद्यपि स्थूल भौतिक घटनाओं का प्रभावी चित्रांकन मिल जायेगा, पर कवि के अपने विशिष्ट स्पर्श से ये कविताएँ पूर्णतया वंचित हैं।

बच्चन शीघ्र ही बाह्य जगत के परिशीलन से ऊब जाते हैं और पुनः अन्तर्जगत की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। अब कवि की वैयक्तिक परिस्थितियाँ बदल रही हैं। कवि की वियोगानुभूति ने उसके स्वरों को सहज प्रभावशीलता प्रदान की थी। परन्तु अब वियोग का वह दारुण निदाघ प्रणय की शीतल वारि से प्रशमित हो जाता है। अब तक तो बच्चन के कन्ठ से विरह की पुकार ही निःसृत हुई थी, पर अब उनका प्रणय राग का पुनः संधान करता है। यह प्रणय–प्रगीतों का युग है। इसी समय कवि का दूसरा विवाह होता है और कवि फिर से अपनी नीड का निर्माण करता है। 'मिलन–यामिनी,' 'प्रणय–पत्रिका', 'धार के इधर–उधर' और 'आरती और अंगारे' की भावधारा इसी प्रकार की है।

यह सोपान बच्चन की अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से उतार का काल है। प्रणय–प्रगीतों की रचना के बाद कवि पुनः अपनी काव्य–दिशा में परिवर्तन करता है और काव्य के सम्बन्ध में अभिनव दृष्टिकोण ग्रहण करता है। यह प्रयोगशीलता का युग था। 'बुद्ध और नाचघर', 'त्रिभंगिमा', 'चार खंभे चौसठ खूँटे' तथा 'दो चट्टानें' की रचनाओं में कवि अभिनव काव्य शिल्प के प्रयोग में व्यस्त है। यह काल इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसी समय कवि की रुचि लोक धुनों की ओर मुडती है और वह लोकगीतों के आधार पर गीतों की सृष्टि करता है।

'प्रारम्भिक रचनाएँ' बच्चन के काव्य का प्रवेश द्वार हैं। इन कविताओं में हम कवि की उनमेषशीला भावनाओं से परिचित होते हैं। यहाँ कवि वैयक्तिक और निजी भावनाओं के आख्याता के रूप में सामने आता है। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत आत्म–कथन की शैली का विकास नहीं हो पाया था, किन्तु स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अनेकानेक प्रतीकों के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रयास किया था। फलतः उनके आत्मकथ्य बौद्धिकता और दार्शनिकता के भार से बोझिल प्रतीत होते हैं। बच्चन ने आत्मकथ्य की परम्परा को प्रतीकात्मकता से विरहित करते हुए संलाप–शैली में प्रकट किया और हिन्दी कविता में ऋजु और सहज अभिव्यक्ति की नींव डाली। 'प्रारंभिक रचनाएँ' संग्रह की कवितायें प्रमुखतः आत्मकथ्यात्मक ही हैं। यद्यपि इन कविताओं में छायावादी शिल्प का यत्किंचन प्रभाव देखा जा

सकता है, किन्तु वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की तीव्रता कवि को छायावादी रुढियों के पालन में असमर्थ बना देती है। छायावादी संस्कारों के बीच जीते हुए भी भावनाओं को यथावत रूप में प्रकट करने की तीव्र माँग कवि के उद्‌गारों में आदिम सहजता की विवृत्ति करती है और वे धीरे–धीरे अपने विशिष्ट स्वर को उच्चरित करने लगते हैं।

'प्रारम्भिक रचनाएँ' कवि की कल्पना–शक्ति के जागरण का काल है। यह किशोर मन की भावनाओं से गुम्फित है। कवि प्रकृति के व्यापारों का परिशीलन करते हुये अपनी भावनाओं को जगाने की चेष्टा करता है। बच्चन के प्रकृति चित्रों में सहजता मिलती है। चित्रण की सहजता के होते हुये भी कवि का स्वर बहुत–कुछ इतिवृत्तात्मक हो जाता है। 'कोयल', 'उपवन' और 'गीत–विहग' नामक कविताओं में स्थूल इतिवृत्तात्मकता का विन्यास हुआ है। 'कोयल' शीर्षक कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

'बसंती, पीले, नीले लाल,<br>
बैगनी आदि रंग के फूल<br>
फूलकर गुच्छ–गुच्छ में झूल<br>
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु–हिडोले डाल।'[9]

इसी प्रकार 'उपवन' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य है–

'माली उपवन का द्वार खोल<br>
विहगों से द्वेष बढ़ाऊँगा ?<br>
भ्रमरों को मार भगाऊँगा ?<br>
अपनो को श्रेष्ठ बताऊँगा ?'[10]

'प्रारंभिक रचनाएँ' में संकलित कविताओं में प्रकृति का इतिवृत्तात्मक चित्रण और आत्मकथ्यात्मक उद्‌गार साथ–साथ चलते हैं। यद्यपि 'प्रारंभिक रचनाएँ' की इतिवृत्तात्मकता और अभिव्यक्ति–शैली में अचानक कुछ समय के बाद परिवर्तन हो जाता है, पर स्पष्ट कथन की शैली बरकरार रहती है। इस आकस्मिक परिवर्तन से बच्चन के काव्य की भंगिमा ही बदल जाती है। इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मक

स्थूलता का अकस्मात निराकरण हो जाता है और बच्चन अभिधा की भूमि में रहस्यात्मकता के उद्‌भिजो को अंकुरित करने का प्रयास करते हैं।

यह परिवर्तन 'खैयाम की मधुशाला' के अनुवाद काल में बच्चन के कवि मानस में घटित होता है। इस समय बच्चन को एक सुस्थिर प्रतीक योजना की उपलब्धि होती है। बच्चन इन्हीं प्रतीकों के द्वारा भावनाओं के मोहक इन्द्रजाल की सृष्टि करते हैं और इस प्रकार 'हालावादी' या कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में, 'हिन्दी के मधुकाव्य' का प्रवर्तन होता है।[11]

## मधुकाव्य एवं प्रणय प्रगीत

हिन्दी मधुकाव्य का प्रवर्तन बच्चन जी अपनी 'मधुशाला' से करते हैं तथा 'मधु कलश' में इसका अवसान प्रतीत होता है। इसके बाद वे बहिर्मुखी होते हैं और बाह्य जगत का परिशीलन करने की चेष्टा करते हैं। किन्तु बाह्य जगत के अनुशीलन से कवि को शान्ति नहीं मिलती और वह पुनः 'हलाहल' की कविताओं में 'मधु काव्य' की सरणी को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है। 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधु कलश' तथा 'हलाहल' कवि की अन्तर्मुखता के विकास सोपान कहे जा सकते हैं।

कवि की अन्तर्मुखता और भाव-चर्या के प्रबोधन का श्रेय खैयाम की रुबाइयों के अनुवाद को दिया जा सकता है। 'नये पुराने झरोखे' में बच्चन जी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है- 'मेरे काव्य जीवन में 'रुबाइयत उमर खैयाम' का अनुवाद एक विशेष स्थान रखता है। उमर खैयाम ने रूप, रंग, रस की एक नई दुनियां ही मेरे आगे नहीं उपस्थित की, उसने भावना, विचार और कल्पना के सर्वथा नये आयाम मेरे लिये खोल दिये। उसने जगत, नियति और प्रकृति के सामने लाकर मुझे अकेला खडा कर दिया। मेरी बात मेरी तान में बदल गयी। अभी तक मैं लिख रहा था। अब गाने लगा। खैयाम से जो प्रतीक मुझे मिले थे उनसे अपने को व्यक्त करने में मुझे बडी सहायता मिली। 'मधुशाला' और 'मधुबाला' लिखते हुए वाणी के जिस उल्लास का अनुभव मैंने किया, वह अभूतपूर्व था। शायद उतने उल्लास का अनुभव मैंने बाद में कभी नहीं किया।'[12]

बच्चन की अन्तर्मुखता खैयाम के प्रतीकों से पुष्ट होती है। उनका समस्त मधुकाव्य एक सुस्पष्ट प्रतीक योजना के द्वारा संवलित है। बच्चन ने खैयाम के प्रतीकों को ग्रहण तो किया, पर वे अपनी

अनुभूत्यात्मकता को तदनुरूप विकसित न कर पाये। असल में खैयाम की रूप–योजना को स्वीकार करने के बाद बच्चन उसकी अनुभूति का भारतीयकरण करने का प्रयास करते हैं। खैयाम की रुबाइयों में नियति का जो तीव्र दर्शन है, वर्तमान को भोगने की जो उद्याम स्पृहा है, युवा–स्वप्न की तरंगायित धारा में बहते रहने का जो दुर्दमनीय मोह है, और जीवन के नाश से पहले ही उसका पूरा आस्वाद करने की जो प्रगल्भ कामना है, उसका प्रतिबिम्ब बच्चन के मधुकाव्य पर भी पड़ा है। खैयाम ने जीवन की नश्वरता, यौवन की क्षणभंगुरता और मृत्यु की अनिवार्यता के बोध की पीठिका पर निर्बन्ध प्रणयावेश का गायन किया था। पर बच्चन इस बोध को भुलाने के लिए अपने मधु स्वप्न का विन्यास करते है और इस प्रकार काल्पनिक तोष प्राप्त करने का उपक्रम करते हैं। 'मधुशाला' में इसी काल्पनिक तोष की उपलब्धि का प्रयास निहित है। यहॉ कवि मधु–प्रतीकों के रहस्य और अर्थ का उद्घाटन करता है। पर प्रतीकों के अर्थ के विषय में कवि की धारणा निरन्तर बदलती रहती है। सबसे पहले कवि अपने मृदु भावों को हाला कहता है, पर दूसरे ही क्षण वह अपने प्रियतम को ही हाला मान बैठता है। इसी प्रकार कभी तो वह अपने हाथों से अपने प्रियतम को हाला पिलाने की बात करता है तो तुरन्त बाद वह खुद को प्रियतम रूपी हाला का प्याला बना देता है–

'मृदु भावों के अंगूरों की<br>
आज बना लाया हाला,<br>
प्रियतम, अपने ही हाथों से<br>
आज पिलाऊँगा प्याला,<br>
प्रियतम तू मेरी हाला है<br>
मैं तेरा प्यारा प्याला,<br>
अपने को मुझमें भरकर तू<br>
बनता है पीने वाला।'[13]

खेयाम और बच्चन की प्रतीक–योजना के सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि खैयाम के प्रतीक सुस्थिर और निश्चित अर्थ के व्यंजक हैं, पर बच्चन के प्रतीकों में एक धुँधलेपन और अस्पष्टता का अभास होता है।

'मधुबाला' में अपेक्षाकृत अधिक काव्यात्मकता है। इसका प्रारंभ मधुबाला के आत्मकथ्य से होता है। यहॉ यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चन जागतिक संघर्ष से बचने के लिए अन्तर्मुखता के स्वप्निल लोक में विहार कर रहे हैं। मधुबाला कहती है–

'यह स्वप्न–विनिर्मित मधुशाला
यह स्वप्न–रचित मधु का प्याला
स्वप्निल –तृष्णा स्वप्निल हाला
स्वप्नों की दुनिया में भूला
फिरता मानव भोला–भाला।'[14]

'मधुबाला' की यह घोषणा कवि की समूची काव्य–सृष्टि को स्वप्न व्यापार बना देती है।

'इस पार और उस पार' नामक कविता भी हृदय ग्राही है। इस कविता में बच्चन वर्तमान की पीठिका में भविष्य के प्रति सन्देह प्रकट करते हैं और संदिग्ध भविष्य की तुलना में आसन्न वर्तमान को अधिक महत्वपूर्ण और सारगर्भ समझते हैं। असल में यह काव्य जीवन और मृत्यु के विचार स्पन्दनों से संग्रथित है। कवि यहॉ नियतिवादी दृष्टि अपनाता है और जीवन के विषय में अपने भावुक विचारों का प्रकाशन करता है–

'इस पार प्रिये मधु है, तुम हो
उस पार न जाने क्या होगा ?
× × × × ×
प्याला है पर पी पायेंगे
है ज्ञात नहीं इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है

असमर्थ बना कितना हमको–

× × × × ×

अब तो हम अपने जीवन भर

उस क्रूर कठिन को कोस चुके,

उस पार नियति का मानव से

व्यवहार न जाने क्या होगा ?'[15]

यहॉ कवि मृत्यु के बाद की स्थितियों की कल्पना करता है और जीवन का एक विषादमय चित्र प्रस्तुत करता है।

बच्चन के मधुकाव्य का शीर्ष 'मधुकलश' में घटित होता है। मधुकलश मानव देह का प्रतीक है और उसके अंतराल में जीवन की तरंगाकुल सरिता लहरा रही है। इस संग्रह में 'कवि की वासना', नामक गीत है, जिसमें कवि ने अपने आलोचकों को उत्तर दिया है। कवि के उद्गारों में काफी प्रभाव और ओज है तथा वह पूरी तीव्रता के साथ संसार पर प्रहार करता है–

'प्राण प्राण से सकें मिल किस तरह, दीवार है तन,

काल है घडियॉ न गिनता बेड़ियों का शब्द झन झन,

वेद लोकचार प्रहरी ताकते हर चाल मेरी,

बद्ध इस वातावरण में क्या करे अभिलाष यौवन।

अल्पतम इच्छा यहाँ, मेरी बनी बंदी पड़ी है

विश्व क्रीड़ास्थल नहीं रे, विश्व कारागार मेरा।

कर रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।'[16]

बच्चन के कृतित्व में भावोन्मेष का युग 'निशा–निमंत्रण' 'एकान्त–संगीत' और 'आकुल–अन्तर' तक फैला हुआ है। यह एकाकीपन और विरहान्धकार का युग है। बच्चन ने लिखा है– 'भाग्य के आघात से मैं बच नहीं सका। प्रेम की दुनिया धोखा दे गयी, पत्नी का देहावसान हो गया, जीवन विंश्रृखल हो गया। साल भर के लिए लिखना बिलकुल बन्द रहा। फिर मेरी वेदना, मेरी निराशा और मेरा एकाकीपन 'निशा–निमंत्रण' 'एकान्त–संगीत' और 'आकुल–अन्तर' के लघु–लघु गीतों में मुखरित हुआ है।'

'निशा–निमंत्रण' एक वियोग काव्य है। यह कवि के हृदयानुभूति की विशुद्ध अभिव्यक्ति है। इस संग्रह के गीतों में जहॉ एकाकीपन का बोध, अस्तित्व की निस्सहाय स्थिति, स्मृति–आसंग और विरह–क्रन्दन है, वहॉ प्रकृति की दृश्यमयी पीठिका पर मानवीय भावनाओं का आख्यान भी है। कवि की विविध भावनायें एक–एक गीत में बड़ी सघनता से प्रकट हुई हैं। प्रत्येक गीत एक–एक मुखर भावना है। गीत के चरणों के साथ ही भावना की सघनता भी बढती जाती है और अन्त में कवि पाठक को भावना के शिखर पर लाकर छोड़ देता है। 'निशा–निमंत्रण' के प्रथम गीत में ही कवि की भावना का यह क्रमिक विकास दिख जाता है–

'दिन जल्दी जल्दी ढलता है
हो जाय न पथ में रात कहीं,
मजिल भी तो है दूर नहीं–
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी जल्दी चलता है,
बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीडों से झॉक रहे होंगे–
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है।
मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल ?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है।
दिन धीरे–धीरे ढलता है।'[17]

एक विशिष्ट गीत में कवि अपनी सहज–सरल भावधारा के माध्यम से दार्शनिक निष्कर्षों पर पहुँचता है। यहाँ वह सृष्टि–प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्रयोजनहीनता की बात सोचता है और विधाता को कुम्भकार के रूप में सम्बोधित करते हुए कहता है–

'अब मत मेरा निर्माण करो।

तुमने न बना मुझको पाया,

युग–युग बीते, मैं घबराया,

भूलों मेरी विह्वलता को, निज लज्जा का तो ध्यान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।

इसी चक्की पर खाते चक्कर,

मेरा तन–मन–जीवन जर्जर,

हे कुम्भकार, मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।

कहने की सीमा होती है,

सहने की सीमा होती है,

कुछ मेरे भी वश में, मेरा कुछ सोच समझ अपमान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।'

'एकान्त–संगीत' में जीवन की निस्सारता की प्रतीति अधिक है। कवि कभी तो एकाकीपन के घने धुंधलके में खो जाता है और कभी वह जीवन को व्यर्थ समझता है। उसे अपने जीवन के प्रयोजन का बोध नहीं हो पाता। वह यह नहीं समझ सकता कि किस दिशा की ओर बढ़ना चाहिये। यह किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति है। वह जीवन को एक अभिशाप के रूप में देखता है और उसका मन विषाद से पूरित हो जाता है।

'निशा–निमंत्रण' और 'एकान्त संगीत' की भूमिका ही 'आकुल–अन्तर' में विकसित हुई है। कवि की हृदयानुभूति का सर्वथा सहज आस्फालन 'निशा–निमंत्रण' के गीतों में हुआ है। 'एकान्त संगीत' में कवि की भावना का स्वच्छन्द प्रवाह घनीभूत अवसाद के आवरण से सर्वथा मुक्त नहीं है। किन्तु 'आकुल–अन्तर' में बच्चन अपने आपको दुहराते हैं। ऐसा लगता है कवि दीर्घकालिक अन्तरानुशीलन से ऊब चुका है और वह प्रत्यावर्तित होकर नयी काव्यानुभूति की प्राप्ति के लिए बहिर्जगत का अनुशीलन करता है।

बहिर्जगत की ओर बच्चन का प्रत्यावर्तन आन्तरिक क्षयग्रस्तता को प्रच्छन्न करने के लिए हुआ है। कवि बाहरी संसार की स्थूल घटनाओं को कविता को शैली में प्रकट करके अपनी छीजती हुई अनुभूत्यात्मकता पर आवरण डालना चाहता है। कवि का यह प्रयास सबसे पहले 'सतरंगिनी' की कविताओं में दिखाई देता है। सौन्दर्य–बोध के अवसन्न होने के कारण यहाँ इतिवृत्तात्मकता की प्रवृत्ति काफी उभर कर आयी है और कविता में अभिधा का बोझिल वातावरण छा गया है। 'बंगाल का काल', 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' की कविताएं इसी दिशा की ओर संकेत करती हैं।

बच्चन के प्रणय–प्रगीत 'मिलन–यामिनी', 'प्रणय–पत्रिका', 'धार के इधर–उधर' और 'आरती और अंगारे' की कविताओं में निहित हैं। इन प्रगीतों की रचना कवि के परिवर्तित जीवन–क्रम के साथ स्वाभाविक रूप से सम्बद्ध होकर हुई है। इन गीतों में कवि पुनः निजी भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। इनका स्वर अभिधात्मक है और इनका स्वरूप कवि की प्रारंभिक रचनाओं के समान ही इतिवृत्तात्मक है।

'मिलन–यामिनी' कवि की प्रायानुभूति के विविध पक्षों से आकलित है। कवि अपनी प्रेयसी को अपने मन की वीणा के स्लथ तारों को कसने का अनुरोध करता है ताकि वह फिर से जीवनोल्लास से पूरित गीत गा सके।

'प्रणय–पत्रिका' में कवि की प्रवास कालीन रचनाएँ संग्रहीत हैं। इस संग्रह की कविताओं में बच्चन अपने बीते दिनों की स्मृति करते हैं और अपनी प्रेयसी को प्रणय–पत्रिका भेजते हैं। प्रेम पत्र के समान इसमें कवि अपनी प्रियतमा के साथ गुजारे गये समय की याद करता है और अपनी त्रुटियों पर पश्चाताप करता है–

'रात आधी, खींचकर मेरी हथेली
एक उँगली से लिखा था, प्यार तुमने।

फासला था कुछ हमारे विस्तरों में
और चारों ओर दुनिया सो रही थी,
तारिकायें ही गगन को जानती थीं
जो दशा दिल की तुम्हारे हो रही थी,
मैं तुम्हारे पास होकर दूर तुमसे
अधजगा सा और अधसोया हुआ था।'[18]

'प्रणय–पत्रिका' के गीत एक विशिष्ट प्रवास कालीन मनःस्थिति से उपजे हैं। यही मनः स्थिति 'आरती और अंगारे' की कविताओं में और अधिक विकसित हुई है।

## जनमानस की व्यापक भावभूमि

बच्चन की काव्य–प्रतिभा अनेकानेक प्रत्यन्तरों से होती हुई अन्त में शिल्पाग्रही काव्य रचना में व्यस्त हो गयी है। मधुकाव्य बच्चन की प्रतिभा के विकास चिन्हों से युक्त है। भावोन्मेष के काल में वे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदेय हिन्दी साहित्य को दे देते हैं। बहिर्मुखी काव्य और प्रणय गीतों में उनकी प्रतिभा का उतार दृष्टिगत होता है। बच्चन इसीलिए पुनः प्रत्यावर्तित होते हैं और वस्तु और रूप की दृष्टि से नयी काव्य–संवेदना और नये रूप–विधानों का आयोजन करते हैं।

'बुद्ध और नाचघर' कवि के इसी दिशान्तर का सूचक है। इस संग्रह की कविताओं का रूप विधान पूर्ववर्ती काव्य के रूप विधान से आत्यन्तिक रूप से भिन्न है। कवि अपनी संवेदना की परिधि का विस्तार करता है और अन्तर्मुखता की केंचुली को त्याग कर अपनी कल्पना–विहंगिनी को व्यक्तिमत्ता के पिंजरे से मुक्त करता है। वह अपनी कल्पना को जनमानस की व्यापक भाव–भूमि पर अवतरित करता है। 'शैल विहंगिनी' नामक कविता इस दृष्टि से कवि का आत्मकथ्य ही है–

'मत डरो

ओ शैल की सुन्दर, मुखर, सुखकर
विहंगिन
मैं पकड़ने को तुम्हें आता नहीं हूँ,
जाल फैलाता नहीं हूँ,
पींजरे में डाल तुमको
साथ ले जाना नहीं मैं चाहता हूँ–
भूल मुझको
आई याद
यौवन के प्रथम पागल दिनों की।
एक तुम सी थी विहंगिन
मैं जिसे फुसला–फँसाकर
ले गया था पींजरे में–
बात मेरी सुन हँसी वह
शब्द जालों में फँसी वह
पींजरे में डाल उसको
गीत किरणों के,
कुसुम के
औ, सुरभि के
अनगिनत मैंने लिखे
उसके लिए पर
गंध रस भीनी हुई रंगीनियाँ
उड़ती हुई उसकी निरन्तर।'[19]

इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'बुद्ध और नाचघर' है। इस लम्बी कविता मे कवि ने बुद्ध की जीवन साधना की पृष्ठभूमि में आधुनिक मानव के अनाचार का आख्यान किया है। इस कविता का प्रभाव विरोधाभासों में उत्पन्न होता है। यहाँ एक तीखी व्यंग्य ध्वनि भी निहित है जो आधुनिक युग के द्वैत को प्रकट करती है। यह युग आदर्श और यथार्थ, स्वप्न और कार्य, चिन्तन और व्यवहार के विरोधाभास का युग है। बच्चन ने इसी विरोधाभास को डांसिंग हाल में रखी गयी बुद्ध की प्रतिमा के आधार पर मूर्त करने का प्रयास किया है–

'और आज

देखा है मैंने,

एक ओर है तुम्हारी प्रतिमा

दूसरी ओर है डांसिंग हाल

हे पशुओं पर दया के प्रचारक,

अहिंसा के अवतार

परम विरक्त,

संयम साकार

मची है तुम्हारे सामने रूप–यौवन की ठेल–पेल,

इच्छा और वासना खुलकर रही है खेल,

गाय–सुअर के गोश्त का उड़ रहा है कबाव

गिलास पर गिलास

पी जा रही है शराब–

पिया जा रहा है पाइप, सिगरेट, सिगार

धुँआधार,

लोग हो रहे हैं नशे में लाल,

युवकों ने युवतियों को खींच

लिया है बाहों में भींच

छाती और सीने आ गये हैं पास,

होठों–अधरों के बीच

शुरु हो गयी है बात,

शुरु हो गया है नाच,

आर्केस्ट्रा के साज

ट्रपेंट, क्लैरिनेट, कारनेट–पर साथ

बज उठा है ज़ाज

निकलती है आवाज,

मद्यं शरणं गच्छामि

मांसं शरणं गच्छामि

डांसं शरणं गच्छामि।'[20]

बच्चन लोकानुभूति को भी अपने काव्य का माध्यम बनाते हैं। वह लोकगीतों की उल्लासमयी स्वर–लहरी को पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं। 'त्रिभंगिमा' के गीत उनके इसी प्रयास का प्रतिफल है। 'त्रिभंगिमा' में तीन शिल्पों में ग्रंथित कविताएँ संग्रथित हैं। उनकी पहली भंगिमा लोक–धुनों के आधार पर लिखी गयी कविताओं से निर्मित होती है। दूसरी भंगिमा के अन्तर्गत कवि की आत्मपरक गीतात्मक रचनाएँ हैं, जहाँ कवि पुनः अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति को चरितार्थ करने का प्रयास करता है और तीसरी भंगिमा का निर्माण मुक्त छन्द में लिखी गयी रचनाओं के द्वारा होता है। 'त्रिभंगिमा' की पहली भंगिमा के गीत लोक गीतों की भावना के निकट हैं तथा कवि ने इनकी मूल संवेदना को लोकगीत के समान ही सहज रखा है। ये कवि के गीतात्मक प्रयोग हैं। वह सहगान, एकलगान तथा विविध प्रादेशिक लोकधुनों के आधार पर अपने बहुविधि प्रयोगों का समापन करता है। इनमें से कुछ गीत अत्यधिक लोकप्रिय हुये हैं। 'सोनमछरी' गीत का विधान हृदयाकर्षक है। कवि इस गीत की प्रेरणा महाभारत के एक श्लोक से प्राप्त करता है– 'संत्यज्य मत्स्य रूपं सा दिव्यं रूपमवाप्य च।' इस गीत का विधान उत्तर प्रदेश की

'ढिंढिया' लोकधुन के आधार पर हुआ है। यह सहगान है। स्त्री अपने पति से 'सोनमछरी' लाने का अनुरोध करती है। उसका पति उसे समझाता है, पर वह अपना हठ नहीं छोड़ती और पति को सोने की मछरी लाने के लिए जाना पड़ता है। पर जब वह वापस लौटता है तो उसकी डोंगी में सोनमछरी की जगह सोने की परी होती है। यह देखकर स्त्री के दुख का ठिकाना नहीं रहता। वह अपनी गलती पर पश्चाताप करती है और कहती है–

'जो है कंचन का भरमाया,
उसने किसका प्यार निभाया,
मैंने अपना बदला पाया,
मॉगी मोती की लरी, पाई ऑसू की लरी!
पीया, आँसू की लरी, पिया, ऑसू की लरी!
मॉगी मोती की लरी, पाई ऑसू की लरी!'[21]

बच्चन के काव्य जीवन में अनेक मोड़ आये हैं और वह बड़ी सजगता से अपनी अनुभूति को काव्यरूप देते हैं। यदि बच्चन की काव्य–कृतियों की क्रमागत विवेचना की जाय, तो हमें उसमें कवि की काव्य–प्रतिभा के धारावाहिक विकास का एक सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। उनका काव्य शिल्प भी अनेक रुपान्तरों के बीच से गुजरा है। वह उत्तर स्वच्छन्दतावाद काल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं।

## रामधारी सिंह 'दिनकर'

### राष्ट्रीय चेतना और रोमांस की सम्मिलित प्रवृत्ति

उत्तर स्वच्छन्दतावादी कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर' का विशिष्ट स्थान है। छायावाद की उपलब्धियॉ उन्हें विरासत में मिलीं, पर उनके काव्योत्कर्ष का उषःकाल छायावाद की रंग भरी सन्ध्या का समय था।

दिनकर में रोमांस और राष्ट्रीय चेतना की सम्मिलित प्रवृत्तियॉ मिलती हैं और सच्चाई तो यह है कि एक को स्वस्थ भूमि देकर और दूसरे को सांस्कृतिक दिशा देकर, दोनों के सम्मिलन से उन्होंने अपनी

काव्य यात्रा पूरी की। 'उर्वशी' में उनकी स्वच्छन्दतावादी वृत्ति आदर्शीकृत होती है और 'कुरुक्षेत्र' में सांस्कृतिक–राष्ट्रीय चेतना मौजूद है। दिनकर कभी 'रेशमी नगर' जैसी कविताएँ लिखते हैं जिसमें दिल्ली के नये भोग विलास का जिक्र है और कभी आक्रोशी मुद्रा में आने पर 'परशुराम की प्रतीक्षा'। आरम्भिक काव्य में श्रृंगार और हुंकार की सम्मिलित भूमि देखी जा सकती है।

दिनकर की प्रमुख काव्य कृतियाँ इस प्रकार हैं– 'रेणुका', 'हुंकार', 'उर्वशी', 'रसवन्ती', 'कुरूक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते', आदि।

'रेणुका' में दिनकर अपने कवि को अधिक वास्तविक भूमि पर लाने का प्रयास करते हैं–

'व्योम कुंजों की परी अयि कल्पने!
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं
उड़ न सकते हम धुमैले स्वप्न तक
शक्ति हो तो आ, बसा अलका यहीं!'[22]

काव्य–संकलन के आरम्भ में 'युगधर्म' और 'जागृति हुंकार' की बात कही गयी है। 'हिमालय के प्रति' कविता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की खुली अभिव्यक्ति हुई है। कहा गया है कि 'पुण्यभूमि पर कराल संकट आन पड़ा है और व्याकुल सुत तडप रहे हैं...।' आवाहन है– 'पर फिरा हमें गाण्डीव, गदा, लौटा दे अर्जुन, भीम वीर...।' 'पाटलिपुत्र' अथवा 'मिथिला' में नारियाँ अपना पिछला वैभव तलाशती हैं। यह स्थिति के प्रति रोमानी दृष्टि है– मिथिला नगरी का दर्द है–

'मैं क्षीण प्रभा, मैं हत आभा
सम्प्रति भिखारिणी मतवाली
खण्डहर में खोज रही अपने
उजड़े सुहाग की हूँ लाली।'[23]

'रेणुका' दिनकर की प्रयोगकालीन रचना है। इसमें उनके मूल्य निश्चित नहीं हो सके हैं। अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी काव्य प्रवृत्तियों में किस ओर उनका झुकाव अधिक है यह स्पष्ट नहीं होता। एक

ओर क्रान्ति का प्रलयंकारी स्वर है तो दूसरी ओर छायावाद की कुंठा, वेदना और नैराश्य भी है। 'रेणुका' के इन्हीं सूत्रों का विकास दिनकर की परवर्ती काव्य कृतियों में हुआ है।

दिनकर की प्रारम्भिक रचनायें अधिकतर भावावेश प्रेरित हैं। यदि रोमाण्टिक काव्य के विषय में यह मान्यता स्वीकार कर ली जाय कि वह सम्भावनाओं को देखकर नहीं चलता, उसमें वांछनीय–अवांछनीय, सम्भावना–असम्भावना का प्रश्न नहीं उठता, तो यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय प्रतिपाद्य की ओर भी दिनकर की प्रारम्भिक दृष्टि रोमाण्टिक कवि की ही रही है। 'रेणुका' में उनकी राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात ही हो सका है निर्धारण नहीं। उसके तीन मुख्य रूप हैं। प्रथम रूप है– विध्वंसक क्रांति के आह्वान का, जिसकी प्रतिनिधि कविता है 'ताण्डव'। रुद्र प्रतीक मात्र हैं। रुद्र का आह्वान जनता की रौद्र भावनाओं का आह्वान है जिसे कवि अपने विस्फोटक स्वर द्वारा अत्याचार, आडम्बर और अहंकार का नाश करने की चुनौती देता है। यह ध्वंस और विनाश संभावनाओं की ओर ध्यान नहीं देता। कवि बुद्धि द्वारा उसे संतुलित नहीं करता, उसके ध्यान योग में तो केवल श्रृंगीनाद, प्रलय के बादल, अग्नि और तूफान, डगमगाते हुये पर्वत हैं– जो हिंसक क्रांति के प्रतीक हैं। यह क्रान्ति, यह ज्वाला अव्यवस्था फैला सकती है – आग लगा सकती है, परन्तु समस्या का अंतिम समाधान नहीं बन सकती। फिर भी ताण्डव की क्रान्ति का प्रतीकात्मक महत्व है। वह नाश जिस पर नव–निर्माण की नींव न पड सके, जो भूकम्प, बाढ़ बनकर ही रह जाये, स्थायी महत्व की वस्तु तब तक नहीं हो सकता जब तक उसकी परिणति किसी उदात्त लक्ष्य में न होती हो। ताण्डव की क्रान्ति में इस उदात्त लक्ष्य का बिलकुल अभाव नहीं है। प्रलय के बादलों की गड़गड़ाहट, अग्निवर्षा की ज्वाला, पर्वतों की डगमगाहट में उसका स्वर प्रच्छन्न होते हुए भी शक्तिपूर्ण है –

'लगे आग इस आडम्बर में
वैभव के उच्चाभिमान में,
अहंकार के उच्च शिखर में
स्वामिन अन्धड़ आग बुला दो,
जले पाप जग का क्षण–भर में।'[24]

अतीत के प्रति मोह और वेदना को भी दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। 'रेणुका' में इस पक्ष को बहुत प्रधानता दी गयी है। अतीत की ओर आसक्ति से देखने की प्रवृत्ति को दिनकर ने छायावादी संस्कार माना है। उन्होंने लिखा है– 'छायावादी कविता का मूलाधार भावुकता थी और भावुकता जब वर्तमान से असन्तुष्ट हो जाती है तब, स्वभावतः यह अतीत की ओर लालसा से दौडती है।'[25] दिनकर के अतीत–मोह का स्रोत तो राष्ट्रीय–सांस्कृतिक और छायावादी दोनों ही काव्य–धाराओं में था, परन्तु उसके प्रति करुणा और अवसाद के भाव मूलतः छायावादी कविता से ही प्राप्त हुये थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। 'हिमालय', 'मिथिला', 'पाटलिपुत्र की गंगा' इत्यादि कवितायें इस भावधारा की प्रमुख रचनायें हैं, जिनमें सामान्यतः भारत की ऐतिहासिक गरिमा, प्राकृतिक सौन्दर्य, भौगोलिक महत्व और सांस्कृतिक वैभव की अभिव्यक्ति की गयी है।

'रेणुका' के प्रतिपाद्य विषयों की दूसरी प्रमुख धारा वह है जिसमें उनकी काव्य–चेतना कला के यथार्थ मूल्यों की ओर उन्मुख होती है। इस भाव–धारा की प्रतिनिधि कवितायें हैं– 'कविता की पुकार', 'कला' , 'तीर्थ' और 'कवि'। 'कविता की पुकार' में उनकी कविता छायावाद के स्वप्निल नील कुंजों से बाहर आकर, नालन्दा और वैशाली के खण्डहरों से बाहर वनफूलों की ओर जाने की कामना करती है, कल्पना और इतिहास को छोड़कर यथार्थ और वर्तमान से सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। श्रृंगार और वैभव से विमुख होकर तृण–कुटियों में प्रवेश करना चाहती है–

विद्युत छोड़ दीप साजूँगी, महल छोड तृण–कुटी प्रवेश,
तुम गांवों के बनों भिखारी, मैं भिखारिणी का लूँ वेश।

छायावाद की बौद्धिक कल्पना और अप्सरा–लोक को छोड़कर वह गॉव के सहज अकृत्रिम वातावरण में उतरना चाहती है– जहॉ स्वर्णांचला संध्या–श्याम परी खेतों में उतर रही हो, हरी घास को रौंदती हुई गायें रोमन्थन करती हुई आ रही हों। वह ग्रामबाला के रूप, सौन्दर्य और सुहाग के गीत गाना चाहती है–

'पनघट से आ रही पीतवसना युवती सुकुमार
किसी भॉति ढोती गागर–यौवन का दुर्वह भार।

बनूँगी मैं कवि! इसकी मॉग, कलश, काजल, सिंदूर सुहाग।'[26]

ऐसे स्थलों पर छायावादी अभिव्यक्ति की चित्रात्मकता और प्रकृति पर मानवीय भावनाओं के आरोपण की शैली तो प्रयुक्त हुई है, परन्तु समष्टि मूलक प्रतिपाद्य के कारण उनकी दृष्टि व्यापक हो गयी है।

'रेणुका' के प्रतिपाद्य का तीसरा मुख्य सूत्र है– निवृत्तिमूलक वैयक्तिक चेतना का। इस तरह की प्रतिनिधि कवितायें हैं – 'परदेशी', 'उत्तर में', 'जीवन–संगीत', और 'वैभव की समाधि पर'। इन सभी कविताओं में उनकी दृष्टि श्मशान, चिता, कब्रों और खण्डहरों पर जाकर अटक गई है। मृत्यु और नाश के उपकरण उनके लिए सत्य बन गये हैं और जीवन के तन्तु सारहीन, कहीं–कहीं पर इस असारता के प्रति उनकी दृष्टि में किशोर–काल्पनिकता का तत्व अधिक हो गया है, और यह सारा दुखवाद एक संवेदनशील युवक का दिवास्वप्न सा जान पड़ने लगता है। जैसे–

'मैं न रुकूँगा इस भूतल पर
जीवन यौवन प्रेम गॅवाकर,
वायु, उडाकर ले चल मुझको
जहॉ कहीं इस जग से बाहर।'[27]

'रेणुका' की कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जिनमें कविता के लौकिक प्रतिपाद्यो को छोड़कर दिनकर परियों के देश में पहुॅच गये हैं । वे स्वच्छन्दतावादी युग के राष्ट्रीय कवि थे, इसलिए वैयक्तिक धरातल पर उन्होंने भी अपने अग्रज कवियों के समान काल्पनिक जगत के निर्माण में यथेष्ट सफलता प्राप्त की है। छायावाद की परी–कल्पना, और रहस्य तत्वों का समावेश 'रेणुका' की कुछ कविताओं में हुआ है। 'विश्व छवि' नामक कविता में दिनकर भी इसी रोमानी काव्य चेतना की ओर रुझान रखते दिखाई पड़ते हैं–

'मेरे काव्य–कुसुम से जग का हरा–भरा उद्यान बने,
मेरी मृदु कविता भावुक परियों का कोमल गान बने।
विधि से रंजित पंख मांग, मैं उड़–उड़ व्योम–विहार करुँ,

जग प्रांगण के बिखरे मोती से माला तैयार करूँ।'[28]

स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित इन कविताओं का दिनकर की कला–चेतना के राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) युग के पहले हिन्दी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित कविताएँ उपदेश प्रधान, विवरणात्मक और वर्णनात्मक होती थीं। इन उद्‌बोधनों और चेतावनियों में कला की रंगीनी नहीं थी। छायावाद युगीन राष्ट्रीय कवियों ने राष्ट्रीय कविता को उपदेश और उद्‌बोधन की नीरसता से निकालकर अनुभूति की शक्ति प्रदान की और जनता के साथ हिन्दी कविता का सम्बन्ध स्थापित किया। दिनकर उसमें सर्वप्रमुख थे।

'रेणुका' के प्रतिपाद्य विषय का अंतिम सूत्र है– श्रृंगार तथा नारी–भावना। श्रृंगारपरक कविताएँ कम हैं। 'प्रेम का सौदा' इसके उदाहरण के रूप में ली जा सकती है। अहं का पूर्ण विगलन तथा पूर्ण समर्पण ही इस कविता के अनुसार सच्चा प्रेम है–

'प्रेम रस पीकर जिया जाता नहीं,
प्यार भी जी कर किया जाता नहीं,
चाहिए उर–साथ जीवन–दान भी
प्रेम की टीका सरल बलिदान ही।'[29]

नारी–भावना तथा नारी और पुरुष के सम्बन्ध विश्लेषण की दृष्टि से 'रेणुका' की 'राजा–रानी' कविता महत्वपूर्ण है। यहाँ दिनकर की काव्य चेतना के उस अंश का प्रथम सूत्र मिलता है जिसकी चरम परिणति 'उर्वशी' में हुई है।

## हुंकार : राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों का स्थिरीकरण

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों का स्थिरीकरण 'हुंकार' में हुआ। 'रेणुका' में उनकी काव्य चेतना इतिहास के खण्डहरों और संस्कृति के अवशेषों पर रो रही थी। अब जैसे बीते हुये पर रोने की व्यर्थता को समझकर उन्होंने वर्तमान से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के विकट संघात से उद्वेलित होकर दिनकर की काव्य–चेतना अग्नि की चिनगारियों से अपने स्वप्न सजाने को आगे बढ़ी, वह स्वप्न जिसमें सिन्धु का गर्जन और प्रलय की हुंकार थी, जहाँ बँधा

तूफान रास्ता पाने के लिए विकल था, जहाँ मौन हाहाकार विश्व को हिला देने को व्यग्र हो रहा था। अब दिनकर 'नवल उर में विपुल उमंग भर कल्पना की मधुरिमा से मंडित पुलकित राजकुमार' नहीं रह गये थे, अब तो वह क्रान्ति की विभा से आलोकित ज्योतिर्धर थे, जिनके भावों और कल्पना की अरुणिमा ने धरती के अन्धकार को चुनौती दी–

'जड़ को उडने की पॉख दिए देता हूँ,
चेतन के मन को ऑख दिये देता हूँ।
स्वर को कराल हुंकार बना देता हूँ,
यौवन को भीषण ज्वार बना देता हूँ।
शूरों के दृग अंगार बना देता हूँ,
हिम्मत को ही तलवार बना देता हूँ।
लोहू को देता हूँ वह तेज रवानी,
जूझती पहाड़ों से अभय जवानी।'[30]

'हुंकार' संग्रह की प्रमुख कविताएँ असमय आह्वान, साधना और द्विधा स्वर्ग–दहन, आलोकधन्वा, चाह एक, दिगम्बरि, अनल किरीट, भीख, विपथगा, यज्ञोन्मुखी, महामानव की खोज, व्यक्ति, भविष्य की आहट, दिल्ली आदि हैं। 'हुंकार', 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्व गीत' का प्रकाशन प्रायः साथ–साथ हुआ है। रसवन्ती में श्रृंगार चेतना प्रधान है।

## रसवन्ती : श्रृंगार चेतना की अभिव्यक्ति

दिनकर की काव्य–प्रेरणा में वैयक्तिक और समष्टिगत अनेक विरोधी और अविरोधी तत्व साथ–साथ विद्यमान रहे हैं। क्रांतिकारी और राष्ट्रीय कवि के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद 'रसवन्ती' की रसमयी भावनाओं को सार्वजनिक रूप से जनता के समक्ष रखने में दिनकर का संकोच और भय स्वाभाविक था, क्योंकि समष्टि से व्यष्टि की ओर लौटना प्रायः उसी रूप में ह्रास का चिन्ह माना जाता है जैसे कि अध्यात्म साधना से विरत और च्युत होकर कोई व्यक्ति कंचन और कामिनी की ओर लौट आये। पथभ्रष्ट साहित्यकार की स्थिति योग भ्रष्ट साधक की स्थिति से भिन्न नहीं होती। 'रसवन्ती' को प्रकाश में

लाते समय दिनकर के मन में यही संकोच था। अनेक आलोचकों ने 'रसवन्ती' के दिनकर को पलायनवादी मानकर उन पर यथार्थ और संघर्ष से कायरतापूर्वक मुँह मोड़ लेने का दोषारोपण किया है। दिनकर की काव्य–चेतना में व्यष्टि और समष्टि, सुन्दर और सत्य, ओज और प्रेम, प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ–साथ चले हैं। 'द्वन्द्वगीत' का धुँआ, 'हुंकार' की आग और 'रसवन्ती' का रस उनके हृदय में साथ–साथ विद्यमान रहे हैं। दिनकर ने अपनी काव्य–चेतना के इस वैयक्तिक रूप को बिना किसी हिचक और लज्जा के स्वीकार किया है–

'संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गर्जन–तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएँ लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो। यही कारण था कि जिन दिनों 'हुंकार' की कवितायें लिखी जा रही थीं, उन्हीं दिनों मैं 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्वगीत', की भी रचना कर रहा था और अजब संयोग की बात है कि सन् 1939 ई0 में ही ये तीनों पुस्तकें एक वर्ष के भीतर–भीतर प्रकाशित हो गयीं और सुयश तो मुझे 'हुंकार' से ही मिला किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवन्ती' में बसती है।'[31]

'रसवन्ती' में गिरि–हृदय के व्याकुल निर्झरों को गति मिली है। बडे यत्न से छिपाये हुये भाव मुकुलों को हृदय से नीचे उतारते हुये दिनकर के मन में कातरता है। 'गीत–शिशु' नामक कविता में यह भाव–स्निग्ध कातरता बडी आर्द्रता के साथ व्यक्त हुई है। कल्पना के ये शिशु संसार की रीति–नीति नहीं जानते, पृथ्वी की रागद्वेषमयी अकरुणा से उनकी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी, दिनकर का मन इसी आशंका से युक्त है। उडु से द्युति, बाल–लहर से गति और मलय से सौरभ लेकर उनका रूप संवारा गया है, सांसारिकता के बोध से अनभिज्ञ वे केवल धूल से खेलना जानते हैं, रेणु और रत्न का भेद उन्हें नहीं मालूम। परन्तु सरस्वती की आराधना में पुष्प चढ़ाने के लिये कवि पिता ने साहस करके उन्हें पृथ्वी पर उतार दिया है। नेत्रों में विस्मय तथा शील और मन में अभिलाषा लिये वे पृथ्वी पर उतर पड़े हैं। उनके प्रति मोहग्रस्त दिनकर के हृदय की एक आवाज है जिसमें उनका आर्द्र–कोर हृदय बोल रहा है–

'छूकर भाल, वरद कर से, मुख चूम विदा दो इनको,
आशिष दो ये तरल गीत शिशु विचरे अजर–अजय से।'[32]

'रसवन्ती' कविता में यह शब्द दिनकर की काव्य–प्रेरणा के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसमें कोमल, आर्द्र तथा ओज–प्रखर तत्वों के आरोह–अवरोह और उत्थान–पतन का विवेचन किया गया है। कभी उन्होंने कोकिल से माधवी कुंजों का मधुराग सीखा और कभी बाड़व की दाहक अग्नि अज्ञात ही उनके कंठ में आकर बैठ गई, कभी प्रकृति के सुकुमार उपकरण उनके हीरे से कठोर दिल को चीर गये और कभी अतीत के खण्डहर में बैठकर वे विकल मानवता के कल्याण का मार्ग ढूंढते रहे। दलित देशो का हाहाकार और विज्ञान की आग में जलता हुआ मानव भी उनकी कविता का विषय बना। इस प्रकार व्यष्टि और समष्टि, बिन्दु और सिन्धु दोनों को ही समेट कर उनकी 'रसवन्ती' आगे बढ़ी। कभी ऐसे भी क्षण आये जब सिन्धु की विशालता विलीन हो गई और बिन्दु की कोमल स्निग्ध गहराइयो में ही उसने अवगाहन किया। वैयक्तिक सुख–दुःख, मधुमास का पराग, यौवन काल की उष्णता, प्रेम की शीतलता और रूप की चकाचौंध में कुछ दिनों के लिए उनकी 'रसवंती' लजीली, शर्मीली, कोमलांगी, तन्वगी ही रह गयी, 'रसवन्ती' में उनकी कला–चेतना का यही मधुर कोमल रूप प्रधान रूप से व्यक्त हुआ है।

दिनकर की अगली रचना 'द्वन्द्व गीत' है। इसमें राग–विराग का द्वन्द्व, कर्मवाद और पलायनवाद का द्वन्द्व और आस्था–अनास्था का द्वन्द्व चित्रित है। इसमें दिनकर के जीवन पर किये गये प्रयोगों और उसके फलस्वरूप प्राप्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है।

## कुरुक्षेत्र : युद्ध और शान्ति की समस्या

दिनकर की एक महत्वपूर्ण रचना 'कुरुक्षेत्र' है। यह एक युद्ध काव्य है। दिनकर संभवतः हिन्दी के पहले कवि हैं, जिहोंने युद्ध को अपनी कविता का प्रतिपाद्य बनाया, उसके मूल कारणों तथा पक्ष–विपक्ष का विश्लेषण करके उससे उत्पन्न समस्याओं के समाधानों की ओर इंगित किया। द्वितीय महायुद्ध के भीषण संहार, हाहाकार और त्रास ने दिनकर को इस विषय पर सोचने के लिए बाध्य किया। अपनी दुर्बलताओं और परिसीमाओं से लड़ने में ही मनुष्य सबसे निरीह होता है। पारिवारिक परिस्थितियों की विषमताओं के दबाव से उन्हें युद्ध प्रचार विभाग में कार्य करना पड़ा। नियति का व्यंग्य देखिये कि जिस युवा कवि की कृतियॉ देश के लिए जेल जाने वाले नवयुवकों की जेबों में रहती थीं, जिसके सशक्त और ओजपूर्ण स्वर जनता में क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर रहे थे, वही कवि परिस्थितियों के हाथ का खिलौना बनकर

युद्ध–प्रचार में योग देने को अपना गला साफ कर रहा था। 'कुरुक्षेत्र' की रचना ही इस बात का प्रमाण है कि दिनकर का मन उन दिनों कितना द्वन्द्वग्रस्त रहा होगा।

'कुरुक्षेत्र' में दिनकर जी युद्ध के विषय में एक नया दृष्टिकोण लेकर आये। भले ही भारतीय और पाश्चात्य धारणायें पार्श्वभूमि और पृष्ठभूमि में हों, लेकिन स्थापनाएँ एवं संदेश उनके अपने हैं और वे व्यावहारिक, सार्वभौम और पूर्ण हैं।

'कुरुक्षेत्र' में युद्ध–शान्ति का प्रश्न है, पर संघर्ष से बचने का समर्थन नहीं है। काव्य में इन समस्याओं पर विचार करते हुये दिनकर वास्तविकता से पलायन नहीं करते। माना, युद्ध एक तूफान है जो भीषण विनाश करता है, पर आखिर इसका दायित्व किस पर है ? जब तक समाज में शोषण, दमन, अन्याय मौजूद है, तब तक संघर्ष अनिवार्य है और 'कुरुक्षेत्र' इसे बचा जाने को कायरता मानता है। तीसरे सर्ग में कवि ने इस विषय में विस्तृत विचार किया है। उसका कहना है कि कृत्रिम शांति का कोई मतलब नहीं है। शान्ति तभी शोभा पाती है जब सबको जीने के समान अवसर हों। न्यायोचित अधिकार माँगने से नहीं मिलता उसे लडकर लेना पडता है। सहिष्णुता, क्षमा, दया विजेता का शोभन धर्म है। पराजित जाति के लिए सहिष्णुता कलंक है–

'क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दंत हीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो।'

आसुरी शक्ति को आत्मशक्ति द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता–

'कौन केवल आत्मबल से जूझकर
जीत सकता देह का संग्राम है ?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा,
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।'

'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और शान्ति की समस्या पर विचार करते हुए दिनकर अपना वैचारिक दर्शन सामने लाते हैं कि अन्याय का विरोध होना चाहिए। पौरुष और कर्म जीवन संग्राम के लिए आवश्यक है। सामाजिक और आर्थिक वैषम्य मानवता के विकास में बाधक हैं। इनके निराकरण से ही दिनकर मानवता की मुक्ति की कल्पना करते हैं–

'न्यायोचित सुख सुलभ नहीं,
जब तक मानव मानव को,
चैन कहॉ धरती पर तब तक,
शान्ति कहॉ इस मन को ?
जब तक मनुज मनुज का यह,
सुख–भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा।'[33]

## उर्वशी : कामाध्यात्म की समस्या

'कुरुक्षेत्र' की तरह ही दिनकर का एक और विशिष्ट काव्य 'उर्वशी' है। इसे गीति नाट्य भी कहा गया है, यद्यपि इसमें नाट्य–तत्व कम है। इसका कथातत्व भी अत्यन्त झीना है, पात्रों की संख्या भी बहुत कम है। कथा के प्रारंभ में पुरुरवा की राजधनी प्रतिष्ठानपुर के नन्दन कानन में अप्सराओं का अवतरण होता है। यहीं पर उर्वशी–पुरुरवा के बीच प्रेम का अंकुर उगता है। द्वितीय अंक में पुरुरवा की राजमहिषी औशीनरी को इस प्रेम प्रपंच का समाचार मिलता है। तृतीय अंक में रति–चित्रों का अंकन हुआ है। इसका चित्रण अत्यन्त समारोह पूर्वक किया गया है। इसी के साथ प्रणय के पार जीवन की चरम उपलब्धि या मोक्ष की आकांक्षा भी अभिव्यक्त है। चौथे अंक में उर्वशी अपना नवजात शिशु च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्या को लालन–पालन के लिए सौंप देती है। पॉचवे अंक में सुकन्या उर्वशी–पुरुरवा के पुत्र आयु को प्रतिष्ठानपुर ले आती हैं। भरतमुनि का शाप प्रतिफलित होता है– उर्वशी अदृश्य हो जाती है और पुरुरवा संन्यास ले लेता है।

दिनकर ने पुरुरवा–उर्वशी की पौराणिक कथा के माध्यम से चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन नारी के प्रश्नों पर विचार किया है। दिनकर ने लिखा है– 'उर्वशी शब्द का कोशगत अर्थ होगा उत्कट अभिलाषा, अपरिमित वासना, इच्छा अथवा कामना और पुरुरवा शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जो नाना प्रकार का रव करे, नाना ध्वनियों से आक्रान्त हो। उर्वशी चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक तथा श्रोत्र की कामनाओं का प्रतीक है, पुरुरवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य।'[34]

'उर्वशी' की मुख्य समस्या कामाध्यात्म की समस्या है। पुरुरवा काम–पीडा से व्याकुल होकर उर्वशी के प्रेम में निमग्न हो जाता है। इस निर्बाध विलास में वह ऐन्द्रिय प्रेम तथा अतीन्द्रिय प्रेम के साथ–साथ परम तत्व के बारे मे भी सोचता है।

'उर्वशी' में काम समस्या का समाधान उन्नयन और सामंजस्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इसका प्रतिनिधित्व करने वाली घटनायें और पात्र गौण हैं। समस्या प्रधान कृति में मूल प्रभाव कई होते हैं और उनकी व्यंजना भी केवल नायक–नायिका द्वारा नहीं, अन्य पात्रों द्वारा भी की जाती है। पुरुरवा का संन्यास और उर्वशी का प्रत्यागमन किस समाधान की ओर संकेत करता है ? तृतीय अंक में चित्रित प्रवृत्तिमूलक प्रेम का समाधान देना कवि का ध्येय नहीं रहा है। आज के विचार दर्शन में जहॉ काम को जीवन की मूल प्रेरणा तथा जीवनेच्छा के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है, काम की प्रेरणा की समाप्ति और अभाव का अर्थ है जीवन शक्ति का अभाव, जीवन जीने के उत्साह की समाप्ति। साधारण प्रतिभा का औसत व्यक्ति नैराश्य से समझौता कर लेता है, परन्तु पुरुरवा साधारण नही है। वह तो उस व्यक्ति का प्रतीक है जिसके व्यक्तित्व का देवोपम विकास हुआ है, जिसके स्नायविक तार चेतन तथा सजीव हैं तथा जिसका मन स्वभाव से ही, ऊर्ध्वगामी और उड्डयन्शील है, उसे काम के स्पर्श मात्र से प्रेम की समाधि का बोध होता है। प्रवृत्तियों को ही सत्य मानकर झंझा के समान जीने वाले व्यक्ति के नैराश्य का समाधान क्या हो सकता है ? उसके विराग की प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र होगी जितनी राग की। आज के परिवेश में जहाँ जीवन में काम और अध्यात्म एक दूसरे के पूरक नही होते, वहॉ घोर नैराश्य की प्रतिक्रिया स्नायविक विकृतियों तथा अनेक तरह की कुंठाओं में होती है। यदि दिनकर

प्रवृत्तियों के शासन में बाँधे हुये व्यक्ति के दुर्भाग्यपूर्ण अनिवार्य 'अन्त' की ओर संकेत न करते तो शायद पुरुरवा काम से टूटे और बिखरे हुये व्यक्ति का प्रतिनिधित्व न कर पाता।

'उर्वशी' के माध्यम से कोई समाधान प्रस्तुत करना कवि का उद्‌देश्य नहीं था। उन्होंने लिखा है– 'प्रश्नों के उत्तर, रोगों के समाधान मनुष्यों के नेता दिया करते है। कविता की भूमि केवल दर्द को जानती है, केवल वेचैनी को जानती है, केवल वासना की लहर और रुधिर के उत्ताप को पहचानती है।'[35]

'रश्मिरथी', और 'परशुराम की प्रतीक्षा' दिनकर के अन्य प्रबन्ध काव्य हैं। 'इतिहास के ऑसू', 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते' आदि उनके अन्य काव्य संग्रह हैं। वे अपने व्यक्तित्व को बराबर विकसित करते चलते हैं। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी काव्य की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना को नया तेवर प्रदान किया।

# बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

## प्रकाशन के प्रति उदासीन

अपने समकालीन कवियों में नवीन का व्यक्तित्व सबसे अधिक जुझारू और संघर्षमय था। उनकी काव्य रचनाएँ विलम्ब से प्रकाशित हुईं। डॉ0 कान्ति कुमार जैन ने लिखा है– 'कवि के रूप में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को अपने जीवन काल में वह स्थान और यश नहीं मिला जो मरणोपरान्त प्राप्त हुआ। ठीक समय पर कवियों की रचनाओं के प्रकाशित न हो पाने से आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास बहुत कुछ एकांगी और विकृत हो गया है। माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कवितायें जब वे लिखी गयीं थीं, तभी पुस्तकाकार प्रकाशित हो गयी होतीं तो छायावाद का इतिहास कुछ दूसरे ढंग से लिखा जाता।'[36]

नवीन ने सन् 1917 ई0 से नियमित लिखना प्रारंभ कर दिया था। यह हिन्दी में छायावाद के उन्मेष का काल था। पंत और निराला की प्रारम्भिक रचनाएँ इन्हीं दिनों लिखी जा रही थीं। नवीन जी की रचनाओं में छायावादी काव्य की महत्वपूर्ण विशेषतायें उपलब्ध होती हैं। किन्तु उनका पहला काव्य संग्रह सन् 1936 ई0 में तब प्रकाशित हुआ जब छायावादी काव्य का अवसान आसन्न था। नवीन जी के काव्य व्यक्तित्व के मूल्यांकन में दूसरी सबसे बडी बाधा यह हुई कि जनता ने, कवियों ने और समीक्षकों

ने भी नवीन जी को राजनीति का व्यक्ति अधिक माना, कविता का कम। उनके सम्बन्ध में समीक्षकों की आम धारणा यह थी कि मस्तमौला और फक्कड़ नेता भूले भटके कविता की गलियों के भी चक्कर मार लेता है।[37] राष्ट्रीय आन्दोलन के तूफानी दिनों में माथा ऊँचा करके, सीना तानकर, मुट्ठियाँ बाँधकर नवयुवक गाया करते थे–

'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड जायें,
त्राहि–त्राहि स्वर नभ में छाये।
बरसे आग, जलद जल जाये,
भस्मसात भूधर हो जाये।'[38]

और जब असहयोग आन्दोलन को अचानक समाप्त कर दिया गया, तब बलिदानियों के आहत अभिमान को और राष्ट्र की हताश सिर धुनती लौ को भी नवीन जी ने वाणी दी–

'आज खड्ग की धार कुंठिता है,
खाली तूरीण हुआ,
विजय पताका झुकी हुई है।
लक्ष्यभ्रष्ट यह तीर हुआ।'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के सम्पूर्ण वांगमय में उनका युग तथा जीवन गुंजायमान है। अनुभवों व परिस्थितियों के घात–प्रतिघात और घटनाओं के वात्याचक्रों ने उनको अपनी मान्यताएँ बनाने की शिक्षा में तत्व प्रदान किये। उनका समग्र जीवन आरोह–अवरोह की करुण कहानी से आप्लावित है। उन्होंने राग–विराग दोनों में दिन व्यतीत किये, झोपड़ी और अट्टालिकाओं का सुख–दुख भोगा। उनके जीवन सूत्रों ने समस्त मध्य भारतीय जीवन–जगत् के इतिहास के साथ उन्हें पिरो दिया है।

नवीन जी के चरित्र, आचरण तथा सिद्धांतों में कतिपय विशिष्ट उपादानों ने अपना निश्चित स्थान बना लिया था। उसका कारण उनके जीवन की विस्तृत व उर्वर पीठिका है। एक वाक्य में कहा जाय कि उनकी माता ने तथा उनके गुरु गणेशशंकर विद्यार्थी ने उनके जीवन को बनाया और मोडा। गणेशशंकर विद्यार्थी के वे जीवन्त स्मारक थे। जिस समय वे अपने जीवन की प्रारंभिक किरणें विकीर्ण कर रहे थे, उस समय उनका प्रदेश मालवा एक विचित्र प्रकार की सामन्तवादी प्रथा व व्यवस्था से आक्रान्त था। ऐसे वातावरण में चाटुकारिता या दण्ड के अतिरिक्त कोई पथ न था। नवीन जी प्रारम्भ से ही ऐसे वातायन के आदी नहीं थे और गणेशशंकर विद्यार्थी की दिव्यता से आकर्षित होने के कारण, उन्हें अपने स्थानिक वातावरण का दास नहीं बनना पडा। विद्यार्थी जी के रास्ते पर वे आजीवन चलते रहे, न पीछे हटे और न विचलित हुए।

उनका संपूर्ण जीवन एक योद्धा का जीवन है। लडना, जूझना, टकराना और पराजय की भावना को उत्पन्न न होने देना ही उनके जीवन का सार है। उनका जीवन एक युद्ध था। नयी मान्यताओं की प्रायः प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अपने सर्वत्र संघर्ष किया। परन्तु इस सेनानी में कहीं भी उश्रृंखलता नहीं दिखाई देती। वह कहीं भी अपनी विनम्रता की परिधि का उल्लंघन नहीं करता। उनके व्यक्तित्व व काव्य के निर्माण में, उनके जीवन की अपनी स्थिति, बडी स्पष्ट हो जाती है। बाल्यावस्था में निरंकुश रहने के कारण और अपना प्रारंभिक मार्ग अपने हाथों से गढने के कारण, स्वाभाविक रूप से, ऐसे व्यक्तियों में मनोविज्ञान के आधार पर विद्रोह तथा संघर्ष की शक्ति उत्पन्न हो जाना अपना नैसर्गिक रूप ही रखता है। संसार के अन्य महापुरुषों की भॉंति वे भी अधिकतर संसार की पाठशाला में ही अधिक शिक्षित व दीक्षित हुए। पाठ्य पुस्तकों की अपेक्षा उन्होंने खुले संसार का अनुभव प्राप्त किया और अपनी मान्यताऍं स्थिर की। आजीवन दुःख, दैन्य तथा यातनाऍं भुगतने के कारण उनमें करुणा की भावना का अत्यधिक प्रसार हो गया था। सदा–सर्वदा संग्राम में तलवार कसे सेनापति के समान उन्होंने अपने जीवन के गह्वरों, पर्वतों व नदियों को पार किया, कभी मधुवन आये, कभी बीहड़, वन। सांसारिक सुख व भोग के प्राप्त न होने के कारण उनमें निराशा की भावनाऍं भी पंख खोलने लगी थीं। मानव के प्रति मानव के सच्चे प्यार के कायल होने के कारण उनमें भावुकता की मात्रा का अत्यधिक विकास हुआ।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सर्वतोन्मुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–

1. कुंकुम (स्फुट काव्य–संग्रह)
2. रश्मिरेखा (स्फुट काव्य–संग्रह)
3. अपलक (स्फुट काव्य–संग्रह)
4. विनोबा–स्तवन (स्फुट काव्य–संग्रह)
5. उर्मिला (प्रबन्ध काव्य)
6. प्राणार्पण (खण्ड–काव्य)

नवीन के आदि काव्य–संग्रह 'कुंकुम' का प्रकाशन काल सन् 1939 ई0 है। उन्होंने इसके प्रारम्भ में एक लम्बी भूमिका दी है, जिसका शीर्षक है– कुछ बातें। काव्य और कला पर नवीन जी की विचारधारा से अवगत होने के लिए प्रस्तुत भूमिका अत्यन्त उपादेय तथा महत्वपूर्ण है। इसमें साहित्य के विषय में नवीन जी के बुनियादी विचार संग्रहीत हैं।

'कुंकुम' में 38 कविताओं को संग्रहीत किया गया है। इसमें देश भक्ति परक रचनायें ही अपना प्राधान्य रखती हैं। कवि की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनायें 'विप्लवगान' एवं 'पराजित गीत' इसी संकलन की श्री वृद्धि करती हैं। वीर रस से परिपूर्ण कविताओं के कारण काव्यश्री में द्युति आ गयी है। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार 'कुंकुम में संग्रहीत राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित गीतों में उनका व्यक्तिवाद दिनकर की तरह प्रगति की इतिहास चेतना का विश्वास भरा गर्व–स्फीत स्वर लेकर प्रकट हुआ।'[39] नवीन जी का व्यक्तिवाद राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर होता हुआ दिखता है।

राष्ट्रीयता के अतिरिक्त श्रृगार एवं चिन्तन–प्रधान कवितायें भी प्राप्त होती हैं। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को कवि ने स्पर्श किया है।

इस संकलन में गीत, प्रगीत तथा मुक्तक–तीनों प्रकार की काव्य–प्रणालियों को कवि ने अपनत्व प्रदान किया है। खडी–बोली के साथ ही साथ ब्रजभाषा में भी कतिपय रचनायें उपलब्ध होती हैं। कवि के

प्रथम संकलन से ही यह विदित होता है कि उसकी काव्य धारा दो प्रधान विभागों–राष्ट्रीयता तथा प्रणय के कूलों को स्पर्श करती प्रवाहित हो रही है।

नवीन का दूसरा काव्य–संग्रह 'रश्मिरेखा' अगस्त, 1951 ई0 में प्रकाशित हुआ। इस संकलन की प्रस्तावना में उन्होंने अपने जीवन दर्शन, सत् साहित्य सम्बन्धी आदर्श और अपनी कृतियों की मूलधारा का सुन्दर विश्लेषण किया है। इसमें 57 कवितायें संग्रहीत हैं। प्रणय, विप्रलम्भ, श्रृंगाररस, मधुवाद, वात्सल्य, प्रकृति–चित्रण, व्यक्तिगत मस्ती आदि उपादानों ने भी अपना प्रभाव बिखेर रखा है। कवि की अति प्रसिद्ध कविता 'हम अनिकेतन' को इसी संग्रह में स्थान प्राप्त हुआ है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस कविता की सराहना करते हुए बताया है– 'हम अनिकेतन वाली कविता में जो स्वारस्य था, वैयक्तिक भावनाओं को जो व्यक्त किया गया था, उससे उनकी साहित्यिक शैली मे भी उत्तम काव्य लिखने की सूचना प्राप्त हुई थी। अनिकेतन वाली कविता मुझे बहुत पसंद आयी थी और मैंने इन्हें इस पर पत्र भी लिखा था।'[40]

नवीन जी का तीसरा काव्य–संकलन 'अपलक' सितम्बर, 1951 ई0 में प्रकाशित हुआ। 'मेरे क्या सजल गीत ?' शीर्षक से भूमिका में मार्क्सवादी साहित्य, दर्शन तथा प्रगतिवादी साहित्य की विचारधारा से कवि ने अपना सप्रमाण मतभेद व्यक्त किया है।

'अपलक' का मुख्य काव्य–विषय प्रेम है। प्रेम में स्मृति जन्म वियोग एवं वेदना के चित्र अधिक उभर कर आये हैं। प्रेम परक कविताओं के अतिरिक्त आध्यात्मिक व्यक्तिगत अल्हडता तथा प्रकृति–चित्रण सम्बन्धी कवितायें भी मिलती हैं। जहॉ प्रणय सम्बन्धी गीतों में निराशा जन्य वेदना की प्रमुखता है, वहॉ चिन्तनपूर्ण रचनाओं में भी कवि अलौकिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करते–करते भौतिकता की ओर उन्मुख हो जाता है।

नवीन जी का चौथा काव्य–संग्रह 'क्वासि' सितम्बर, 1952 ई0 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में नवीन जी की अत्यन्त सारगर्भित भूमिका है, जिसमें प्रगतिवाद, मार्क्सवादी दर्शन, पदार्थवादी समीक्षा, साहित्य स्रष्टा एवं समीक्षा सम्बन्धी कवि की उपपत्तियॉ, भारतीय साहित्य की आत्मा व उसका लक्ष्य तथा संस्कृति पर गंभीरता पूर्वक विचार किया गया है। प्रगतिवाद और मार्क्सवादी दर्शन से कवि ने अपना पूर्ण मतभेद प्रस्तुत किया और प्रगतिवादी आलोचकों की समीक्षा का खरा एवं सोदाहरण विश्लेषण किया।

'क्वासि' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है– कहॉ हो ? संग्रह के शीर्षक के अनुसार इसमें दार्शनिक कविताओ की प्रचुरता है।

नवीन जी का पॉचवा काव्य–संग्रह 'विनोबा–स्तवन' है जिसमें भूदान–यज्ञ के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है। विनोबा की साधना एवं मानव सेवा ही इस कृति की भावना है। उनके व्यक्तित्व, संदेश, गांधी जी का उत्तराधिकार, प्रभावोत्पादकता, महापुरुषों की परम्परा, मानव मन का उद्वेलन, वाणी की महत्ता और जन कल्याण के पक्षों को नवीन जी ने अपनी कविता माला में गूँथा है। कवि ने पूर्ण तन्मयता, निष्ठा तथा सात्विक रूप में इस कृति का सृजन किया है।

नवीन जी का छठवॉ काव्य ग्रन्थ 'उर्मिला' है जो कि उत्कृष्ट कोटि की प्रबन्ध कृति है। इसे उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त को समर्पित किया है जिनके प्रति कवि हृदय में श्रद्धा और आस्था की भावना रही है। यह काव्य सन् 1957 ई0 में प्रकाशित हुआ ।

प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका 'श्री लक्ष्मण चरणार्पणमस्तु' कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सूचना–प्रद है। 'उर्मिला' के लेखन और प्रकाशन का लम्बा इतिहास है। यह ग्रन्थ 1922 ई0 से 1934 ई0 के बीच लिखा गया। यह तेईस वर्ष बाद 1957 ई0 में प्रकाशित हुआ। इस सम्बन्ध में नरेश मेहता ने लिखा है–

'साहित्य मे उन्होंने मुचकुन्द का आदर्श उपस्थित किया, फलस्वरूप सन् 34 का प्रणीत उर्मिला महाकाव्य सन् 58–59 में प्रकाशित होता है और जाहिर था उस कृति से कृतिकार की जो सामाजिक प्रतिष्ठा होनी थी, वह नहीं हुई।'[41]

इस ग्रन्थ के विषय में देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है– 'इस दौरान मे हिन्दी कविता काफी आगे बढ चुकी है। अतः उसकी भावाभिव्यक्तियॉ एक ओर बीसवीं सदी के छठे दशक के पीछे की है, उसका दृष्टिकोण आर्यसमाजी एवं राष्ट्रीय संग्राम के आरंभिक काल का है, वहीं वे इतनी पुरानी भी नहीं है कि अपेक्षित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उन्हें तटस्थतापूर्वक रखा जा सके। उसका लेखन आज भी क्रियाशील है। साकेत जहॉ परम्परा की एक कड़ी बन गया, वहीं उर्मिला धार से असंपृक्त हो गये जल की भॉति प्रतीत

होती है। परन्तु मेरा विश्वास है कि संभवतः कुछ और दिन बीत जाने पर उर्मिला अधिक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी ग्रन्थ होगा।"[42]

'उर्मिला' काव्य की कथावस्तु छः सर्गो में विभाजित तथा वर्णित है। प्रस्तुत काव्य कथा में रचनाकार ने रामायणी कथा को नूतन दृष्टिकोण से देखने तथा प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है। उर्मिला के चरित्र को प्रधानता देते हुये, आधुनिक युग की प्रतिक्रियाओं को भी प्रतिपादित किया गया है। आलोच्य काव्य में विविध छंदों तथा शैलियों का प्रयोग किया गया है। कवि के यशः शरीर को जीवित रखने और कृतित्व के घनीभूत प्रतीक हेतु उर्मिला कृति ही पर्याप्त है।

## प्राणार्पण

स्वर्गीय हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी के निधन के पश्चात् इस खण्डकाव्य की रचना हुई। 'प्राणार्पण' के प्रारंभ में प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के द्वारा लिखी गयी भूमिका है। पं0 नेहरू गणेश जी और नवीन जी के पुराने तथा घनिष्ठ मित्र रहे हैं। काव्य–विषय तथा काव्यकार दोनों की मनः स्थितियों तथा घटनाओं को पं0 नेहरू के निकट से जाना–पहचाना था। 21 जनवरी 1962 ई0 को लिखित इस भूमिका में बलिदान की महिमा ऑकी गयी है।

गणेशशंकर विद्यार्थी के शहीद होने की घटना का काव्यात्मक वर्णन ही इस खण्डकाव्य की विषयवस्तु का सार है। वस्तुतः इसमें कथाभाग अत्यन्त सूक्ष्म है। अपने आराध्य एवं जीवन निर्माता विद्यार्थी जी के प्रति कवि की भक्ति ही काव्य प्रवाह बनकर गतिशील हो पडी है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जीवन और काव्य का हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं से प्रत्यक्ष एवं अटूट सम्बन्ध रहा है। उन्होंने अपने युग तथा राष्ट्र की तलवार और लेखनी दोनों से ही सेवा की। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के वे प्रेमी थे और अपने अध्ययन तथा मनन से उन्होंने राष्ट्रीयतावाद के सांस्कृतिक पक्ष को परिपक्व बनाया।

## संक्रान्ति काल के कवि

नवीन जी का राष्ट्रीय काव्य परिमाण एवं परिणाम दोनों ही रूपों में स्वातन्त्र्यपूर्व युग की देन है। इस युग के ही काव्य का कला तथा प्रभाव दोनों ही दृष्टिकोणों से सर्वोपरि महत्व है। कवि ने संक्रान्ति

काल में जन्म लिया था, इसलिए उनके ही मतानुसार, 'संक्रान्ति काल के साहित्य में तो आपको करुणा भी मिलेगी और पराजयवाद भी मिलेगा। संक्रान्ति में आदर्श की प्राप्ति तो होती नहीं–यदि वह हो जाय तो संक्रान्ति काल क्रान्ति युग में ही परिणत न हो जाय ? संक्रान्ति के काल में तो आदर्श प्राप्ति के प्रयत्न होते हैं और उन प्रयत्नों की असफलताओं की एक लम्बी सी कडी रहती है। क्षणिक सफलता और पुनः असफलताओं के कारण हृदय तडपता है। आदर्श निर्माण की लालसा हृदय–मंथन करती है और अप्राप्ति हृदय को निराश भी करती है। अतः इस युग की अभिव्यक्ति में नवीनता की झलक, निराशा, वेदना और पराजयवाद की छाप लगी रहती है। इसलिये आज यदि हमारे साहित्य में पराजयवाद या वेदना की मात्रा है तो यह न केवल स्वाभाविक, वरन् आवश्यक एवं तत्वपूर्ण भी है। इसी परिणाम स्वरूप नवीन जी ने अपने आपको 'संक्रान्ति काल का प्राणी' कहा है, जिन्हें सुखोपभोग प्राप्त नहीं है–

'हम संक्रान्ति–काल के प्राणी,
बदा नहीं सुख भोग।
घर उजाड़कर जेल बसाने,
का है हमको रोग।'

नवीन जी के कण–कण में राष्ट्रभक्ति तथा मातृभक्ति–प्रीति की भावना परिप्लावित थी। उन्होंने अपनी मातृभूमि की वन्दना तथा प्रशस्ति स्वरूप कतिपय रचनाओं की ही सृष्टि की। वन्दना की अपेक्षा कवि का ध्यान प्रशस्ति की ओर अधिक गया है। भौतिक या प्राकृतिक रूप वन्दना की अपेक्षा आध्यात्मिक या सांस्कृतिक मूल्यों को कहीं अधिक महत्व प्रदान किया है।

नवीन जी ने असहयोग आन्दोलन के समय अनेकानेक जागरण तथा अभियान गीतों की सृष्टि की है उनकी देशभक्ति में भी सौन्दर्य की अनुभूति है। देशभक्तिपरक इन गीतों में आन्दोलन की सहज तथा सफल प्रतिक्रियायें अभिव्यक्त हुई हैं। कवि के जागरण गीतों में चेतना तथा स्फूर्ति का जलनद उमड रहा है। कवि ने राष्ट्रीय सामाजिक जीवन में निराशा को स्थान नही दिया। राष्ट्रीय कविताओं के क्षेत्र में, सन् 1942 ई0 की क्रान्ति के आवर्त में कवि अधिक सचेष्ट हुआ। गाँधी जी की वाणी चहुँ ओर गूँज उठी–

'जागो, जागो अमृत सुवन तुम, जागो सोने वालों,

जागो तुम सिंहों के छौनों, जागो सब कुछ खोने वालों।

जागो, देशकाल निर्माता, जागो तुम निज भाग्य विधाता,

जागो, इतिहास के ज्ञाता, जागो तत्वज्ञान के दाता।'

क्रान्ति के संवेदनशील क्षणों में, कवि ने भैरव के स्वर सुनाये। कवि ने युवकों के यौवन को ललकारा, उन्हें संघर्ष में जूझने के लिये प्रेरित किया। कवि की वाणी संजीवनी बूटी के समान कार्य करती है–

'जब करोगे क्रोध तुम तब आयेगा भूडोल,

कॉप उठेंगे सभी भूगोल और खगोल।'

उनके गीतों में ओज की प्रधानता है और सहज भावाभिव्यक्ति को अपनी प्रश्रय–स्थली मिली है। श्री सुधाकर पाण्डेय ने लिखा है– 'उन्होंने अपने मन की अनुभूतियों को उसी रूप में चित्रित किया है जिस रूप में अनुभूतियॉ उत्पन्न हुई हैं। वह अपने कवि के प्रति ईमानदार रहे हैं। उनकी रचनाओं में एक प्रकार का आक्रोश, वेग, गति, झंकार है, किन्तु साथ ही टूटे हृदय के तार, जीवन की अस्त–व्यस्तता सभी कुछ एक स्थान पर एकत्र हो गये हैं।'[43]

प्राचीन गौरव तथा संस्कृति चिर प्रेरणास्पद तथा स्मरणीय होती है। नवीन जी ने प्राचीन साहित्य और संस्कृति का अच्छा अध्ययन किया था। उज्ज्वल अतीत का विस्मरण नवीन जी नहीं कर सकते थे। अतीत गौरव के साथ ही साथ नवीन जी ने वर्तमान दशा का भी अनावरण किया। अतीत जहॉ मार्गदर्शन तथा ज्योति लहर प्रदान करता है, वहाँ वर्तमान चिन्ता, आक्रोश तथा निदान की ओर उन्मुख करता है।

कवि की वर्तमान दशा सम्बधी रचनाओं में वेग तथा तेजस्विता के दर्शन होते हैं। उसका ध्यान, हमारी राजनैतिक स्थिति के साथ–साथ, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की ओर भी गया। वैभव तथा दर्पपूर्ण विगत भारत की वर्तमान दुर्गति ने कवि के मानस को आन्दोलित एवं उद्वेलित कर दिया। इन कविताओं ने छायावाद के युग में नूतन भावधारा का प्रणयन किया। डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने लिखा है– '× × × × × और नवीन जी ने खड़ीबोली के कोमल–कोमल युग में उग्र भावनाओं का वर्णन करके, काव्य के वैविध्य को सुरक्षित रखा है। यह दुरुह न होने के कारण और महाभारत,

आल्हा पढ़कर उत्साह ग्रहण करने वाली सामान्य जनता में ही नहीं शिक्षित जनता में भी प्रचलित हुआ। इस काव्य से विदेशी साम्राज्यवाद से लड़ने में भी मदद मिली।'[44]

नवीन जी के भविष्य विषयक संकेत भी संक्रान्ति–काल के काव्य में प्राप्त होते हैं। वे भविष्य के प्रति सजग एवं सचेत थे। आशावादी होने के कारण भविष्य में उनकी दृढ आस्था थी और यह विह्वल विश्वास था कि हमारे सामूहिक प्रयत्नों से हमारा देश स्वतन्त्र होगा। वास्तव में, चरैवेति–चरैवेति का सिद्धान्त ही भविष्य की लक्ष्य लहर को अपनी ओर आकृष्ट करने में सामर्थ्य तथा साहस उत्पन्न करता है–

'मास, वर्ष की गिनती क्या हो वहॉ, जहॉ मनवन्तर जूझें ?<br>
युग परिवर्तन करने वाले जीवन–वर्षों को क्यों बूझें ?<br>
हम विद्रोही!! कहो, हमें क्यों अपने मग के कंटक सूझें ?'[45]

नवीन जी की सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध रचना 'विप्लव गायन' ने क्रांति का शंखनाद किया था। कवि की यह रचना बहुउद्धृत एवं बहुचर्चित रही है। यह रचना 'कुंकुम' संग्रह में संकलित है। इस कविता में विप्लव के किसी अराजकतामय क्रान्ति की ओर संकेत न होकर मानवोचित गुणों की प्राप्ति की ओर संकेत है। कवि सबलों की बर्बरता को कायरता पूर्वक विधि से सहन नहीं कर सकता। वह सनातन परम्परा के नाम पर अंधविश्वासी हो समाज का नाश नहीं होने देगा। वह कहता है–

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ उथल–पुथल मच जाये।<br>
एक ओर कायरता कांपे, गतानुगति विगलित हो जाये।<br>
अंध मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाये।'[46]

और यदि यह सब न हो सके तो जैसी विगलित अन्ध विचारों की संस्कृति विद्रोही गतिविधि चल रही है, उससे तो यही अच्छा है–

'नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक–टूक हो जायें।<br>
विश्वभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें।'[47]

## राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य : काव्य प्रतिष्ठा का मूलाधार

स्वाधीन भारत में आकर कवि की राष्ट्रीय भावना सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपना प्रसार पा गयी। भारत के स्वाधीन होने पर, हमारे कवियों ने सुन्दर राष्ट्र–गीतों का सृजन किया। इनमें नवीन जी के प्रस्तुत गीत ने बड़ी ख्याति प्राप्त की–

'कोटि–कोटि कण्ठों से निकली
आज यही स्वर धारा है,
भारत वर्ष हमारा है,
यह हिन्दुस्तान हमारा है।

कवि के श्रद्धालु मानस ने प्रणतिपूर्वक अपने देश की विभूतियों तथा महापुरुषो के प्रति अपनी भक्ति भावना अभिव्यक्त की है–

'वंदन कर लूँ आज तुम्हारे अडिग अकम्पित उन चरणों में,
जिनकी महिमा रही अगीता जन–साहित्य के अधिकरणों में।

नवीन जी के जिस प्रकार पराधीन भारत में सन् 1942 की क्रान्ति के समय गाँधी जी में अपनी भक्ति उड़ेली थी, उसी प्रकार गणतन्त्र भारत में गाँधी जी के शिष्य तथा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा भावे में अपनी श्रद्धा उड़ेली। नवीन जी ने विनोबा के व्यक्तित्व की महिमा का वर्णन करते हुए उनके संदेशों का प्रतिपादन किया है। भूदान यज्ञ का सार इन पंक्तियों में पिरोया गया है–

'नित्य सनातन, नित्य पुरातन,
अति करुणायन, नित्य नवीन,
दानं समविभाजनं– उसका
यह अद्‌भुत सन्देश अदीन।'[48]

स्वतन्त्र भारत में नवीन जी की राष्ट्रीयता ने सांस्कृतिक तत्वों को अपनी सीमाओं में अधिकाधिक समेट लिया। राष्ट्रवाद के राजनैतिक रूप की अपेक्षा उसका सांस्कृतिक पक्ष ही अधिक पुष्ट, स्थायी तथा प्रेरणास्पद होता है। डॉ. नगेद्र ने लिखा है– 'सामयिक प्रभाव का दूसरा नाम फैशन है, और साहित्य भी

फैशन से बच नहीं सकता। हिन्दी में न जाने कितने कवियों ने राष्ट्रीयता की मूलधारा में अवगाहन किये बिना प्राणों के स्फुलिंग की जगह मुँह के झाग उगले और छिछले दिल और दिमाग के लोगों ने झूम–झूम कर उनकी दाद दी। परन्तु गंभीर कवियों और पाठकों को इनमें आत्माभिव्यक्ति नहीं मिली। इसीलिये भारत–भारती के कवि को साकेत और यशोधरा में आत्माभिव्यंजन खोजना पड़ा, रेणुका के कवि को कुरुक्षेत्र में आकर आत्म–साक्षात्कार हुआ, नवीन को सांस्कृतिक कविताओं में अपनी आत्मा का रस उडेलना पड़ा और जो ऐसा नहीं कर सके, वे काव्य इतिहास के पृष्ठ से लुप्त हो गये।"[49]

स्वान्त्र्योत्तर युग में कवि के राष्ट्रवाद ने मानवता, विश्व मैत्री तथा उच्चतर जीवन–मूल्यों की ओर अपने आप को मोड़ लिया। नवीन जी की राष्ट्रवादिता की धार शरद ऋतु के मन्द तथा गंभीर प्रवाह में परिवर्तित हो गयी। इस युग के राष्ट्रपरक काव्य में प्रौढता और सघनता के दर्शन होते हैं। नवीन जी की ख्याति तथा साहित्यिक प्रतिष्ठा का मूलाधार उनका समग्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक व्यक्तित्व है।

## प्रेम काव्य : काव्य प्रासाद का आधार

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताओं के अतिरिक्त नवीन जी ने प्रेम तथा दार्शनिक कविताओं का भी सृजन किया है। उनके काव्य में प्रेम तथा श्रृंगार के विविध रूप प्राप्त होते हैं। उन्होंने श्रृंगार के संयोग तथा वियोग, दोनों ही अंगों को समेटा है, परन्तु वियोग पक्ष अधिक प्रबल तथा मुखर बन गया हैं, संयोग के चित्र कम मात्रा में प्राप्त होते हैं। नवीन जी ने प्रेम के स्थूल एवं मांसल रूप के साथ ही साथ उसका सूक्ष्म रूप भी प्रस्तुत किया है।

नवीन का समग्र प्रेमकाव्य अपने आलम्बन के सम्बोधन, स्मरण एवं विरह से आपूर्ण है। कवि ने पग–पग पर प्रेम के आलम्बन के प्रति अपनी सरल, निष्कपट, मार्मिक और कारुणिक, प्रणयाभिव्यक्ति की है। अपनी प्रेयसी के लिए कवि का स्नेहिल, लाडला तथा आसक्तिमय सम्बोधन 'रसखान' है–

'प्रिय तुम क्यों हो इतनी अच्छी
सुघड़ सौम्य, रस–खानी।"[50]

अपनी सलोनी के प्रति कवि की यह प्रीतिमयी प्रार्थना है–

'मत ठुकराओ मुझे, सलोनी मैं हूँ प्रथम प्यार का चुंबन

मुझे न हँस–हँस टालो, मैं हूँ मधुर–स्मृतियों का अवलम्बन।'[51]

नवीन जी न अनी प्रियतमा के रूप और यौवन के अनेक चित्र खींचे हैं। इनमें नारी जीवन के हाव–भाव तथा विलास प्रस्फुटित हो पड़े हैं। कवि के प्रेम–काव्य में नारी–चित्रों की ही प्रधानता है, पुरुष के रूप के चित्र नगण्य हैं। कवि ने अपने प्रिय के रूप, यौवन और सौन्दर्य के रससिक्त एवं चित्ताकर्षक चित्र प्रदान किये हैं। इन चित्रों में कवि की वेदना और प्रेमाभिव्यक्ति का सुघढ रूप प्राप्त होता है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– 'इन कविताओं में सच्चे रोमांटिक कवि की भॉति वे कल्पना के पंख फैलाकर भाव के आकाश में उड़ान लेते हैं।'[52] वस्तुतः नवीन जी के काव्य में रोमांटिक–वृत्ति की प्रधानता है, उनकी प्रेमाभिव्यक्ति सरल तथा भावपूर्ण है।

नवीन जी के प्रेम–काव्य में प्रकृति ने भी महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण योगदान दिया है। प्रकृति उत्तेजना प्रदान करती है–

'लोग कहें महुआ गदराने,
हिय के घाव पके हम जाने,
अरी, कोयल बोल बोलियो ना।'[53]

प्रकृति भावोद्दीप्ति का सरस परिवेश सृजन करती है और कवि को प्रिय दर्शन के लिए लालायित करती है। इन पंक्तियों में कवि की मनोकामना अपना पंख प्रसार रही है–

'मेरे प्रिय, अब कब तक होंगे उन नयनों के मंगल दर्शन,
हुलस करोगे कब, निज जन पर उन नयनों से मधु रस वर्षण ?
कब फिर उन्हें निरख कर होगा मेरे रोम–रोम का हर्षण ?'[54]

नवीन की अधिकांश कवितायें कारावास में लिखी गयी थीं– मित्रों और स्वजनों से दूर, कारागार की कोठरी में, कवि के मन में तरह–तरह के भाव उठते हैं और उसकी सबल कल्पना मुक्त श्रृंगार के अनेक चित्र खींचती है। कारागार प्रसूता होने के कारण, उनके प्रेम काव्य में स्मृति तत्व ने मूल तन्तु का कार्य किया है। कवि ने स्मृति का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है–

'स्मृति क्या है ? प्रिय स्मृति ही तो है केवल यहाँ हमारी थाती।'

नवीन जी आकंठ तरुणाई के, यौवन के कवि हैं। उनकी अनुभूति का यह चिरन्तन उभार उनकी समूची काव्याभिव्यक्ति में स्थल–स्थल पर परिलक्षित, ध्वनित और गुंजरित होता है। विप्रलम्भ कवि का स्थायी सहचर है। कवि का वियोग दर्शन इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है–

'हाय–हाय करिबे की हमने कबहुँ न सीखी बान,
बिथा हँसी हूँ मैं, सुनि लेते जो तुम देते कान।'[55]

नवीन जी के काव्य में, अपने समकालीन पथ के साथियों के समान, प्रणय के मांसल तथा उन्मादक चित्र प्राप्त होते हैं। इस धारा के मूल में कवि की तारुण्यमयी प्रेम–घटना, मस्तीभरा व्यक्तित्व तथा स्वच्छदतावादी वृत्तियाँ कार्यशील रही हैं। 'कवि अपनी उन्मादिनी वासना की ओर संकेत भी करता है–

'उस तव मृदुल चरण चौकी पर
बाले! कैसे डालूँ फूल ?
उन्मादिनी वासना की यह
मेरे हिय में छायी धूल।'[56]

कवि ने प्रेम के क्षेत्र में उन्माद के चित्रों के द्वारा रस–प्लावन की सरिता ही बहा दी। उनके कतिपय मधुवादी गीतों में उन्मादी वृत्तियों का रुपांकन किया गया है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है– 'राजनीतिक और आर्थिक पराभव के कारण उस समय के वातावरण में गहन अवसाद छाया हुआ था, जिसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन समाज मुख्यतः मध्यवर्ग की चेतना एक विशेष आध्यात्मिक क्लान्ति से अभिभूत हो गयी थीं।'[57]

इसी क्लान्ति को दूर करने के लिए ही हाला का आह्वान किया गया था। डॉ0 नगेन्द्र ने इसे 'आध्यात्मिक विद्रोह से प्रेरित भोगवाद की हाला' कहा है। कवि के प्रेमाधिक्य अथवा उन्मादावस्था को इन पंक्तियों ने आश्रय दिया है–

'कूजे–दो कूजे में बुझने वाली मेरी प्यास नहीं,
बार–बार ला! ला! कहने का समय नहीं अभ्यास नहीं।

अरे बहा दो अविरल धारा,

बूँद–बूँद का कौन सहारा ?

मन भर जाय, जिया उतराये,

डूबे जग सारा का सारा,

ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवा दे गुल्लाला,

साकी, अब कैसा विलम्ब ? ढरका दे तन्मयता–हाला।'[58]

नवीन जी का प्रेम काव्य उनके हृदय का स्वच्छ दर्पण है, अमल अनुभूतियों का आगार है, उनमें प्रणय, रूप सौन्दर्य, यौवन, मादकता, भोग एवं समन्वय के सूत्र अपनी संयुक्त जलनिधि में काव्य श्री को स्नात कर रहे हैं। प्रेम काव्य पर ही कवि का काव्य–प्रासाद आधृत है, उसमें काव्य–प्रकर्ष भी अपने महत्तम शिखरों का स्पर्श करता है गीति–कला का सर्वाधिक सुन्दर प्रस्फुटन और मार्दव, इसी क्षेत्र में ही विलास कर रहा है। कवि मूलतः और सामान्यतः गीतिकार ही था, जिसका प्रमाण उसका यही प्रेम काव्य है। इस काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों ने अपना स्वर्णकोष बिखेरा है। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है– 'उनकी श्रृंगारपरक रचनाओं में एक सच्चे रोमांटिक कवि के दर्शन होते हैं।'[59]

नवीन जी के काव्य की परिणति उनकी आध्यात्मिक रचनाओं में हुई है। अपने जीवन के प्रायः पन्द्रह वर्षों में कवि का मन पारलौकिक तत्वों की ओर उन्मुख हुआ और उसने गंभीर आस्था तथा रहस्य भावना से प्रेरित मधुर गान गाये।

नवीन का दार्शनिक काव्य उनके जीवन तथा अध्ययन की उपज है। उनके दार्शनिक काव्य में नाना प्रकार के तत्वों का संचयन है और इन सब पर उनका भावुक कवि आच्छादित है। उनका दार्शनिक व्यक्तित्व आत्मा के अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है। नवीन जी ने 'क्वासि' की भूमिका में इस प्रसंग का विशद विवेचन किया है। इस प्रसंग की चर्चा के अन्त में उन्होंने निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया है। वे स्वयं प्रश्न करते हैं– 'इस भव्य, उदात्त, हृदय–मन्थनकारी सम्भाषण का क्या अर्थ है ? इसका उत्तर है– अर्थ केवल यह है कि अन्तर–पट के पार झॉकने की प्रेरणा, अवगुण्ठन को खोलने की

प्रणोदना, भारतीय आत्म–अनुसन्धान के रूप में, सहस्त्राब्दियों से हमारे देश के आँगन में मचलती, खेलती, दौड़ती, ठहरती, विहँसती, रोती और रुलाती रही है।'[60]

उपनिषदों ने नवीन जी के काव्य को प्रभूत सामग्री प्रदान की है। ईशावास्योपनिषद से कवि विशेष प्रभावित हुआ। कठोपनिषद में वर्णित यम–नचिकेता संवाद उनका प्रिय तथा अनन्य प्रसंग है जिसे उन्होंने एक मृत्यु गीत का विषय बनाया है–

'नचिकेता बोला गुरु यम से, आर्य ईश हैं साक्षी।
मैं मुमुक्षु हूँ मृत्यु तत्व का, मुझे न दो मीनाक्षी।'

नवीन का दार्शनिक काव्य उनके जीवन, संस्कृति तथा साधना का परिपक्व फल है। उसमें उनके युग तथा वातावरण का उल्लास, अवसाद, निष्ठा तथा विवेक की वाणी मुखर है। उनके व्यक्तित्व का संगठित तथा घनीभूत रूप यहाँ उपलब्ध है। दर्शन की रुक्षता में भी उनके मस्त मन और कवि व्यक्तित्व का मधु धार प्रवाहमान रहता है।

नवीन जी के काव्य के मूल्य तथा महत्ता की कहानी उनके युग–प्रेरक कवि–व्यक्तित्व में निहित है। उन्होंने अपने समसामयिक कवियों और काव्य प्रवाह को गहराई से प्रभावित किया है। उनका प्रेरणास्पद व्यक्तित्व एवं प्रभाव सूत्र हमारे आधुनिक काव्य की विविध गतिविधियों में झाँक उठा है। उनके क्रांतिगीतों ने भारत के वायु मण्डल को ही नहीं, प्रत्युत हिन्दी की राष्ट्रीय वीणा को भी झंकृत कर दिया था, जिसके फलस्वरूप उसमें से अनेक स्वर–झंकृतियों ने जन्म लिया।

# संदर्भ

1. डॉ0 प्रेमशंकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ–367
2. माखनलाल चतुर्वेदी – समय के पॉव, पृष्ठ–17
3. डॉ0 रामविलास शर्मा – माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा पुरुष, पृष्ठ–258
4. माखनलाल चतुर्वेदी – अमीर इरादे गरीब इरादे, पृष्ठ–20
5. हरिवंशराय 'बच्चन' – मधुकलश
6. हरिवंशराय 'बच्चन' – मधुबाला–आत्मपरिचय–कविता (उधृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–39
7. हरिवंशराय 'बच्चन' – आधुनिक कवि–अपने पाठकों से (भूमिका), पृष्ठ–7
8. हरिवंश राय 'बच्चन' – प्रारंभिक रचनाऍ–भाग–2
9. हरिवंशराय 'बच्चन' – प्रारंभिक रचनाऍ–कोयल (कविता)
10. हरिवंशराय 'बच्चन' – प्रारंभिक रचनाऍ– उपवन (कविता)
11. सुमित्रानन्दन पन्त – बच्चन का व्यक्तित्व तथा काव्य (लेख)
    संकलन–'बच्चन : व्यक्ति और कवि', संपादक–बाकेबिहारी भटनागर, पृष्ठ–24
12. वही, पृष्ठ–24
13. हरिवंशराय 'बच्चन'–मधुशाला
14. हरिवंशराय 'बच्चन'–मधुबाला
15. हरिवंशराय 'बच्चन' – मधुबाला–इस पार उस पार (उद्धृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–34–35
16. हरिवंशराय 'बच्चन' – मधुकलश–कवि की वासना (कविता)
17. हरिवंशराय 'बच्चन' – निशा निमंत्रण
18. हरिवंशराय 'बच्चन' – प्रणय–पत्रिका
19. हरिवंशराय 'बच्चन'– बुद्ध और नाचघर–शैल विहंगिनी (कविता)
20. हरिवंशराय 'बच्चन' – बुद्ध और नाचघर (उद्धृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–134–135

21. हरिवंशराय 'बच्चन' – त्रिभंगिमा–सोनमछरी (उद्धृत–आधुनिक कवि), पृष्ठ–150

22. रामधारी सिंह 'दिनकर' – रेणुका, पृष्ठ–7

23. वही

24. वही, पृष्ठ–3

25. रामधारी सिंह 'दिनकर'–काव्य की भूमिका, पृष्ठ–42

26. रामधारी सिंह 'दिनकर'– रेणुका, पृष्ठ–14

27. वही, पृष्ठ–86

28. वही, पृष्ठ–64

29. वही, पृष्ठ–12

30. रामधारी सिंह 'दिनकर' – हुंकार, पृष्ठ–16

31. रामधारी सिंह 'दिनकर' – चक्रवाल (भूमिका), पृष्ठ–33

32. रामधारी सिंह 'दिनकर' – रसवन्ती, पृष्ठ–4

33. रामधारी सिंह 'दिनकर' – कुरुक्षेत्र, पृष्ठ–101

34. रामधारी सिंह 'दिनकर' – उर्वशी (भूमिका), पृष्ठ–2

35. वही, पृष्ठ–6

36. डॉ0 कान्ति कुमार जैन– रोमैण्टिक मिजाज : मुकुटधर पाण्डेय से मुक्तिबोध तक (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–लेख), पृष्ठ–34

37. वही, पृष्ठ–34–35

38. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – कुंकुम, पृष्ठ–10

39. शिवदान सिंह चौहान – काव्यधारा–हिन्दी कविता का विकास, पृष्ठ–40

40. डॉ0 लक्ष्मीनारायण दुबे – बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ–151

41. वही, पृष्ठ–157

42. वही, पृष्ठ–158

43. सुधाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य और साहित्यकार, पृष्ठ–209

44. डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय – आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ–335

45. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– रश्मिरेखा, पृष्ठ–16

46. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– कुंकुम, पृष्ठ–10

47. वही, पृष्ठ–11

48. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – विनोबा स्तवन, पृष्ठ–9

49. डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–36

50. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–रश्मि रेखा, पृष्ठ–21

51. वही, पृष्ठ–43

52. डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य (छायावाद), पृष्ठ–476

53. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – कुंकुम, पृष्ठ–83

54. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – रश्मिरेखा, पृष्ठ–95

55. वही, पृष्ठ–95

56. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – कुंकुम, पृष्ठ–8

57. डॉ0 नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉं, पृष्ठ–83

58. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – रश्मि रेखा, पृष्ठ–75

59. डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–208

60. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – क्वासि, पृष्ठ–23

समापन

# समापन

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद विगत शताब्दी के चौथे दशक तक अपनी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों को प्राप्त कर लेता है। साहित्य के इतिहास में यह सत्य स्वीकृत है कि किसी साहित्यान्दोलन की प्रतिष्ठा ही उसके पतन का सूचक है। उपलब्धियों की ऊँचाई पर पहुँचकर उसमें अनेकानेक रुढियों और विकारों का सूत्रपात होता है और उसकी नवीनता नष्ट हो जाती है। वह रुढ़ परम्परा का पोषक बन जाता है। इतिहास के दबाव को सहन करने में वह असमर्थ हो जाता है। हिन्दी साहित्य का स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्दोलन भी इसका अपवाद नहीं है। हिन्दी स्वच्छदतावाद नवीन भावबोध के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ था। यह भावबोध युगबोध के साथ घनिष्ठ रूप से संयुक्त है। यह युगबोध मूलतः आध्यात्मिक और सांस्कृतिक था। जब तक कवियों ने इस युगबोध को आत्मसात कर कविताओं की रचना की थी, तब तक उनका काव्य भी भव्य और उदात्त बना रहा। परन्तु भारतीय परिस्थितियॉ बडी तेजी से बदल रहीं थीं और कवियों पर भी उनका काफी प्रभाव पड़ रहा था। ये परिस्थितियाँ बड़ी विक्षोभकारी थीं, जिसके फलस्वरूप स्वच्छन्दतावादी कवियों की एकात्मकता, वैचारिक स्थिरता और भावात्मक तीव्रता धीरे–धीरे खण्डित होने लगती है और एक नये युग–बोध का जन्म होने लगता है। यह नया युग बोध अनास्था और अभाव के तंतुओं से बना है। इस युग बोध की अनुभूति इतनी तीखी थी कि कवि–मेधा के चिन्तन के सूत्र सहसा बिखरने लगते हैं। वह अपने को स्वच्छन्दतावादी चर्चा में निमग्न रख सकने में असमर्थ पाता है और नयी दिशाओं की ओर प्रयाण करता है।
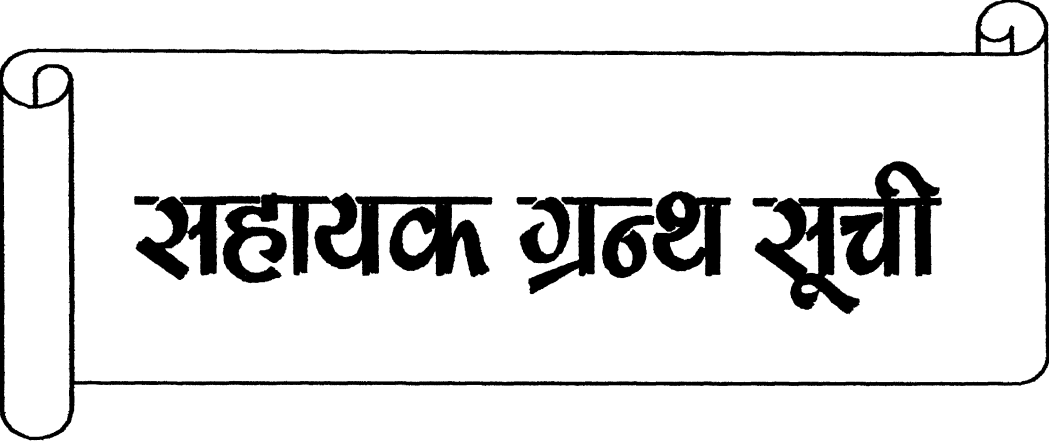
यूरोपीय रोमांटिसिज्म की तरह हिन्दी स्वच्छन्दतावाद वैचारिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि से पूर्णतया नहीं जुडता। यद्यपि भारतीय नवजागरण ने उसे प्रभावित किया और उसके निर्माण में देश की परिस्थितियों का हिस्सा है, इसीलिए हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य की सीमायें अपने समय की सीमायें कही जा सकती हैं और एक सीमित क्षेत्र में काम करने के कारण वह गहरे उतर गये। सीमित संसार के कारण स्वच्छन्दतावाद अपना सम्पूर्ण वैभव दिखा सका । स्वच्छन्दतावादी काव्य ने अपने समय की जिन सीमाओं में कार्य किया उनमें वह रचना की जिन ऊॅचाईयों पर गया, वह ऐतिहासिक महत्व का है। उसने

वैयक्तिक विद्रोह का नारा दिया और निजी अनुभव का संसार जो प्रायः विलुप्त हो जाता था उसके उपयोग का रास्ता दिखाया। व्यक्तित्व के प्रकाशन की जिस परम्परा का सूत्रपात स्वच्छन्दतावादी काव्य में हुआ, उसका अनुसरण बाद के काव्यान्दोलनों में भी हुआ। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने राष्ट्रीय–सांस्कृतिक परिवेश की पहचान रोमानी दृष्टि से की। फिर भी स्वच्छन्दतावादी कवि अपने समय की चेतना से जुडे रहे, जिससे यह आन्दोलन लम्बे समय तक जीवित रह सका।

काव्य में व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति की पहली महत्वपूर्ण कोशिश स्वच्छन्दतावादी कवियों ने की। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय मध्य वर्ग की जो मनोवृत्ति थी, यह काव्य उसी की उपज है। जिस कल्पना ने उन्हें जीवन–यथार्थ से काफी समय तक जुड़ने नहीं दिया, उसी तत्व ने स्वच्छन्दतावाद को नये आकाश दिये। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में कल्पना के सहारे स्वच्छन्दतावादियों ने नयी ऊँचाईयों को स्पर्श किया। इन कवियों ने अपना पृथक् व्यक्तित्व निर्मित करते हुए नये बिम्बों और प्रतीकों का निर्माण किया। ये कवि कलात्मक उत्कर्ष की नयी ऊँचाइयों पर पहुॅचे । इन कवियों ने अपना सौन्दर्य–जगत निर्मित किया । इनके सौन्दर्य–जगत में प्रेम का क्रिया–व्यापार, नारी–सौन्दर्य तथा प्रकृति–दृश्य अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। रीति युगीन विलासी परिवेश को छिन्न–भिन्न कर इन कवियों ने आधुनिक रोमानी जगत् का निर्माण किया। समाज और साहित्य में जिस स्वतंत्रता की मॉग स्वच्छन्दतावादियों ने की, उसने आने वाली पीढी के लिए दिशा निर्देश का कार्य किया।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में खड़ीबोली को अपनाया और उसे एक नया संस्कार दिया। उसे अपनी अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाया। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति का प्रकाशन छन्दों के बंधन में सम्भव न था। अत: उन्होंने छन्दमुक्तता को प्रश्रय दिया। स्वच्छन्दतावादी कवियो ने हिन्दी काव्य को लयात्मक गीत–प्रगीतों से समृद्ध किया।

स्वच्छन्दतावादी रचना के केन्द्र में मनुष्य है। स्वच्छन्द कवियों ने मानव–प्रकृति की निकटता स्थापित करके आत्म विस्तार किया। उच्चतर मानव मूल्यों की स्थापना तथा मानव व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करते हुए स्वच्छन्दतावादी कवियों ने रचना का एक मानवीय जगत् निर्मित किया।

# सहायक ग्रन्थ सूची

# सहायक ग्रन्थ सूची


1. अजब सिंह – आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ
2. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' – प्रिय प्रवास
3. इन्द्रनाथ मदान – जयशंकर प्रसाद : चिन्तन और कला
4. " – निराला (सम्पादित)
5. " – महादेवी (सम्पादित)
6. कमल कुमारी जौहरी – हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी उपन्यास
7. कांति कुमार जैन – रोमांटिक मिजाज : मुकुटधर पाण्डेय से मुक्तिबोध तक
8. कुमार कौस्तुभ – ओ मेरे बसन्त के वर्ष ! (अलेक्सांद्र पुश्किन की प्रेम कविताएँ–अनुवाद)
9. के0 क्षीर सागर – टीका विवेक
10. कृष्ण चन्द्र वर्मा – घनानन्द
11. गंगा चरण त्रिपाठी– काव्य तत्व
12. गजानन माधव मुक्तिबोध – कामायनी : एक पुनर्विचार
13. " – नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र
14. जगदीश गुप्त – स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का दार्शनिक विवेचन
15. जय किशन प्रसाद – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
16. जयशंकर प्रसाद – कामायनी
17. " – काव्य और कला तथा अन्य निबंध
18. जैन एवं माथुर – विश्व इतिहास (1500 ई0 से 1950 ई0 तक)
19. दूधनाथ सिंह – निराला : आत्महन्ता आस्था
20. देवराज उपाध्याय – रोमांटिक साहित्य शास्त्र
21. धनंजय वर्मा – निराला : काव्य और व्यक्तित्व

22. नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ

23. ″ – आस्था के चरण

24. नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य

25. ″ – नये साहित्य : नये प्रश्न

26. ″ – हिन्दी साहित्य– बीसवीं शताब्दी

27. नरेन्द्र देव वर्मा – हिन्दी नव स्वच्छन्दतावाद

28. नामवर सिंह – आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ

29. ″ – छायावाद

30. पूनम चन्द्र तिवारी – द्विवेदी युगीन काव्य

31. प्रेम नारायण शुक्ल – हिन्दी साहित्य में विविध वाद

32. प्रेम शंकर – प्रसाद का काव्य

33. ″ – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य

34. फूल बिहारी शर्मा – हिन्दी की स्वच्छन्द समीक्षा

35. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास

36. ″ – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास

37. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – क्वासि

38. ″ – कुंकुम

39. ″ – रश्मि रेखा

40. ″ – विनोबा–स्तवन

41. बाँके विहारी भटनागर – बच्चन ; व्यक्ति और कवि (सम्पादित)

42. भगीरथ मिश्र – हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास

43. महादेवी वर्मा – गीत पर्व

44. ″ – दीप शिखा

45. महादेवी वर्मा – यामा

46. " – रश्मि

47. " – सप्तपर्णा की भूमिका

48. " – साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध

49. माखनलाल चतुर्वेदी – अमीर इरादे, गरीब इरादे

50. " – समय के पाँव

51. मैथिलीशरण गुप्त – साकेत

52. रघुवंश – हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ

53. रमेश कुन्तल मेघ – मिथक और स्वप्न : क़ामायनी की मनः सौन्दर्य सामाजिक भूमिका

54. रामचन्द्र तिवारी – साहित्य का मूल्यांकन (अनुवादित), मूल लेखक–वेर्सफील्ड

55. रामचन्द्र मिश्र – श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य

56. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास

57. रामधारी सिंह 'दिनकर' – उर्वशी

58. " – काव्य की भूमिका

59. " – कुरुक्षेत्र

60. " – चक्रवाल

61. " – रसवन्ती

62. " – रेणुका

63. " – शुद्ध कविता की खोज

64. " – संस्कृति के चार अध्याय

65. " – हुंकार

66. रामनरेश त्रिपाठी – पथिक

67. " – मिलन

68. रामनरेश त्रिपाठी – स्वप्न

69. राम रतन भटनागर – जयशंकर प्रसाद : जीवन दर्शन–कला व कृतित्व

70. " – निराला और नवजागरण

71. राम विलास शर्मा – निराला

72. " – निराला : राग–विराग (सम्पादित)

73. " – माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा पुरूष

74. " – संस्कृति और साहित्य

75. रामस्वरूप चतुर्वेदी – अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या

76. " – आधुनिक कविता–यात्रा

77. " – प्रसाद–निराला–अज्ञेय

78. " – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास

79. रामेश्वर लाल खण्डेलवाल – आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य

80. लक्ष्मी नारायण दुबे – बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्ति और काव्य

81. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी साहित्य का इतिहास

82. विक्रमादित्य राय – वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज : समीक्षा सिद्धान्त

83. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – घनानन्द कवित्त

84. " – हिन्दी का समसामयिक साहित्य

85. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय – आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा

86. शांतिस्वरूप गुप्त – पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त

87. शिवदान सिंह चौहान – काव्य धारा : हिन्दी कविता का विकास

88. शिवराम माली – स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान

89. श्याम सुन्दर दास – हिन्दी साहित्य : आधुनिक काल

90. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' – पुष्कारिणी

91. सुधाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य और साहित्यकार

92. सुधीन्द्र – हिन्दी कविता का क्रांतियुग

93. सुमित्रानन्दन पंत – आधुनिक कवि

94. " – गुंजन

95. " – ग्राम्या

96. " – चिदम्बरा

97. " – तारापथ (सम्पादित)

98. " – पल्लव

99. " – साठ वर्ष : एक रेखांकन

100. सुरेश चन्द्र गुप्त – आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त

101. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' – अनामिका

102. " – नये पत्ते

103. " – परिमल

104 " – प्रबन्ध प्रतिमा

105. सूर्य प्रसाद दीक्षित – छायावादी कवियों का गद्य साहित्य

106. हजारी प्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल (निबंध–संग्रह)

107. " – हिन्दी साहित्य

108. " – हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास

109. हरिकृष्ण पुरोहित – आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव

110. हरिवंश राय 'बच्चन' – आधुनिक कवि (सम्पादित)

111. " – प्रणय–पत्रिका

112. " – प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग–1–2)

113. " – निशा निमंत्रण

114. हरिवंशराय 'बच्चन' – मधु कलश

115. " – मधुबाला

116. " – मधुशाला

## अंग्रेजी ग्रन्थ

117. ए0 सी0 रिकेट – ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर फ्राम अरलियस्ट टाइम टू नाइनटीन सिक्सटीन

118. कजामियाँ – ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर

119. एफ0 एल0 लुकास – द डिक्लाइन एण्ड फाल ऑफ द रोमैंटिक आइडियल

120. जार्ज सेन्ट्सबरी – ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश क्रिटिसिज्म

121. जे0 एल0 नेहरू – द ग्लिमप्सेस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री

122. एल0 एबरक्रोम्बी – रोमैंटिसिज्म

123. डब्ल्यू0 डी0 एलोक – द रोमन लैंग्वेज

## कोश

1. नालन्दा विशाल शब्द सागर – सम्पादक – श्री नवल जी
2. हिन्दी साहित्य कोश – सम्पादक – धीरेन्द्र वर्मा
3. न्यू स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लिटरेचर
4. रीडर्स इनसाइक्लोपीडिया
5. वेबेस्टर्स न्यू ट्वेन्टीएथ सेन्चुरी डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैग्वेज

## पत्रिकायें

1. आजकल – अर्द्धशती विशेषांक (मई 1994)
2. वर्तमान साहित्य – शताब्दी कविता विशेषांक (मई–जून 2000)
3. सम्मेलन पत्रिका (त्रैमासिक) – आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी विशेषांक (भाग–72)
4. " – निराला जन्म शताब्दी अंक (भाग–82)
5. " – माखनलाल चर्तुवेदी विशेषांक (भाग–74)

6. हिन्दी अनुशीलन – जयशंकर प्रसाद विशेषांक (प्रकाशन वर्ष–1990)
7. " – माखनलाल चर्तुवेदी विशेषांक (प्रकाशन वर्ष–1991)
8. " – सुमित्रानन्दन पंत विशेषांक (प्रकाशन वर्ष–2000)
9. हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक) – निराला (अंक–2, प्रकाशन– अप्रैल–जून, 1997)
10. " – राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (वर्ष–1988)